पिलाणी-राजस्थानी-ग्रंथमाळा—नंबर २

राजस्थानरा दूहा, भाग १

PILANI RAJASTHANI SERIES—No: 2

Rajasthana-ra Duha—Part I

राजस्थानी वर्णमाळा

१ स्वर

अ आ इ ई उ ऊ ऋ अॆ अे ऒ ओ अै अॅ औ औं

२ अतिरिक्त स्वर

(जो प्रायः कवितामें आते हैं)

आ अै औ

३ व्यंजन

क ख ग घ ङ   च छ ज झ ञ

ट ठ ड ढ ण   त थ द ध न

प फ ब भ म   य र ल व व़

श ष स ह ळ   क़ ढ़ ड़

४ अयोगवाह

ं अनुस्वार   ँ चन्द्रविन्दु   : विसर्ग

स्पष्टीकरण—अॆ = ह्रस्व अे । ऒ=ह्रस्व ओ ।
अै = ह्रस्व अै । औ=ह्रस्व औ । आ=ह्रस्व आ
अॅ = हिन्दी ऐ (जैसे 'अैसा' में)
अै = संस्कृत ऐ (अइ) (जैसे 'दैव' में)
औं = हिन्दी औ (जैसे 'औंर' में)
औ = संस्कृत औ (अउ) (जैसे 'कौवा' में)

व = संस्कृत व, और अंग्रेजी **W.**

व़ = अंग्रेजी **V.**

ळ,ल़=मूर्धन्य ल (जो वैदिक, मराठी, गुजराती आदिमें पाया जाता है)

.ऊ = द़ का मूर्धन्य उच्चारण

द़ = अरबी ज्वाद ض

नोट १—संस्कृतका आदि व हिंदीमें ब और राजस्थानीमें व़ बन जाता है।

२—देवनागरी लिपिमें और राजस्थानी लिपिमें निम्नलिखित अक्षरोंमें भिन्नता हैं—ख=ष। छ= छ। श्र= ऊ। ड= ङ। ड़=ड या ढ़ ।

३—इस सीरीजमें देवनागरी लिपिको ही राजस्थानीके अनुकूल बनाकर ग्रहण किया गया है।

४—राजस्थानी लिपिमें संस्कृत व (w) व़ से और राजस्थानी व़ (v) व से लिखा जाता है। पर इससे भ्रम होनेकी आशंका है इसलिये हमने क्रम बदल दिया है (अर्थात संस्कृत व के लिये व ही रहने दिया है और राजस्थानी व को .व से लिखा है)।

पिलाणी-राजस्थानी-ग्रंथमाळा



राजस्थानी भाषाके साहित्यके उद्धारके निमित्त

दानवीर सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला द्वारा संस्थापित

तथा

बिड़ला-कालेज, पिलाणी, की अध्यक्षतामें प्रकाशित



सम्पादक

ठाकुर रामसिंह, अेम० अे०, विशारद

सूर्यकरण पारीक, अेम० अे०, विशारद

अेवं

नरोत्तमदास स्वामी, अेम० अे०, विशारद (प्रधान संपादक)



नम्बर २



प्रकाशक

नवयुग-साहित्य-मन्दिर,

पोस्ट बक्स नं० ७८,

दिल्ली।

राजस्थानरा दूहा

(भाग पहलड़ो)

महामहोपाध्याय रायबहादुर
श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा द्वारा लिखित
प्रवचन सहित

संग्रहकार और सम्पादक
नरोत्तमदास स्वामी, अेम० अे०, विशारद,
प्रोफेसर, बिड़ला कालेज, पिलाणी

हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, दिल्ली, में मुद्रित

प्रथम संस्करण

संवत् १९९१ विक्रमी
सन् १९३५ ईस्वी

मूल्य २)



राजस्थान,

राजस्थानी संस्कृति तथा राजस्थानी साहित्यरा घणा प्रेमी

राजस्थानी इतिहासरा अमर लेखक

मातृभूमि राजस्थानरी महान विभूति

सरल-स्वभाव महामना

महामहोपाध्याय रायबहादुर

श्री गौरीशंकर हीराचंदजी ओझारे

चरणाँमें

सविनय समर्पित ।

संपादकीय वक्तव्य

राजस्थानी भारतवर्षकी आधुनिक आर्य-वंशोत्पन्न देशभाषाओंमें सबसे प्राचीन है। सबकी जन्मदात्री अपभ्रंशके वह सबसे अधिक निकटवर्ती है। उसका प्राचीन साहित्य, क्या गद्यात्मक और क्या पद्यात्मक, अत्यन्त विस्तृत है। भारतीय भाषाविज्ञान और भारतीय इतिहासके सुचारु अध्ययनके लिअे उसका परिज्ञान नितान्त आवश्यक है। राजस्थानी भाषाका लोक-साहित्य Folk-Literature भी किसी भाषाके लोक-साहित्यसे कम विस्तृत और कम मनोरंजक नहीं। इस विस्तृत साहित्यका प्रकाशन सभी दृष्टियोंसे आवश्यक है। इसी उद्देश्यको ध्यानमें रखकर पिलाणी (जयपुर-राज्य) के निवासी सुप्रसिद्ध बिड़ला-परिवारके समुज्ज्वल रत्न मातृभाषा-प्रेमी दानवीर सेठ श्री घनश्यामदासजी बिड़लाकी प्रेरणा अेवं सहायतासे इस पिलाणी-राजस्थानी-ग्रन्थमाळाकी स्थापना की गई है। पिलाणीके बिड़ला-कालेजकी तत्त्वावधानतामें इसका प्रकाशन होगा। निम्नलिखित उद्देश्य इस ग्रन्थमाळाके होंगे—

१—प्राचीन राजस्थानी साहित्यकी खोज करना, हस्तलिखित ग्रन्थोंका पता लगाना, उनका संग्रह करना, तथा उनकी वर्णनात्मक सूची तैयार करना।

२—लोक-प्रचलित मौखिक साहित्य—जैसे दूहे, गीत, कविता, कहावतें, कहानियां, वातें आदि—का संग्रह करना।

३—इस प्रकार संगृहीत, प्राचीन अेवं मौखिक, राजस्थानी साहित्यको सुसंपादित रूपमें प्रकाशित करना।

४—साधारण जनताके लिअे उपयोगी नवीन राजस्थानी साहित्यका निर्माण तथा प्रकाशन करना।

भूमिका

दूहा राजस्थानी साहित्य अेवं राजस्थानी जनताका अत्यन्त प्रिय छंद है। राजस्थानीका दूहा-साहित्य जनतामें सदैव लोकप्रिय रहा है। अब भी सैकड़ों दूहे राजस्थानकी जनताकी जिह्वापर मिलते हैं। उनमेंसे अधिकांशका बारबार कहावतोंकी भांति प्रयोग होता है। राजस्थानके कहानी कहनेवाले कहानीके भावपूर्ण स्थलोंपर दूहोंका प्रयोग करते हैं। जनता और साहित्यमें विशेष प्रचलित अैसे ही दूहोंका अेक छोटा-सा संग्रह प्रस्तुत ग्रन्थमें किया गया है। इस प्रकारका संग्रह मैं आज कोई चौदह-पंद्रह वर्षोंसे करता आ रहा हूँ। उसी संग्रहमेंसे चुने हुअे कोई १२००—१२२५ दूहोंको इस प्रथम भागमें संकलित किया गया है। संग्रहका अवशिष्ट अंश कई भागोंमें क्रमशः प्रकाशित होगा। यह संग्रह लोगोंसे जबानी सुने हुअे दूहों, मित्रों द्वारा संग्रह करके भेजे हुअे दूहों, प्राचीन तथा अर्वाचीन ग्रन्थोंसे संकलित किये हुअे दूहों, अेवं प्राचीन संग्रहोंसे चुने हुअे दूहों, को लेकर तय्यार किया गया है। मेरा विचार था कि टिप्पणीमें तुलनाके लिअे संस्कृत-श्लोक और हिंदी, अंग्रेजी तथा अन्यान्य भाषाओंके पद्य भी दिये जाते और सामग्री भी बहुत कुछ तय्यार थी पर ग्रंथका कलेवर बढ़ जानेके भयसे अैसा नहीं किया गया। इससे ग्रंथका मूल्य भी बहुत बढ़ जाता और साधारण पाठकोंको असुविधा होती।

संग्रहके कार्यमें मुझे अनेक दिशाओंसे सहायता मिली। सबसे प्रथम संग्रह मुझे श्रीयुत कँवर खींवसिंहजी, कँवर प्रेमसिंहजी बी० अे०, कँवर जसवंतसिंहजी बी० अे०, तथा ठाकर कान्हसिंहजी बी० अे०, अेल-अेल बी०, द्वारा प्राप्त हुआ जिससे उत्साहित होकर मैंने इस कामको आगे चलाया। आगे चलकर नीचे लिखे तथा अन्यान्य अनेक सहृदयोंने मेरे इस संग्रहको वृद्धि करनेमें सहायता दी—सर्वश्री कँवर किशनसिंहजी बी० अे०, कँवर सूर्यमालसिंहजी, कँवर दीपसिंहजी बी० अे०, अेल-अेल बी०, ठाकर जीवणसिंहजी, कँवर राजसिंहजी, श्रीचाँदसिंहजी, पं० बख्शीरामजी गौड़ (नागोर-निवासी), पुरोहित कृष्णगोपाळजी कायनीवाळ, भँवरलालजी नाहटा, राधाकृष्ण चतुर्वेदी, तथा कँवर चन्द्रसिंह इत्यादि-इत्यादि। बीकानेरके डूंगर-कालेजके प्रिंसिपल श्रीयुत खीची जुगल-

सिंहजी ऍम० ऍ०, ऍल-ऍल बी०, बार-ऍट-ला, ने अपने निजके कुछ दूहे देकर मुझे अनुगृहीत किया। इन महानुभावोंका ऋण मैं कभी नहीं भूल सकता।

जिन प्रकाशित अथवा अप्रकाशित ग्रंथोंसे दूहे संगृहीत किये गये हैं उनकी नामावली बहुत लंबी है और उसको यहाँ देना अनावश्यक है। हाँ, ढोला मारूरा दूहाका उल्लेख मैं अवश्य करूँगा जो राजस्थानका सच्चा जातीय काव्य है। उसके अनेक दूहे शृंगार-प्रकरणमें लिये गये हैं। मळसीसर-ठाकर भूरसिंहजी शेखावत द्वारा संकलित और संपादित विविध संग्रह तथा महाराणा-यश-प्रकाश नामक संग्रह-ग्रंथोंसे भी मुझे बहुत सहायता मिली है।

मुझे सबसे अधिक अनुगृहीत किया है महामहोपाध्याय रायबहादुर श्री गौरीशंकर हीराचंदजी ओझाने, जिन्होंने हस्तलिखित संग्रहको पढ़कर परम हर्ष प्रकट किया और फिर बड़े प्रेमके साथ सब प्रकारसे मुझे उत्साहित किया। इस वृद्धावस्थामें, अवकाशकी कमी रहनेपर भी, आपने प्रवचन लिखकर मुझे कृतार्थ किया।

यहाँपर मैं मातृभाषाके महान् प्रेमी सेठ श्रीघनश्यामदासजी बिड़लाको धन्यवाद देना अत्यन्त आवश्यक समझता हूँ जिनकी प्रोत्साहना और प्रेरणासे ही राजस्थानी साहित्यका उद्धार-कार्य आरंभ हुआ है और जिनकी कृपासे ही यह ग्रंथ इस सुन्दर रूपमें पाठकोंके आगे रखा जा सका है। ग्रन्थकी सुंदर छपाईमें हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेसके संचालकोंका भी बहुत कुछ हाथ है।

अंतमें रह गये मेरे स्नेहशील सहयोगी सुहृद्वर श्रीयुत ठाकर रामसिंहजी ऍम० ऍ० तथा सूर्यकरणजी पारीक ऍम० ऍ०, जिनका मुझपर अनेक प्रकारसे ऋण है जिससे मैं हजार बार कृतज्ञता-प्रकाश कर देनेपर भी मुक्त नहीं हो सकता। राजस्थानीके नवयुगके उदीयमान नवयुवक कवि साहित्यरत्न पं० रामनिवास शर्मा हारीतने प्रस्तावनाका अधिकांश आलोचनात्मक भाग लिखनेका कष्ट किया है उनका धन्यवाद मैं यहाँपर नहीं करना चाहता।

छपनेमें कहीं-कहीं मात्राऍं टूट गई हैं तथा कुछ स्थानों पर साधारण अशुद्धियाँ भी रह गई हैं जिनको पाठक स्वयं सुधार लेंगे। ग्रंथमें संशोधन तथा परिवर्धन विषयक सूचनाओंको सहर्ष और सधन्यवाद स्वीकार किया जायगा।

नरोत्तमदास स्वामी

अनुक्रमणिका

—:o:—

कवियोंकी नामावळी

जिन दूहोंके रचियताओंका पता लग सका उनकी नामावली, अकारादि क्रमसे, दूहोंके नंबरोंके साथ, यहाँपर दी जाती है—

१ अकबर ४·१·४०
२ अमरसिंह, राणा ३·३·६६—७०
३ अहमद २·७·१ । ६·४·१
४ आलोजी चारण ४·१·२१
५ आसोजी चारण ४·१·११
६ ईलियो चावड़ो (देखो लाखणसी)
७ ईसरदास चारण ३·१·२१ (?) । ३·१·२६—२७
८ ईसरदास (?) ८·४·१०
९ उजळी ७·६·४—६ । ८·११·१।६·४·२
१० उदैराज २·२१·२ । २·२२·१ । ६·०·३६ । ७·२·४
११ ऊमरदान चारण २·१६ २—७ । ५·०·१२ ।
१२ कबीर २·२७·१७ ।
१३ करणीदान चारण ३·४·१३।४·१·३५
१४ काळू २·६·१ । २·१३·७ । २·२८·३ । ८·४·१४

१—प्रसिद्ध मुगल-सम्राट । अकबरने राजस्थानीमें रचना नहीं की थी परंतु तुलसी, सूर आदि अनेक कवियोंकी रचनाओंकी भांति उसकी रचनाओंने भी राजस्थानमें आकर राजस्थानी रूप धारण कर लिया है ।

२—ये महाराणा प्रतापके पुत्र थे ।

६—यह जूनागढ़ राज्यका पटायत सरदार था । बड़ा दानी हुआ है । इसको संबोधन करके लाखणसी चारण (नं० ५६) ने सोरठे बनाये थे । इसका समय १४७३ के लगभग है ।

७—यह राजस्थानका अेक अत्यन्त प्रसिद्ध महाकवि हो चुका है । इसका समय संवत १५८० के लगभग है ।

९—यह धूमली (काठियावाड़) के जेठवा जातिके राजा (नं० २७) पर आसक्त हो गई थी और उसीको संबोधन करके सोरठे इसने बनाये हैं ।

११—यह जोधपुर-निवासी तथा आर्यसमाजका अनुयायी बड़ा प्रसिद्ध कवि हुआ है । इसकी रचनाअें उमरकाव्यके नामसे छप चुकी हैं ।

१३—यह अेक सुप्रसिद्ध कवि हो चुका है । इसका समय सं० १७५० से १८०० के लगभग है ।

१५ किरपाराम चारण २·४·१ । २·६·२ । २·७·२ । २·८·१—२ । २·६·१—३ । २·१०·४—६ । २·११·१—३ । २·१२·२—६ । २·१३·५ । २·१७·१—४ । २·१६·८—६।२·२०·३—५ । २·२२·२ । २·२३·१ । २·२७·३—५, १२-१३ २·२८·१६,१८,२०,२१,२५,२६,२३, ४८,५६,६५,६६,७४,७६,७८,७६,८२ ८२,८३ । ३·१·२६—२७ । ५·०·२६, ३५ । ८·६·१३ ।

१६ किसनियो २·१·१० । २·२·८ । २·१०·३ । २·१३·६ । २·१८·५ । २·१६·१ । २·२०·८-६ । २·२८·२८,७५ ।

१७ किसनो ७·६·१६

१८ केलियो ८·६·३

१६ फेचळकूवो २·३·३

२० खेमदास २·१८·३

२१ चतरसिंह वीको २·८·३

२२ जटमल ३·१·४१ । ३·३·६६,६८

२३ जमाल २·२८·१४८,१४६ । ७·६·३८ ५४,१०६ । ७·१४·५ । ६·२·१—११

२४ जसवंतसिंह, महाराज २·२८·५ ३·१·२१ (?) । ३·३·६१ । ८·२·४ ८·४·५,६ ।

२५ जाडो चारण ३·३·१०५ । ३·४· ७,८

१५—यह सीकरके राजा देवीसिंहके यहां रहता था । यह खिड़िया शाखाका चारण था और इसने अपने चाकर राजिया (नं० ५७) को संबोधन करके बहुत-से सोरठे लिखे थे ।

१६—यह किसी चारणका चाकर था जिसने इसको संबोधन करके सोरठे लिखे थे ।

१६—ये अेक सन्त हो चुके हैं ।

२१—यह आपूवाळा (वीकानेर) का निवासी वीका राठोड़ था । इसने अपने साथी बाघजीको संबोधन करके सोरठे बनाये थे । इसने राजस्थानी सोरठोंका अेक छोटा संग्रह अर्वाचीन-प्राचीन-सोरठासंग्रह नामसे छपाया था जिसका दूसरा परिवर्धित संस्करण इसी ग्रंथमालामें शीघ्र ही प्रकाशित होगा ।

२२—इसने संवत १६८० में खड़ीबोली-मिश्रित राजस्थानी पद्यमें गोरा-बादलरी वात नामक ग्रंथ लिखा था । यह जातिका नाहर ओसवाल था ।

२४—यह जोधपुरका महाराजा औरंगजेबका समकालीन था । बड़ा वीर, साहित्यप्रेमी और कवि हो चुका है । भाषाभूषण आदि कई ग्रंथ इसके लिखे हुअे हैं ।

२६—ये बीकानेरके निवासी हैं और आजकल वहीं डूँगर-कालेजके प्रिंसिपल हैं। अेम० अे०, अेल० अेल० बी०, बार-अेट-ला, डी० फी० अेड० हैं।

२७—जेठवा राजपूतोंकी अेक शाखा है। यह जेठवा धुमली (काठियावाड़ का राजा था। इसका नाम मेहा था। उजळी (नं० ६) नामक अेक चारणीने, जो उसपर आसक्त हो गई थी, उसे संबोधन कर ये दूहे बनाये थे।

२६—यह गुजरातका अेक प्रसिद्ध कवि और लेखक हो चुका है। इसने फारयस साहबको संबोधन करके दूहे लिखे हैं।

३२—यह राजस्थानका अेक प्रख्यात चारण महाकवि हुआ है। यह महाराणा प्रतापका समकालीन था।

३८—सिख-संप्रदायके आदि-प्रवर्त्तक।

३६—यह दधवाड़िया चारण लालजीका चाकर था। लालजीने इसे संबोधन करके सोरठे कहे हैं।

४१—यह अेक चारण था जिसे गोड़ वच्छराजने करोड़-पसाव दान दिया था।

४२—ये अेक प्रसिद्ध संत कवि हो चुके हैं।

४७—यह अेक साहब था। गुजराती भाषा और साहित्यका प्रेमी तथा विद्वान था। आधुनिक गुजरातीके उत्थानमें इसका प्रमुख भाग है। दलपतराम आदिके सहयोगसे इसने गुजराती-वर्नाक्युलर-सोसायटीकी स्थापना की थी। दलपतराम कविने इसको संबोधन करके कई सोरठे लिखे हैं।

४८—यह सोनड़ी गाँवका निवासी था। चतरसिंह चीके (नं० २१) ने इसको संबोधन करके सोरठे लिखे हैं।

४९—यह रतलाम-नरेशका चाकर था। इसको संबोधन करके कई कवियोंने सोरठे बनाये थे।

५१—यह जोधपुर—मारवाड़का महाराजा था।

५३—यह साँभासरका निवासी किनिया शाखा था चारण था।

५४—यह घाणेरावके ठाकुरका चाकर था। साँदू रायसिंह चारण (नं० ५८) की इसने बहुत सेवा की थी जिससे प्रसन्न होकर रायसिंहने इसको संबोधन करके सोरठे बनाये थे।

५५—ये दादूपंथमें अेक प्रसिद्ध संत हो चुके हैं।

५६—यह अकबरका सेनापति और हिंदीका सुप्रसिद्ध कवि रहीम है।

५७—यह खिड़िया चारण किरपारामजी (नं० १५) का चाकर था। उक्त चारणने इसको संबोधन करके सोरठे बनाये थे।

५८—यह गाँव सिरोसरका निवासी था। इसने मोतिया (नं० ५४) को संबोधन करके सोरठे रचे थे।

५९—इसने ईलिया (नं० ६) को संबोधन करके सोरठे वनाये थे । यह ओखा-मंडळका निवासी था । इसका समय सं० १४७३ के आसपास है ।

६०—इसने अपने चाकर नोपला (नं० ३९) को संबोधन करके सोरठे बनाये थे । यह 'फोलोड़ा-की-ढाणी' का निवासी था ।

६१—यह मारवाड़के महाराज मानसिंहजीके यहाँ रहता था और राजस्थानमें अत्यन्त प्रसिद्ध कवि हो चुका है । इसके ग्रन्थ वांकीदास-ग्रंथावळी नाम से काशीकी नागरीप्रचारिणी-सभा द्वारा दो-तीन भागोंमें प्रकाशित हुअे हैं ।

६५—यह अेक प्रसिद्ध कवि हुआ है । हिंदीमें भी इसकी प्रसिद्धि है । यह जातिका मुसलमान था ।

६७—इसकी वनाई हुई खीची अचलदासरी वचनिका राजस्थानी साहित्यका अेक प्रसिद्ध ग्रंथ है । यह गागरोनगढ़के राजा अचलदास खीचीका आश्रित था । इसके दोनों दूहे उक्त वचनिकामेंसे लिये गये हैं ।

६९—ये निरंजनी पंथके प्रवर्त्तक अेक वड़े सन्त हो गये हैं । इनकी 'वाणी' की कविता वड़ी ही सरस है । इनका स्थान डीडवाणेमें था जहां इनके पंथके साधु अव भी रहते हैं ।

प्रवचन

[लेखक—महामहोपाध्याय रायबहादुर श्रीगौरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर]

भारतवर्षके प्राचीन वाङ्मयमें काव्यका अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। गद्यकी अपेक्षा कवितामें प्रायः विशेष आकर्षण और प्रभावोत्पादनकी शक्ति रहती है। किसी घटना-विशेषको देखकर मानव-हृदयमें सहसा जो विचार उत्पन्न होते हैं उनकी कविताके रूपमें बहुत सुंदर अभिव्यंजना होती है। इसी विचारको लक्ष्यमें रखते हुअे अंग्रेजी-साहित्यके सुप्रसिद्ध आलोचक मैथ्यू आर्नोल्डने कविताके सम्बन्धमें लिखा है कि—

Poetry is nothing less than the most perfect speech of man, that in which he comes nearest to being able to utter the truth.

अर्थात् कविता मनुष्यकी सर्वाङ्गसुंदर उक्ति है, जिसमें वह सत्यको अधिक-से-अधिक सफलतापूर्वक प्रकट कर सकता है।

प्राचीन भारतीय काव्यके इतिहासमें महर्षि वाल्मीकि आदि-कवि और उनका ग्रंथ रामायण आदि-काव्य माना जाता है। अेक बार वाल्मीकिने देखा कि किसी व्याधने कामासक्त क्रौंच (पक्षीविशेष)-मिथुनमेंसे अेक पक्षीको अपने बाणसे आहत किया, तो तत्क्षण ऋषिके कोमल हृदयपर उसका बहुत प्रभाव पड़ा और उस समय उनके शोकके उद्गार अेक दम श्लोकके रूपमें प्रकट हुअे, जिसके सम्बन्धमें महाकवि कालिदासने अपने रघुवंश महाकाव्यमें लिखा है कि—

निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः।

संस्कृत वाङ्मयके इतिहासका अध्ययन करनेसे जान पड़ता है कि विगत ढ़ाई हजार वर्षोंमें भारतमें काव्य-कलाके असंख्य उत्कृष्ट कोविदोंने कविता-कामिनीके कलेवरको अनेक प्रकारसे अलंकृत किया है। प्राचीन

कविपुङ्गवोंकी चमत्कार-पूर्ण कवितासे प्रभावित होकर ही जयदेवने बारहवीं शताब्दीमें लिखा था कि—केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय। भारतीय कवियोंने अपनी काव्य-रचनामें न केवल ईश्वर-भक्ति अेवं संसारकी अनित्यतापर अपनी लेखनी चलाई है, किन्तु उनके काव्य-ग्रंथोंमें भाँति-भाँतिकी वक्रोक्तियाँ, स्वभावोक्तियाँ, अन्योक्तियाँ, ऋतु-वर्णन, प्राकृतिक दृश्योंका चित्रण, नानाप्रकारके पशु-पक्षियों तथा भिन्न-भिन्न व्यवसायोंके मनुष्योंका वर्णन, नायक-नायिका-भेद तथा नायिकाओंके अंग-प्रत्यंगका वर्णन, सूर्योदय, सूर्यास्त, मध्याह्न, अपराह्ण आदि विभिन्न कालोंका यथेष्टवर्णन, राजदरबारों अेवं युद्धोंका विशद विवरण, सेवाधर्मका निरूपण विषयोपभोगकी तुच्छताका विवेचन, सामान्य नीति, आदि अनेक महत्त्वपूर्ण विषयोंका भी सुचारु समावेश देख पड़ता है। यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक कविके काव्यमें इन सब विषयोंका विवरण होना चाहिअे, किन्तु बहुधा उत्कृष्ट काव्योंमें, और विशेषतः महाकाव्योंमें, इनमेंसे कई-अेक विषयोंका वर्णन यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार क्रमशः अनेक सुकवियोंके परिश्रमके फलस्वरूप विभिन्न विषयोंपर बहुत-कुछ काव्य-साहित्य प्रस्तुत होने लगा, तब कतिपय काव्य-मर्मज्ञ सरस्वती-पुत्रोंने अनेक विद्वानोंके ग्रंथों-से विविध विषयोंके चुने हुअे सुभाषित पद्योंका संग्रह आरंभ किया। उनके संकलित ग्रंथोंको सुभाषित-संग्रह (Anthology) कह सकते हैं।

अधिक प्राचीनकालके भारतीय संग्रह-कर्त्ताओंकी प्रवृत्ति अनेक विष-योंके पद्योंके संकलनकी नहीं, किन्तु कुछ अति महत्वपूर्ण विषयोंके पद्य-संग्रह की ओर थी। सुविख्यात भर्तृहरिने नीति, शृंगार और वैराग्य इन तीन विषयोंसे सम्बद्ध सुन्दर पद्योंका नीतिशतक, शृंगारशतक और वैराग्यशतक नामसे संग्रह किया। शिल्हण नामक काश्मीरी कविके शान्ति-शतकमें वैराग्य-विषयक लगभग १०० पद्योंका संग्रह है। श्रीशंकराचार्यने सांसारिक जीवन की अनित्यताके सम्बन्धमें अपने मोहमुद्गरमें अनेक श्लोक लिखे। इसी प्रकार चाणक्यनीति नामक ग्रंथमें, जिसका आजतक पर्याप्त प्रचार है,

नीति-सम्बन्धी पद्योंका संग्रह मिलता है। इस प्रकारके ग्रंथोंमें वि० सं० १०५० में रचित जैन विद्वान् अमितगतिका 'सुभाषितरत्नसन्दोह' भी उल्लेखनीय है। यह तो हुई प्राचीन विद्वानों द्वारा रचित अथवा संगृहीत अेकांगी पद्योंकी बात; किन्तु विक्रम संवत् १००० के पश्चात्—इस समय तक कालिदास, माघ, भारवि आदि अनेक प्रसिद्ध कवि-पुंगवोंके अमर काव्य-ग्रन्थोंकी रचना हो चुकी थी—सुभाषित-संग्रहके अैसे ग्रंथ भी उपलब्ध होते हैं, जिनमें उल्लिखित विभिन्न विषयोंके अनेक सुंदर पद्योंका उत्कृष्ट संग्रह हुआ है। उन संकलन-ग्रंथोंको देखकर यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि उनके संग्रहकर्त्ताओंका अत्यन्त गम्भीर अध्ययन रहा होगा, और मुद्रण-यंत्रका अभाव होते हुअे भी उन्होंने सैंकड़ों विद्वानोंके ग्रंथोंका मनोयोगपूर्वक अवलोकन किया होगा। अन्यथा उस अतीतकालमें इतने विषयोंपर उत्कृष्ट पद्यों के इतने बड़े-बड़े संग्रह तैयार करना अत्यन्त कठिन समस्या होनी चाहिअे। सुभाषित-संग्रहमें चुने गये पद्योंका भावपूर्ण होना नितान्त आवश्यक है, अन्यथा उनकी उपयोगिता नहीं रहती। अेक प्राचीन कविकी उक्ति है कि—

सुभाषितेन गीतेन युवतीनां च लीलया।
मनो न भिद्यते यस्य स योगी ह्यथवा पशुः॥

दूसरे शब्दोंमें इससे यही अर्थ निकलता है कि योगी अथवा पशुकी कोटिसे बाहर रहनेवाले प्रत्येक व्यक्तिका चित्त सुभाषित पद्यको पढ़, सुन या समझकर भावार्द्र अेवं तन्मय होना चाहिअे। अैसी दशामें संकलन-कर्त्ताओंका कार्य और भी कठिन हो जाता है।

अबतक मिले हुअे इस प्रकारके सुभाषित-ग्रंथोंमें सबसे प्राचीन संकलन किसी बौद्ध विद्वान द्वारा अनुमान बारहवीं शताब्दीमें संकलित 'कवीन्द्र-वचन-समुच्चय' है, जिसको नेपालसे प्राप्त हस्तलिपिके आधारपर डाक्टर थामसने अत्यंत योग्यतापूर्वक सम्पादित किया है। इसमें जिन-जिन कवियों के ५२५ पद्योंका संग्रह हुआ है, उनमेंसे कोई भी ई० सन् १००० के पश्चात् का नहीं है। तदनंतर ई० स० १२०५ में बंगालके राजा लक्ष्मणसेनके दर-

वारके विद्वान् श्रीधरदासने 'सदुक्तिकर्णामृत' तैयार किया, जिसमें ४४६ कवियोंके पद्य संगृहीत हैं। तेरहवीं शताब्दीके उत्तरार्ध में जल्हण पंडितने 'सुभाषितमुक्तावली' का संकलन किया। ई० स० १३६३ में शार्ङ्गधर नामक विद्वान्के द्वारा 'शार्ङ्गधरपद्धति' नामक विशाल संकलन प्रस्तुत हुआ। इसमें १६३ विषयोंपर ४६८९ पद्योंका अपूर्व संग्रह हुआ है। मद्रासकी हस्तलिखित पुस्तकोंकी सूचीसे ज्ञात होता है कि ख्यातनामा वेद-भाष्यकार सायणने भी चौदहवीं शताब्दीके उत्तरार्ध में 'सुभाषित-सुधानिधि' नामक संग्रह-ग्रंथका निर्माण किया था। पंद्रहवीं सदीमें वल्लभदेवने ३५० कवियोंके १०१ विषयके ३५२७ पद्योंका 'सुभाषितावलि' नामक उत्कृष्ट संग्रह किया। इसमें शार्ङ्गधर पद्धतिके कई पद्य ज्यों-के-त्यों पाये जाते हैं। इसी शताब्दीमें श्रीवर पंडितने 'सुभाषितावलि' नामक अेक और संग्रह प्रस्तुत किया जिसमें ३८० से अधिक कवियोंके पद्य संकलित हुअे हैं। रूपगोस्वामीने अपनी 'पद्यावली' में अनेक विद्वानोंके कृष्ण-भक्ति विषयक पद्योंका संग्रह किया। न केवल संस्कृत-भाषामें ही सुभाषित-संग्रह तैयार हुअे किन्तु प्राकृतमेंभी जयवल्लभ नामक श्वेताम्बर जैन विद्वान्ने 'वज्जालग्ग' शीर्षक संकलन-ग्रंथ तैयार किया। जिस प्रकार प्राचीन कालमें विद्वानोंने समय-समय पर इस महत्त्वपूर्ण कार्यका सम्पादन किया, उसी तरह आधुनिक युगके विद्वान भी इस कार्यके महत्त्वसे अपरिचित नहीं रहे। इस समयके संकलन-ग्रंथोंमें कृष्णशास्त्री भाटवड़ेकरका 'सुभाषितरत्नाकर' तथा काशीनाथ-पांडुरंग परब द्वारा संकलित 'सुभाषित-रत्न-भांडागार' नामक बृहद् अेवं अनुपम संग्रह उल्लेखनीय हैं। संस्कृत भाषाकी भावपूर्ण एवं सुललित काव्य-रचनापर मुग्ध होकर न केवल अनेक अेतद्देशीय विद्वानोंने ही सुभाषित-पद्य-संग्रहका कार्य किया, किन्तु गत शताब्दीमें जर्मनीके सुविख्यात संस्कृतज्ञ विद्वान् डाक्टर बाथलिकने भी सारे संस्कृत-साहित्यसे कोई ८००० उत्कृष्ट पद्योंको चुनकर जर्मन-भाषाके अपने सुंदर गद्यानुवादके साथ Indische Sprüche नामक विशाल ग्रंथके रूपमें प्रकाशित किया।

जिस प्रकार संस्कृत-साहित्यमें सुभाषित-संग्रह तैयार होते रहे वैसे ही हिन्दीमें भी कुछ पद्य-संग्रह समय-समयपर बने और प्रकाशित हुअे[1], किन्तु उनमें राजस्थानी-साहित्यका स्थान नहींके बराबर है। मोतीलाल सोलंखी द्वारा संकलित 'आनंद-संग्रह-बोध' तथा मेरे मित्र मलसीसर-ठाकुर स्वर्गीय श्रीभूरसिंहजी शेखावतके 'विविध-संग्रह' में राजस्थानी भाषाके कुछ सुन्दर पद्य मैंने पढ़े हैं, किन्तु राजस्थानीकी दृष्टिसे इन्हें सर्वांगसुन्दर नहीं कह सकते। राजस्थानी भाषाका साहित्य भी हिन्दी-साहित्यका अेक महत्त्वपूर्ण अंग है। सैकड़ों वर्षोंसे राजपूतानेके भिन्न-भिन्न हिन्दू राजाओंके आश्रयमें रहे हुअे अनेक चारणों,भाटों,तथा कवियोंके द्वारा राजस्थानी भाषाका काव्य-साहित्य तैयार होता रहा है। राजस्थानीकी कविता भी वैसी ही मर्मस्पर्शिनी, ओजस्विनी अेवं प्रभावोत्पादिनी है, जैसी प्राचीन संस्कृत और हिन्दी कविता। जो वस्तुतः काव्य-मर्मज्ञ हैं, वे अेक बार राजस्थानीके चुभते हुअे पद्योंको पढ़ या सुनकर उनकी हृदयसे सराहना किये बिना नहीं रह सकते। जिस राजस्थानी भाषाका काव्य-साहित्य इतना व्यापक अेवं प्रभावोत्पादक है, उसके विभिन्न विषयोंके चुने हुअे भावपूर्ण पद्योंके सुन्दर संग्रहकी सामान्यतः हिन्दी-प्रेमियों,और विशेषतः राजस्थानियों, के लिअे चिरकालसे आवश्यकता थी। राजस्थानीके पद्योंका कोई उत्कृष्ट संग्रह अब तक प्रकाशित नहीं

---

१ उदाहरणार्थ—कालिदास-हजारा, प्रताप-हजारा, हफीजुल्लाखांका हजारा, षट्ऋतु हजारा, रसमोदक-हजारा, नवीनसंग्रह, शिवसिंह सरोज, भारतेंदु-कृत सुंदरी-तिलक, रागसागरोद्भव, रागकल्पद्रुम, रागरत्नाकर, मुं० देवीप्रसाद कृत राज-रसनामृत, महिलामृदुवाणी, कविरत्नमाला, वियोगी-हरि कृत ब्रज-माधुरीसार, श्यामसुंदरदास कृत सतसई-सप्तक, लोचनप्रसाद पांडेय कृत कविता-कुसुममाला, रामनरेश त्रिपाठी कृत कविताकौमुदी तथा घाघ-और-भड्डरी, लाला भगवानदीन कृत सूक्तिसरोवर, वियोगी-हरि कृत भजन-संग्रह, संतबानी संग्रह, साहित्य प्रभाकर, नवीन-पद्य-संग्रह, कालिदास कपूर कृत आधुनिक पद्यावली, नरोत्तमदास स्वामी कृत हिंदी-पद्य-पारिजात, इत्यादि-इत्यादि।

—न.स्वा.

हो सका, इसका अेक कारण यह भी है कि राजस्थानियोंके सिवा अन्य प्रान्तीय साहित्य-प्रेमी इसको कम समझते हैं। इसके सिवाय इसका वहुत-कुछ साहित्य अब तक अमुद्रित अेवं हस्तलिखित ग्रन्थोंके ही रूपमें विद्यमान है, इसलिअे विशेप खोज अेवं परिश्रमके विना इस भापाके उत्कृष्ट पद्योंका संग्रह होना वहुत कठिन है। इसीसे यह महत्वपूर्ण कार्य अब तक अपूर्ण-सा पड़ा रहा। हर्पका विपय है कि इधर कुछ वर्पोंसे राजपूतानेके कतिपय इन-गिने उत्साही साहित्य-सेवियोंने राजस्थानीको सेवाका व्रत ग्रहण किया है और इनमें बीका-नेर-निवासी श्रीयुत नरोत्तमदासजी स्वामीका प्रमुख स्थान है। इस भापाके अन्य कर्मठ सेवकोंमें वीकानेरके ठाकुर श्रीरामसिंहजी अेम० अे० (वर्त्तमान अध्यक्ष, शिक्षा-विभाग, वीकानेर राज्य) और श्रीसूर्यकरणजी पारीक अेम०अे० (वाइस-प्रिंसिपल, बिड़ला इंटरमीडियट कालेज, पिलाणी) के नाम उल्लेखनीय हैं। विगत कई वर्पोंसे स्वामीजी अनुकरणीय मनोयोगके साथ राजस्थानी साहित्यका अध्ययन करते रहे हैं। कुछ वर्प पूर्व, जब मैं वीकानेर गया था तब, स्वामीजीने मुझे राजस्थानीका विविध विपयोंका अपना संकलन बतलाया था। उसे देखकर मुझे वहुत हर्प हुआ था। स्वामीजीने कई वर्पोंके परिश्रमसे अनेक प्राचीन ग्रन्थोंमें पाये जानेवाले तथा जन-श्रुतिमें प्रचलित विभिन्न विपयोंके मार्मिक दोहोंका सुन्दर संग्रह किया है, जिसका यह प्रथम भाग, आशा है, हिन्दी-प्रेमियों और विशेपतः राजस्थान वासियोंके लिअे अेक अनूठी वस्तु होगी। राजस्थानी पद्य-साहित्यमें प्रायः दोहा, सोरठा (जो राजस्थानी पिंगळमें दोहेका ही अेक भेद माना जाता है), और कवित्त आदि छंद अधिक पाये जाते हैं, किन्तु दोहोंका सबसे अधिक प्रचार है और आज भी अनेक राजस्थानियोंके मुखसे समयानुसार अनेक प्रकारके दोहे सुने जाते हैं। थोड़े शब्दोंका होनेके कारण दोहा उसी तरह सरलता-पूर्वक कंठ किया जा सकता है, जिस प्रकार संस्कृतमें अनुष्टुभ् वृत्त। इस पहिले भागको विद्वान् संकलनकर्त्ता ने विनय, नीति, वीर, अैतिहासिक और भौगोलिक, हास्य और व्यंग, प्रेम, शृंगार-रस, शान्त-रस तथा प्रकीर्णक शीर्पक ९ मुख्य भागोंमें विभक्त किया है। प्रत्येक भागमें अनेक रोचक विपय

पसंद कर उनके सम्बन्धमें चमत्कार-पूर्ण दोहोंका सुचारु संकलन किया है। टिप्पणमें कठिन अेवं अपरिचित शब्दोंका अर्थ देनेसे तथा आरंभमें राजस्थानी भाषा अेवं साहित्यकी परिचायक और आलोचनात्मक प्रस्तावना जोड़ देनेसे पुस्तककी उपयोगिता और भी बढ़ गई है। अैसे उत्कृष्ट संग्रहको हिन्दी-प्रेमियोंके सम्मुख प्रस्तुत करनेके लिअे श्रीस्वामीजी साधुवादके पात्र हैं। साथ ही समस्त राजस्थानियोंको भारतके सुविख्यात दानवीर सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला का कृतज्ञ होना चाहिअे, क्योंकि उन्होंने राजस्थानी साहित्यको पुनरुज्जीवित करनेके लिअे अेक ग्रन्थमाला स्थापित करके उसके प्रकाशनकी व्यवस्था कर दी है और बिड़लाजीकी इस दानशीलताके फलस्वरूप ही यह उत्तम संकलन प्रकाशित हो रहा है। आशा है, इस सुन्दर संकलनको पढ़कर पाठकवर्गमें राजस्थानी भाषाके प्रति प्रेम उत्पन्न होगा और स्वामीजीके आदर्शका अनु-करण करते हुअे निकट भविष्यमें कर्मण्य राजस्थानी साहित्यिकोंका अेक दल तैयार हो जायगा।

अजमेर,
पौष कृ० ११, संवत् १९९१ वि० } गौरीशंकर हीराचंद ओझा

प्रस्तावना

पूर्वार्ध

राजस्थानी भाषा और साहित्यका दिग्दर्शन

(१) राजस्थानी भाषा

राजस्थानी राजस्थान और मालवा प्रान्तकी भाषा है। इसके पूर्वमें बुंदेली और व्रजभाषा, पूर्वोत्तरमें व्रज और बाँगडू, उत्तरमें पंजाबी, पश्चिमोत्तरमें पश्चिमी पंजाबी (जिसे लहँदा भी कहा गया है), पश्चिममें सिंधी, दक्षिणपश्चिममें गुजराती और दक्षिणमें मराठी आदि भाषाएँ बोली जाती हैं।

इसकी पाँच मुख्य शाखाएँ हैं—(१) मारवाड़ी—इसका क्षेत्र सबसे अधिक विस्तृत और इसका साहित्य सबसे अधिक संपन्न है। यह पश्चिमी राजस्थान (जोधपुर, मेवाड़, जेसलमेर, बीकानेर, शेखावाटी आदि) की बोली है।

(२) ढूँढाड़ी—इसका क्षेत्र पूरबी राजस्थान (जयपुर, कोटा, बूँदी, झालावाड़, किशनगढ़ आदि) है। इसमें भी अच्छा साहित्य वर्त्तमान है।

(३) मेवाती—यह मेव प्रान्त अर्थात् अलवर आदि भागोंमें बोली जाती है। इसमें साहित्य नहींके बराबर है।

(४) मालवी—यह मालवा प्रान्त (इंदोर, भोपाल, नेमाड़, तथा ग्वालियर राज्यके अधिकांश भाग) की बोली है। इसमें बहुत थोड़ी साहित्य-रचना हुई है।

(५) भीली यह राजस्थानीका वह रूप है जिसे भील आदि पहाड़ी आदिम जातियाँ बोलती हैं। इसमें गुजरातीका मेल बहुत पाया जाता है।

राजस्थानी भाषा बोलनेवालोंकी संख्या दो करोड़के लगभग है। राजस्थानकी वैश्यजाति भारतके कोने-कोनेमें फैली हुई है अतः इसके बोलनेवाले समस्त भारतवर्षमें मिल सकते हैं।

(२) राजस्थानीका विकास

राजस्थानी उत्तर-भारतकी वर्त्तमान देशभाषाओंमें सबसे प्राचीन है। वह अपभ्रंशकी जेठी बेटी है। अपभ्रंशकालमें साहित्यिक क्रियाशीलताका केंद्र मुख्यतया पश्चिमी भारत ही था। अपभ्रंशके अधिकांश साहित्यकी रचना इसी प्रदेशमें हुई। इसी कारण यहाँकी अपभ्रंश समस्त देशकी साहित्यिक भाषा थी। जिस प्रकार आजकल व्रज, अवधी, विहारी, राजस्थानी आदिके बोलनेवाले भी खड़ीबोलीमें ही साहित्य-रचना करते हैं उसी प्रकार उस कालमें अपभ्रंशके भिन्न-भिन्न रूपोंके बोलनेवाले लोगोंकी साहित्यिक भाषा भी पश्चिमी अपभ्रंश ही थी। इस पश्चिमी अपभ्रंशकी प्रधानताका अेक कारण यह भी था कि वैदिक-मतावलंबी विद्वान् अपनी संस्कृत भाषामें ही मग्न थे—उनकी सारी साहित्य-रचना संस्कृतमें ही होती थी—जनताकी बोलचालकी भाषामें साहित्य-रचना करनेकी उनने कोई पर्वाह नहीं की; इसकी ओर ध्यान देनेवाले मुख्यतया जैन विद्वान् हुअे और जैनोंका प्रभुत्व विशेष करके पश्चिमी भारतमें ही था।

अपभ्रंशका विकास विक्रमकी प्रारंभिक शताब्दियोंमें आरंभ हुआ। उसके विकासका आरंभिक स्थान भी पश्चिमी भारत ही था। आरंभमें यह साधारण जनताकी बोलचालकी भाषा थी। आगे चलकर उसने साहित्यमें पैर रखा। छठी शताब्दीमें तो बड़े-बड़े राजा-महाराजा भी अपभ्रंशमें काव्य-रचना कर सकना अपने लिअे गौरवकी बात समझते थे[१]। काव्यादर्शकार दंडिन् के समयमें उसमें अच्छा साहित्य वर्त्तमान था। दंडिनने समस्त साहित्यके तीन विभाग करके उनमें अपभ्रंश-साहित्यकी भी गणना की है। राजशेखरके जमाने तक तो अपभ्रंश-साहित्यने सम्माननीय स्थान प्राप्त कर लिया था।

अपभ्रंशके साहित्यमें प्रवेश करनेपर उसमें धीरे-धीरे स्थिरता आने लगी। पर बोलचालकी भाषा स्थिर नहीं रह सकती। विकास—परिवर्त्तन—

---

१ वलभी-नरेश दूसरे धरसेनका लेख देखिये।

उसके लिअे स्वाभाविक है। अतः साहित्यिक भाषा और बोलचालकी भाषामें धीरे-धीरे अन्तर पड़ने लगा।

आरंभमें प्रायः समस्त भारतमें अेक ही भाषा साधारण प्रान्तीय भेदों के साथ बोली जाती थी। परंतु हर्षवर्धनके समयके पश्चात् समस्त भारतकी राजनीतिक अेकता छिन्नभिन्न हो गई। देश छोटे-छोटे राज्योंमें बँट गया। प्रान्तोंका पारस्परिक आवागमन धीरे-धीरे कम होता गया जिससे उनका आपसका संबंध विच्छिन्न होने लगा। इससे भाषाकी अेक-रूपता भी नष्ट होने लगी और बोलचालकी भाषाके प्रान्तीय भेदोंका जन्म हुआ। आरंभमें प्रान्तीय भेदोंमें इतनी विभिन्नता न थी कि अेक प्रान्तवाले दूसरे प्रान्तवालों-की बोलीको न समझ सकें परन्तु धीरे-धीरे यह विभिन्नता बढ़ती गई और वर्त्तमान देशभाषाओंका आरंभ हुआ।

इस प्रकार अपभ्रंशके विकासको हम दो भागोंमें बाँट सकते हैं—(१) पूर्वकालीन अपभ्रंश, और (२) उत्तरकालीन अपभ्रंश। इसी उत्तरकालीन अपभ्रंशको विद्वानोंने पुरानी हिंदी[१], जूनी गुजराती, या पुरानी राजस्थानीके नाम दिये हैं[२]। ये नाम प्रान्तीय वैमनस्यके कारण होने लगे हैं अतः हमारी समझमें इस भाषाको इनमेंसे कोई भी नाम न देकर लोकभाषा या उत्तर-कालीन अपभ्रंश कहकर पुकारना ज्यादा अच्छा है[३]।

---

१ श्रीचंद्रधर शर्मा गुलेरीका पुरानी हिंदी नामक निबंध (नागरीप्रचारिणी-पत्रिका, नवीन संस्करण, भाग २)।

२ सच पूछा जाय तो इन तीनोंमें पुरानी राजस्थानी नाम अधिक युक्तिसंगत है क्योंकि हिंदी और गुजरातीकी अपेक्षा राजस्थानी ही उस भाषाके सबसे अधिक निकट है और उसकी विशेषताअें उक्त दोनों भाषाओं की अपेक्षा राजस्थानीमें ही अधिक सुरक्षित हैं।

३ श्रीयुत गुलेरीजी कहते हैं—पुरानी गुजराती, पुरानी राजस्थानी, पुरानी पश्चिमी राजस्थानी आदि नाम कृत्रिम हैं और वर्त्तमान भेदको पीछेकी ओर ढकेलकर बनाये गये हैं, भेदबुद्धिको दृढ़ करनेके अतिरिक्त इनका कोई भी फल नहीं है।

हमें खेदके साथ कहना पड़ता है कि गुलेरीजीने वही काम स्वयं किया जिसके लिअे वे दूसरोंको दोष देते हैं। 'पुरानी हिंदी' यह नया नाम रखकर

इसी उत्तरकालीन अपभ्रंशका विकसित रूप प्राचीन राजस्थानी है। प्राचीन राजस्थानीका क्षेत्र गुजरातसे लेकर प्रयागमंडल तकका विस्तृत भूखंड था। इस समस्त प्रदेशमें अेक ही भाषा-साधारण विभिन्नताओंके साथ बोली जाती थी। बोलचालकी भाषामें धीरे-धीरे विभिन्नता बढ़ती गई पर साहित्यिक भाषा तो बहुत दिनों तक यही प्राचीन भाषा रही जिसे प्राचीन राजस्थानी कहा जा सकता है। कबीर आदि प्राचीन महाकवियोंकी भाषा-को देखनेसे इस सिद्धान्तकी पुष्टि होती है। कबीरकी भाषा अन्य भाषाओं की अपेक्षा राजस्थानीके अधिक निकट है[१]। इसी प्राचीन राजस्थानीसे व्रजभाषा, गुजराती और आधुनिक राजस्थानीका विकास हुआ है[२]। पंजाबी और खड़ीबोलीके निर्माणमें भी इसका प्रमुख हाथ है।

हिन्दी-साहित्यके आदि-कालमें साहित्यकी मुख्य भाषा राजस्थानी थी पर मध्यकालमें यह बात न रही। व्रजभाषाके उत्थानने राजस्थानीको उसके पदसे हटा दिया और अब राजस्थानी केवल राजस्थान प्रान्त तक सीमित रहकर प्रान्तीय भाषा बन गई। व्रजभाके इस आकस्मिक उत्थानका श्रेय

उन्होंने नामोंकी संख्याको बढ़ानेमें ही सहायता पहुँचाई। यहाँपर हम यह भी कह देना उचित समझते हैं कि इस लोकभाषाका 'पुरानी गुजराती' नाम गुजरातीके विद्वानोंका ही (जिन्हें राजस्थानी भाषाके अध्ययनका अवसर नहीं मिला) रखा हुआ है और 'पुरानी हिंदी' नाम हिंदीभाषाके विद्वान् गुलेरीजीका। परन्तु पुरानी राजस्थानी यह नाम किसी राजस्थानीका रखा हुआ नहीं किंतु निष्पक्ष पश्चिमी भाषावैज्ञानिक विद्वानोंका रखा हुआ है जिन्होंने तीनों भाषाओंके विकासका अध्ययन करनेके बाद अैसा किया है। फिर भी यदि गुजराती और हिंदी विद्वानोंको यह सह्य नहीं तो हमें कोई आग्रह नहीं कि उसे पुरानी राजस्थानी ही कहा जाय।

१ देखिये, ढोलामारूरा दूहा, प्रस्तावना (उत्तरार्ध)

२ राजस्थानी भाषाके विकासके विस्तृत विवेचनके लिअे लेखककी लिखी हुई ढोलामारूरा दूहा नामक ग्रंथकी प्रस्तावना (उत्तरार्ध) देखिये। यह ग्रंथ काशीकी नागरी-प्रचारिणीसभा द्वारा प्रकाशित हुआ है।

सूरदास आदि वैष्णव महाकवियोंकी भक्ति-भावसे प्रेरित अमर वाणीको है। उनकी अमर वाणीने व्रजभापाको इतना महत्वशाली बना दिया और वह इतनी लोकप्रिय हो गई कि राजस्थानपर भी उसका प्रभाव पड़ने लगा और राजस्थानके कवि भी उसकी ओर झुके और उसमें काव्य-रचना करने लगे[1]।

(३) डिंगल

राजस्थानीके अेक साहित्यिक रूपका नाम डिंगळ है। द्वित्त और संयुक्त वर्णोंका प्रचुर प्रयोग उसकी अेक मुख्य विशेपता है। कई विद्वानोंने डिंगळको अेक कृत्रिम काव्यभापा कहा है जिसको चारण-भाटोंने गढ़ लिया था। परन्तु यह कथन भ्रान्तिपूर्ण है। डिंगळ एक प्राचीन काव्यभापा है जो आरंभमें बोलचालकी भापासे भिन्न न थी। आरंभमें पिंगळ प्राचीन राजस्थानीका ही अेक रूप थी। उत्तर अपभ्रंशकालके पश्चात जब राजस्थानीका स्वतंत्र विकास होने लगा तो अपभ्रंशके कज्ज, कम्म आदि शब्द बोलचालकी राजस्थानीमें काज और काम आदि बन गये पर कवितामें कज्ज और कम्म आदिका ही बोलवाल रहा। डिंगळ-कविता प्रधानतया वीर-रसात्मक है। द्वित्त और संयुक्त वर्णोंवाले शब्दोंके प्रयोगसे वीर-रसोपयोगी ओजगुणकी व्यंजनामें बड़ी सहायता मिलती है अतः उनका डिंगळ कवितामें ग्रहण स्वाभाविक ही था। बोलचालकी राजस्थानीमें भी काव्यरचना होती थी। उसमें अैसे शब्दोंका प्रयोग धीरे-धीरे कम होता गया। पर वीर-रसात्मक डिंगळ-कवितामें इनके प्रयोगकी प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई यहाँ तक कि आगे चलकर तो शब्दोंको द्वित्त अथवा संयुक्त वर्णवाले बनानेके लिअे जान-बूझकर उनकी कपाल-क्रिया की जाने लगी। इस प्रकार धीरे-धीरे यह बोलचालकी राजस्थानीसे दूर पड़ती गई।

---

१ व्रजभापा या बोलचालकी राजस्थानीसे मिश्रित व्रजभापा राजस्थानमें आगे चलकर 'पिंगळ' के नामसे प्रसिद्ध हुई। इसी पिंगळके साम्यपर चारणोंकी वीर-रसात्मक काव्यभापा बादमें डिंगळ कहलाई।

इस भाषाका नाम डिंगळ क्यों पड़ा और कब पड़ा इसका ठीक पता नहीं चलता। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह नाम विशेष प्राचीन नहीं है। भिन्न-भिन्न विद्वानोंने डिंगळ नाम पड़नेके जो कारण बताये हैं उनका उल्लेख हम यहाँ संक्षिपमें किये देते हैं—

ऊपर कहा जा चुका है कि वैष्णव महाकवियोंकी अमर वाणीने व्रजको इतना महत्त्वशाळी बना दिया और वह इतनी लोकप्रिय हो गई कि राजस्थानके कवि भी उसकी ओर आकृष्ट हुअे और उसमें काव्यरचना करने लगे। अब राजस्थानमें दो मुख्य काव्य-भाषाअें हो गईं—(१) प्राचीन काव्यभाषा, और (२) व्रजभाषा। व्रजकी कविता आगे चलकर पिंगळ कहलाई और धीरे-धीरे व्रजभाषा (तथा बोलचालकी राजस्थानीसे मिश्रित व्रजभाषाका) पिंगळ नाम पड़ गया। इसी पिंगळ शब्दके साम्यपर प्राचीन काव्य-भाषाको डिंगळ कहने लगे।

(१) डाक्टर टेसीटरीका कहना है कि डिंगळ शब्दका असली अर्थ अनियन्त्रित अथवा गँवारू था। व्रजभाषा परिष्कृत और साहित्यशास्त्रके नियमोंका अनुसरण करती थी पर डिंगळ इस विषयमें अनियमित थी अतः उसका यह नाम पड़ा।[१]

(२) डाक्टर हरप्रसाद शास्त्री कहते हैं कि आरंभमें इस भाषाका नाम डगळ था पर बादमें पिंगळ शब्दके साथ तुक मिलानेके लिअे उसका डिंगळ कर दिया गया।[२]

(३) श्रीयुत गजराज ओझाके अनुसार ड अक्षर डिंगळमें बहुत प्रयुक्त होता है यहाँतक कि वह डिंगळकी अेक विशेषता कहा जा सकता है। ड अक्षर की इस प्रधानताको ध्यानमें रखकर ही पिंगळके साम्यपर इस

---

१ Journal of the Asiatic Society of Bengal, Vol. X, no 10, page 376.

२ Preliminary Report on the operation in search of MSS. of Bardic Chronicles (Asiatic Society of Bengal), Page 15.

सूरदास आदि वैष्णव महाकवियोंकी भक्ति-भावसे प्रेरित अमर वाणीको है। उनकी अमर वाणीने व्रजभाषाको इतना महत्वशाली बना दिया और वह इतनी लोकप्रिय हो गई कि राजस्थानपर भी उसका प्रभाव पड़ने लगा और राजस्थानके कवि भी उसकी ओर झुके और उसमें काव्य-रचना करने लगे[१]।

(३) डिंगल

राजस्थानीके अेक साहित्यिक रूपका नाम डिंगळ है। द्वित्त और संयुक्त वर्णोंका प्रचुर प्रयोग उसकी अेक मुख्य विशेषता है। कई विद्वानोंने डिंगळको अेक कृत्रिम काव्यभाषा कहा है जिसको चारण-भाटोंने गढ़ लिया था। परन्तु यह कथन भ्रान्तिपूर्ण है। डिंगळ एक प्राचीन काव्यभाषा है जो आरंभमें बोलचालकी भाषासे भिन्न न थी। आरंभमें पिंगळ प्राचीन राजस्थानीका ही अेक रूप थी। उत्तर अपभ्रंशकालके पश्चात जब राजस्थानीका स्वतंत्र विकास होने लगा तो अपभ्रंशके कज्ज, कम्म आदि शब्द बोलचालकी राजस्थानीमें काज और काम आदि बन गये पर कवितामें कज्ज और कम्म आदिका ही बोलबाल रहा। डिंगळ-कविता प्रधानतया वीर-रसात्मक है। द्वित्त और संयुक्त वर्णोंवाले शब्दोंके प्रयोगसे वीर-रसोपयोगी ओजगुणकी व्यंजनामें बड़ी सहायता मिलती है अतः उनका डिंगळ कवितामें ग्रहण स्वाभाविक ही था। बोलचालकी राजस्थानीमें भी काव्यरचना होती थी। इसमें अैसे शब्दोंका प्रयोग धीरे-धीरे कम होता गया। पर वीर-रसात्मक डिंगळ-कवितामें इनके प्रयोगकी प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई यहाँ तक कि आगे चलकर तो शब्दोंको द्वित्त अथवा संयुक्त वर्णवाले बनानेके लिअे जान-बूझकर उनकी कपाल-क्रिया की जाने लगी। इस प्रकार धीरे-धीरे यह बोलचालकी राजस्थानीसे दूर पड़ती गई।

---

१ व्रजभाषा या बोलचालकी राजस्थानीसे मिश्रित व्रजभाषा राजस्थानमें आगे चलकर 'पिंगळ' के नामसे प्रसिद्ध हुई। इसी पिंगळके साम्यपर चारणोंकी वीर-रसात्मक काव्यभाषा बादमें डिंगळ कहलाई।

इस भाषाका नाम डिंगळ क्यों पड़ा और कब पड़ा इसका ठीक पता नहीं चलता। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह नाम विशेष प्राचीन नहीं है। भिन्न-भिन्न विद्वानोंने डिंगळ नाम पड़नेके जो कारण बताये हैं उनका उल्लेख हम यहाँ संक्षिपमें किये देते हैं—

ऊपर कहा जा चुका है कि वैष्णव महाकवियोंकी अमर वाणीने व्रजको इतना महत्त्वशाळी बना दिया और वह इतनी लोकप्रिय हो गई कि राजस्थानके कवि भी उसकी ओर आकृष्ट हुअे और उसमें काव्यरचना करने लगे। अब राजस्थानमें दो मुख्य काव्य-भाषाअें हो गईं—(१) प्राचीन काव्यभाषा, और (२) व्रजभाषा। व्रजकी कविता आगे चलकर पिंगळ कहलाई और धीरे-धीरे व्रजभाषा (तथा बोलचालकी राजस्थानीसे मिश्रित व्रजभाषाका) पिंगळ नाम पड़ गया। इसी पिंगळ शब्दके साम्यपर प्राचीन काव्य-भाषाको डिंगळ कहने लगे।

(१) डाक्टर टॅसीटरीका कहना है कि डिंगळ शब्दका असली अर्थ अनियमित अथवा गँवारू था। व्रजभाषा परिष्कृत और साहित्यशास्त्रके नियमोंका अनुसरण करती थी पर डिंगळ इस विषयमें अनियमित थी अतः उसका यह नाम पड़ा।[१]

(२) डाक्टर हरप्रसाद शास्त्री कहते हैं कि आरंभमें इस भाषाका नाम डगळ था पर बादमें पिंगळ शब्दके साथ तुक मिलानेके लिअे उसका डिंगळ कर दिया गया।[२]

(३) श्रीयुत गजराज ओझाके अनुसार ड अक्षर डिंगळमें बहुत प्रयुक्त होता है यहाँतक कि वह डिंगळकी अेक विशेषता कहा जा सकता है। ड अक्षर की इस प्रधानताको ध्यानमें रखकर ही पिंगळके साम्यपर इस

१ Journal of the Asiatic Society of Bengal, Vol. X, no 10, page 376.

२ Preliminary Report on the operation in search of MSS. of Bardic Chronicles (Asiatic Society of Bengal), Page 15.

सूरदास आदि वैष्णव महाकवियोंकी भक्ति-भावसे प्रेरित अमर वाणीको है। उनकी अमर वाणीने व्रजभाषाको इतना महत्वशाली बना दिया और वह इतनी लोकप्रिय हो गई कि राजस्थानपर भी उसका प्रभाव पड़ने लगा और राजस्थानके कवि भी उसकी ओर झुके और उसमें काव्य-रचना करने लगे[१]।

(३) डिंगल

राजस्थानीके अेक साहित्यिक रूपका नाम डिंगळ है। द्वित्त और संयुक्त वर्णोंका प्रचुर प्रयोग उसकी अेक मुख्य विशेषता है। कई विद्वानोंने डिंगळको अेक कृत्रिम काव्यभाषा कहा है जिसको चारण-भाटोंने गढ़ लिया था। परन्तु यह कथन भ्रान्तिपूर्ण है। डिंगळ एक प्राचीन काव्यभाषा है जो आरंभमें बोलचालकी भाषासे भिन्न न थी। आरंभमें पिंगळ प्राचीन राजस्थानीका ही अेक रूप थी। उत्तर अपभ्रंशकालके पश्चात जब राजस्थानीका स्वतंत्र विकास होने लगा तो अपभ्रंशके कज्ज, कम्म आदि शब्द बोलचालकी राजस्थानीमें काज और काम आदि बन गये पर कवितामें कज्ज और कम्म आदिका ही बोलबाल रहा। डिंगळ-कविता प्रधानतया वीर-रसात्मक है। द्वित्त और संयुक्त वर्णोंवाले शब्दोंके प्रयोगसे वीर-रसोपयोगी ओजगुणकी व्यंजनामें बड़ी सहायता मिलती है अतः उनका डिंगळ कवितामें ग्रहण स्वाभाविक ही था। बोलचालकी राजस्थानीमें भी काव्यरचना होती थी। उसमें अैसे शब्दोंका प्रयोग धीरे-धीरे कम होता गया। पर वीर-रसात्मक डिंगळ-कवितामें इनके प्रयोगकी प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई यहाँ तक कि आगे चलकर तो शब्दोंको द्वित्त अथवा संयुक्त वर्णवाले बनानेके लिअे जान-बूझकर उनकी कपाल-क्रिया की जाने लगी। इस प्रकार धीरे-धीरे यह बोलचालकी राजस्थानीसे दूर पड़ती गई।

---

१ व्रजभाषा या बोलचालकी राजस्थानीसे मिश्रित व्रजभाषा राजस्थानमें आगे चलकर 'पिंगळ' के नामसे प्रसिद्ध हुई। इसी पिंगळके साम्यपर चारणोंकी वीर-रसात्मक काव्यभाषा बादमें डिंगळ कहलाई।

इस भाषाका नाम डिंगळ क्यों पड़ा और कब पड़ा इसका ठीक पता नहीं चलता। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह नाम विशेष प्राचीन नहीं है। भिन्न-भिन्न विद्वानोंने डिंगळ नाम पड़नेके जो कारण बताये हैं उनका उल्लेख हम यहाँ संक्षिपमें किये देते हैं—

ऊपर कहा जा चुका है कि वैष्णव महाकवियोंकी अमर वाणीने व्रजको इतना महत्त्वशाळी बना दिया और वह इतनी लोकप्रिय हो गई कि राजस्थानके कवि भी उसकी ओर आकृष्ट हुअे और उसमें काव्यरचना करने लगे। अब राजस्थानमें दो मुख्य काव्य-भाषाअें हो गईं—(१) प्राचीन काव्यभाषा, और (२) व्रजभाषा। व्रजकी कविता आगे चलकर पिंगळ कहलाई और धीरे-धीरे व्रजभाषा (तथा बोलचालकी राजस्थानीसे मिश्रित व्रजभाषाका) पिंगळ नाम पड़ गया। इसी पिंगळ शब्दके साम्यपर प्राचीन काव्य-भाषाको डिंगळ कहने लगे।

(१) डाक्टर टॆसीटरीका कहना है कि डिंगळ शब्दका असली अर्थ अनियमित्त अथवा गँवारू था। व्रजभाषा परिष्कृत और साहित्यशास्त्रके नियमोंका अनुसरण करती थी पर डिंगळ इस विषयमें अनियमित थी अतः उसका यह नाम पड़ा।[१]

(२) डाक्टर हरप्रसाद शास्त्री कहते हैं कि आरंभमें इस भाषाका नाम डगळ था पर बादमें पिंगळ शब्दके साथ तुक मिलानेके लिअे उसका डिंगळ कर दिया गया।[२]

(३) श्रीयुत गजराज ओझाके अनुसार ड अक्षर डिंगळमें बहुत प्रयुक्त होता है यहाँतक कि वह डिंगळकी अेक विशेषता कहा जा सकता है। ड अक्षर की इस प्रधानताको ध्यानमें रखकर ही पिंगळके साम्यपर इस

---

१ Journal of the Asiatic Society of Bengal, Vol. X, no 10, page 376.

२ Preliminary Report on the operation in search of MSS. of Bardic Chronicles (Asiatic Society of Bengal), Page 15.

सूरदास आदि वैष्णव महाकवियोंकी भक्ति-भावसे प्रेरित अमर वाणीकी है। उनकी अमर वाणीने व्रजभाषाको इतना महत्वशाली बना दिया और वह इतनी लोकप्रिय हो गई कि राजस्थानपर भी उसका प्रभाव पड़ने लगा और राजस्थानके कवि भी उसकी ओर झुके और उसमें काव्य-रचना करने लगे[1]।

(३) डिंगल

राजस्थानीके अेक साहित्यिक रूपका नाम डिंगळ है। द्वित्त और संयुक्त वर्णोंका प्रचुर प्रयोग उसकी अेक मुख्य विशेषता है। कई विद्वानोंने डिंगळको अेक कृत्रिम काव्यभाषा कहा है जिसको चारण-भाटोंने गढ़ लिया था। परन्तु यह कथन भ्रान्तिपूर्ण है। डिंगळ एक प्राचीन काव्यभाषा है जो आरंभमें बोलचालकी भाषासे भिन्न न थी। आरंभमें पिंगळ प्राचीन राजस्थानीका ही अेक रूप थी। उत्तर अपभ्रंशकालके पश्चात जब राजस्थानीका स्वतंत्र विकास होने लगा तो अपभ्रंशके कज्ज, कम्म आदि शब्द बोलचालकी राजस्थानीमें काज और काम आदि बन गये पर कवितामें कज्ज और कम्म आदिका ही बोलबाल रहा। डिंगळ-कविता प्रधानतया वीर-रसात्मक है। द्वित्त और संयुक्त वर्णोंवाले शब्दोंके प्रयोगसे वीर-रसोपयोगी ओजगुणकी व्यंजनामें बड़ी सहायता मिलती है अतः उनका डिंगळ कवितामें ग्रहण स्वाभाविक ही था। बोलचालकी राजस्थानीमें भी काव्यरचना होती थी। उसमें अैसे शब्दोंका प्रयोग धीरे-धीरे कम होता गया। पर वीर-रसात्मक डिंगळ-कवितामें इनके प्रयोगकी प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई यहाँ तक कि आगे चलकर तो शब्दोंको द्वित्त अथवा संयुक्त वर्णवाले बनानेके लिअे जान-बूझकर उनकी कपाल-क्रिया की जाने लगी। इस प्रकार धीरे-धीरे यह बोलचालकी राजस्थानीसे दूर पड़ती गई।

---

१ व्रजभाषा या बोलचालकी राजस्थानीसे मिश्रित व्रजभाषा राजस्थानमें आगे चलकर 'पिंगळ' के नामसे प्रसिद्ध हुई। इसी पिंगळके साम्यपर चारणोंकी वीर-रसात्मक काव्यभाषा बादमें डिंगळ कहलाई।

इस भाषाका नाम डिंगळ क्यों पड़ा और कब पड़ा इसका ठीक पता नहीं चलता। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह नाम विशेष प्राचीन नहीं है। भिन्न-भिन्न विद्वानोंने डिंगळ नाम पड़नेके जो कारण बताये हैं उनका उल्लेख हम यहाँ संक्षिपमें किये देते हैं—

ऊपर कहा जा चुका है कि वैष्णव महाकवियोंकी अमर वाणीने व्रजको इतना महत्त्वशाली बना दिया और वह इतनी लोकप्रिय हो गई कि राजस्थानके कवि भी उसकी ओर आकृष्ट हुअे और उसमें काव्यरचना करने लगे। अब राजस्थानमें दो मुख्य काव्य-भाषाऐं हो गई—(१) प्राचीन काव्यभाषा, और (२) व्रजभाषा। व्रजकी कविता आगे चलकर पिंगळ कहलाई और धीरे-धीरे व्रजभाषा (तथा बोलचालकी राजस्थानीसे मिश्रत व्रजभाषाका) पिंगळ नाम पड़ गया। इसी पिंगळ शब्दके साम्यपर प्राचीन काव्य-भाषाको डिंगळ कहने लगे।

(१) डाक्टर टेसीटरीका कहना है कि डिंगळ शब्दका असली अर्थ अनियमित अथवा गँवारू था। व्रजभाषा परिष्कृत और साहित्यशास्त्रके नियमोंका अनुसरण करती थी पर डिंगळ इस विषयमें अनियमित थी अतः उसका यह नाम पड़ा।[१]

(२) डाक्टर हरप्रसाद शास्त्री कहते हैं कि आरंभमें इस भाषाका नाम डगळ था पर बादमें पिंगळ शब्दके साथ तुक मिलानेके लिअे उसका डिंगळ कर दिया गया।[२]

(३) श्रीयुत गजराज ओझाके अनुसार ड अक्षर डिंगळमें बहुत प्रयुक्त होता है यहाँतक कि वह डिंगळकी अेक विशेषता कहा जा सकता है। ड अक्षर की इस प्रधानताको ध्यानमें रखकर ही पिंगळके साम्यपर इस

---

१ Journal of the Asiatic Society of Bengal, Vol. X, no 10, page 376.

२ Preliminary Report on the operation in search of MSS. of Bardic Chronicles (Asiatic Society of Bengal), Page 15.

भाषाका नाम डिंगळ रखा गया। वे लिखते हैं कि जैसे विहारी ल-कार-प्रधान भाषा है उसी प्रकार डिंगळ ड-कार-प्राधानभाषा है।[1]

(४) श्रीयुत पुरुषोत्तमदास स्वामीका मत है कि डिंगळ शब्द डिम् और गळ इन शब्दोंके मिलनेसे बना है। डिम्का अर्थ है डमरू और गळका अर्थ है गला। डमरूकी आवाज वीरोंके लिअे उत्साहवर्धक होती है और वह वीर रसके देवता महादेव (प्रमथ) का वाजा है। अतः डिमगळ या डिंगळ का लक्षणिक अर्थ हुआ डमरूकी ध्वनिकी भाँति उत्साहवर्धक, गलेसे निकली हुई, कविता। डिंगळ भाषामें अैसी कविताकी प्रधानता है अतः यह भी डिंगळ नामसे प्रसिद्ध हुई।[2]

(५) राजस्थानमें प्रसिद्ध अेक अन्य मत यह भी है कि डिंगळका मूल डिभ और गळ शब्द हैं। डिभका अर्थ है वालक और गळका अर्थ है गला। डिभगळ (जो वादमें जाकर डिंगळ वन गया) का अर्थ हुआ वालककी भाषा। जैसे प्राकृत वालभाषा कहलाती थी उसी प्रकार राजस्थानकी यह काव्यभाषा भी डिभगळ या डिंगळ कहलाई।

इन मतोंमें टैसीटरीके मतको छोड़कर वाकी सबको विचित्रतापूर्ण कल्पनाअें कहना ही अधिक समुचित है। डाक्टर हरप्रसाद शास्त्रीने अपने मतके समर्थनमें चौदहवीं शताब्दीका अेक दूहा उपस्थित किया है पर उसकी प्रामाणिकतामें पूरा संदेह है—कम-से-कम उसकी भाषा और लेखनशैलीका रूप तो चौदहवीं शताब्दीका नहीं। फिर उसका अर्थ भी हमें वह नहीं जान पड़ता जो डाक्टर महोदयने वतलाया है।

टैसीटरीके कथनमें संभव है कि सत्यता हो पर असल वात तो यह है कि जिस समय व्रजभाषाने यहाँ राजस्थानमें प्रवेश किया उस समय डिंगळ गँवारू भाषा नहीं थी। वह व्रजभाषाके समान ही राज-दरवारोंके वड़े-वड़े कवियोंकी समादृत काव्यभाषा थी और उसमें अपना निजका साहित्यशास्त्र वर्त्तमान था।

१ नागरी-प्रचारणी-प[illegible] १४, अं[illegible] [illegible]-१२४.
२ वही, भाग [illegible] ५, [illegible]

हमारी सममफमें डिंगळ शब्द पिंगळ के साम्यपर अवश्य बना है पर उसका कोई विशेष अर्थ नहीं था जिसको ध्यानमें रखकर यह शब्द गढ़ा गया। भाषाविज्ञानके सुप्रसिद्ध प्रकांड विद्वान श्रीचंद्रधर शर्मा गुलेरीकी भी यही सम्मति है[१]। वे लिखते हैं—"मेरे मतमें डिंगळ केवल अनुकरण-शब्द है, 'काफिया न मिलेगा तो बोर्फो तो मरेगा' की कहावत के अनुसार पिंगळसे भेद दिखानेके लिअे बना लिया है। जैसे वासवदत्ताके विषयमें (अधिकृत्य) बनाई गई कहानी वासवदत्ता कहलाती है वैसे ही लक्षण शास्त्र और लक्ष्य रचनाके अभेदोपचारसे हिंदी-कविता[२] पिंगळ कहलाई। उससे भेद करनेके लिअे श्रुतिकटु टवर्ग-बहुल भाषाकी कविताके लिअे डिंगळ अेक यदृच्छा शब्द[३] है, डित्थ[४] आदिकी तरह इसका कोई अर्थ नहीं है। निश्चित अर्थके वाचक किसी शब्दसे, उससे भेद दिखानेके लिअे, उसीकी छायापर दूसरा अनर्थक शब्द बनने और उसके दूसरे अर्थके वाचक हो जानेके, कई उदाहरण मिलते हैं।"

श्रीगुलेरीजीने आगे इस प्रकारके कतिपय उदाहरण भी दिये हैं; जैसे कर्म (प्रधानकर्म) की छायापर कलम (अप्रधान कर्म), और कँवर (कुमार, जिसका पिता जीवीत हो) की छायापर भँवर (जिसका दादा जीवित हो)।

उत्तर-कालमें डिंगळने दो रूप धारण किये। प्राचीन डिंगळ भाषाके साथ साधारण बोलचालकी राजस्थानीका मिश्रण होने लगा यहाँ तक कि आगे चलकर दोनोंमें बहुत कम अंतर रह गया। यह अन्तर भी ज्यादातर शब्द-कोष (Vocabulary) संबंधी था। संवत् १८६१ में बना हुआ रघुनाथरूपक इस उत्तरकालीन डिंगळका अच्छा उदाहरण है।

---

१ नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका, नवीन संस्करण, भाग ३, अंक १, पृष्ठ ९८।

२ हिंदीसे यहां ब्रजभाषाका अभिप्राय है।

३ व्यक्तिवाचक शब्द Proper Name.

४ डित्थ अेक व्यक्तिवाचक नाम है जिसका प्रयोग न्याय आदि शास्त्रोंमें पाया जाता है।

दूसरे रूपका मूल ढाँचा व्रजभाषा है पर शब्दोंकी कपालक्रिया करके उसको डिंगळ-रूप देनेका प्रयत्न किया गया है। अनावश्यक अनुस्वारोंका प्रयोग इसकी अेक मुख्य विशेषता है। इस प्रकार यह डिंगळ बहुत-कुछ कृत्रिम काव्य-भाषा है। इसके उदाहरण मीसण सूर्यमल्ल कृत वंशभास्कर, मानकवि कृत राजविलास, आढा किशन कृत भीमविलास आदि हैं। इस रूपका मूल पृथ्वीराजरासोमें मिलता है पर रासोकी भाषा इतनी कृत्रिम नहीं है जितनी इन पिछले काव्योंकी। इस रूपके बीज १७ वीं शताब्दीकी रचनाओंमें यत्र-तत्र पाये जाते हैं।

डिंगळ मुख्यतया चारणों और भाटोंकी काव्यभाषा है। डिंगळ-साहित्यके अधिकांश लेखक चारण और भाट ही हैं। आरंभमें, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, बोलचालकी भाषा और इस काव्यभाषामें विशेष अंतर न था पर बादमें दोनोंका अंतर बढ़ता गया और दोनों दो भिन्न-भिन्न भाषाअें-सी हो गई। उत्तर कालमें प्राचीन डिंगळके मृतभाषा हो जानेपर परावर्त्तन आरंभ हुआ, तथा उसमें बोलचालकी भाषाका अधिकाधिक मेल होने लगा यहाँ तक कि दोनोंमें कोई विशेष अंतर नहीं रह गया। डाक्टर टैसीटरीने डिंगळके विषयमें लिखा है कि वह आरंभमें पश्चिमी राजस्थानकी बोलचालकी भाषा थी और तत्कालीन जैन लेखकोंकी रचनाओंमें सुरक्षित मिलती है। पर यह कथन सर्वथा ठीक नहीं। डिंगळ प्राचीन राजस्थानकी बोलचालकी भाषासे मिलती-जुलती अवश्य थी पर उसके साथ अेक न थी। इसी प्रकार जैन लेखकोंकी रचनाओंमें जो भाषा मिलती है वह तत्कालीन बोलचालकी भाषा है, उसे डिंगळ नहीं कह सकते।

डिंगळ भाषाके विकासको दिखानेके लिअे प्राचीन डिंगळ कविताके कतिपय उदाहरण यहाँपर दिये जाते हैं—

(१) यह उदाहरण सुप्रसिद्ध जैन कवि सोमप्रभाचार्यके कुमारपाल-प्रतिबोध नामक ग्रंथसे लिया गया है जिसका रचना-काल संवत १२४१ है। इसकी कवितामें हमें डिंगळका पूर्वाभास मिलता है—

गयण-मग्ग-संलग्ग लोल-कल्लोल-परंपरु
णियकरणुक्कड-नक्क-चक्क-चंकमण दुहंकरु
उच्छलंत-गुरु-पुच्छ-मच्छ-रिछोलि-निरंतरु
विळसमाण-जाळा-जडाळ-वडवानळ-दुत्तरु
आवत्त-सयायलु जलहि लहु गोपहि जिव ते नित्थरहि
नीसेस-वसन-गण-निट्ठवणु पासनाहु जे संभरहि

(२) निम्नलिखित उदाहरण श्रीधर कवि रचित रणमल्ल-छंद नामक ग्रंथसे लिये हुये हैं। इस काव्यका समय १४५४ निश्चित किया गया है। इसमें ईडरके राठोड़ राणा रणमल्लकी वीरता और विजयका वर्णन है जो उसने पाटणके सूबेदार जफरखाँपर प्राप्त की थी—

(क) कड़क्कि भूंछ भींछ मेच्छ मल्ल मोल्लि मुग्गरि
चमक्कि चल्लि रण्णमल्ल भल्ल फेरि संगरि
थमक्कि धार छोडि धान छंडि धाडि धग्गड़ा
पड़क्कि वाटि पक्कड़ंत मारि मीर मक्कड़ा

(ख) रउद्द सद्द आसमुद्द साहसिक्क सूरइ
कठोर थोर घोर छोर पारसिक्क पूरइ
अहंग गाह अंग गाहि गालि बाल किज्जइ
विछोहि जोइ तेह नेहि मेच्छ लोडि लिज्जइ

(ग) मुहु उच्छळि मुच्छ मुहच्छवि कच्छवि भूमइ भूंछ समुच्छलिया
उल्लाळवि खग्ग करग्गि निरग्गळ गणइ तिणइ दल अग्गळया
प्रल्लय करि लसकरि लोहि छवच्छव छंट करइ छत्तीस छळि
रणमल्ल रणंगणि राउत विळसइ रवि-तळि खित्तिय रोसवळि

(घ) जि मुद्दा समुद्दा सदा रुद्द-सद्दा
जि बुंबाळ चुंबाळ बंगाळ बंदा
जि जुज्झार तुक्खार कम्माल मुक्कि
रणमल्ल दिठ्ठेण ते ठाम चुक्कि
जि रुक्का मलिक्का वलक्का क पाडि
जि जुघ्घा मुहुघ्घा सनघ्घा भजाडि

ति भू आखड़ी आघड़ी दंड किज्जि
रणमल्ल दिठ्ठी मुही घास लिज्जि

(३) ये दो दूहे 'खीची-अचळदासरी वचनका' से लिये गये हैं जिसका समय सम्वत् १४७० के लगभग है—

अेक्कइ वृक्ष वसंतड़ा अेव्वड़ अन्तर काइ
सिंघ कवड्डी ना लहइ गयवर लक्ख विकाइ
गयवर गळइ गळथ्थियउ जहँ खंचइ तहँ जाइ
सिंघ गळथ्थण जइ सहइ तउ दह लक्ख विकाइ

(४) नीचे लिखा गीत बारठ चारण चोहथकी कृति है। इस गीतमें बीकानेर राज्यके संस्थापक राव बीकोकी प्रशंसा की गई है। उक्त चारण राव बीकोका समकालीन था जिसका समय १४६५ से १५६१ तक है—

बीकउ वाखाणि जेणि वडरायां मोटागढ राखइ मंडळि
अपणउँ गोकल-तणुं उवारियइ कान्ह प्रवाड़उ किस्यउ कळि
कांठळिअे उग्रहिअे कमधज नरिंद वखाणइ घणा नरिंद
तईं आंगुळी अनड़ तू ऊपरि गिड़े कियउ पड़ते गोविंद
ऊपरि गोप कियइ गिरि ओळइ अँजसइ आदि वराह उरु
बीग्रहिया ऊग्रहिया बीकइ पूगळ नइ वइरसल्लपुरु
अपूरब दे वर दाखि अतिगह कोट बि राखिय ठेलि कँधार
पर उपगार भला पुरखोतम अपणां जगत करइ उपगार

(५) यह अंश बीठू खाँपके चारण सूजो नगराजोत कृत राउ जइतसी-रउ छन्द नामक काव्यसे लिया गया है जिसका समय संवत् १६५१ के लगभग है—

(क) किय हूकळ चंचळ कळळ, गइ ग्रांवक्क गड़क्क
दरस्यउ सरि सुरितांण-दळ, चळ-चळ च्यारे चक्क

(ख) पाअे हसम्मि हालइ पयाळ, फड़फड़इ नाग फाटइ फुणाळ
रायां-राउ ऊपरि असुर-राइ जळरांण जांण मेल्ही म्रजाइ
पुड़ सातइ धूजिय पवँग-पाइ नागींद नाचि नोवति निहाइ
झूझारां आगी झिखइ झाळ मुस्साहल जाणे नखत-माळ

पतिसाह-सेन दीवी परिस्ख   उडियण किरि आवइ अंतरिख्ख
रेवंत खेड़ि चउ पहर राति   पतिसाह-सेन   ढूका   प्रभाति

(६) नीचेका अंश उसी कालके आसपास लिखे हुए अेक अज्ञात कविके 'छन्द राउ जइतसीरउ' नामक ग्रन्थसे लिया गया है—

संग्रामि भिड़इ हींदू सखेध   वाजइ गुरज्ज थिड़ बाणवेध
पिड़ि भोमि निहट्टइ खेड़पत्ति   धड़ पड़इ हेक घूमइ धरत्ति
विरदइतु जइतु रण-वट्ट बंधि   सत्रु घाइ निजोड़इ गड़ा संधि
ऊच दइ असुर-हरि धार ईम   भारथ्थि पईठउ जांण भीम
केवियां निवहि कड़ड़ंति कंघ   वड़ड़ंति हाड अजिड़इ बंध
पूरंति रुहिर योगिणी पत्त   रड़यड़इ रूंड दड़वड़इ रत्त

(७) निम्नलिखित उदाहरण महाराज पृथ्वीराज कृत कृष्ण-रुकमणीरी वेलि नामक काव्यका है जो डिंगळका भापाकी दृष्टिसे सबसे प्रौढ़ ग्रन्थ है। इसका रचनाकाल संवत् १६३७ है।

(क) बळि-वंधण मूझ सियाळ सिंघ-बळि प्रासइ जउ वीजउ परणइ
कपिळ धेन दिन पात्र कसाई, तुळसी करि चंडाळ-तणइ
हरि हुअे वराह हअे हरिणाकस हूँ ऊधरी पताळ-हूँ
कहउ तई करणा-मइ केसव सीख दीध किणि तुम्हांसूं
रामा-अवतार वहे रिणि रामण किसी सीख करणा-करण
हूँ ऊधरी त्रिकूटगढ-हूँती हरि बंधे वेळाहरण

(ख) काळी करि कांठळि ऊजळि कोरण धारे स्रावण धरहरिया
गळि चालिया दसों दिसि जळग्रभ थंभि न विरहिणि-नइण थिया
वरसतइ दड़ड़ नड़ अनड़ वाजिया सघण गाजियउ गुहिर सदि
जळनिधि ही सामाइ नहीं जळ, जळवाळा न समाइ जळदि
धर स्यामा सरिस स्यामतर जळधर गेघूंचे गळिवाहां घाति
भ्रमि तिणि सन्ध्याबंदण भूला रिखय न लखे सकइ दिनराति

(८) उक्त महाराज पृथ्वीराजके कुछ दूहे यहाँ लिखे जाते हैं—

तूंबी ही तारण समथ जळ ऊपर पाखाण
ताहि तारियइ जगतरण तइ केहा वाखाण

पातळ जउ पतिसाह बोलइ मुख-हूँता वइण
मिहर पिछम दिस मांह ऊगइ कासपराव-उत

(९) ये दूहे आढा दुरसा-कृत विड़द-छिहत्तरीसे उद्धृत हैं जो महाराणा प्रताप (१५९७-१६५३) का समकालीन था।

थिर-नृप हींदुस्थान लातरग्या मग लोभ लग
माता भूमी मान पूजइ राण प्रतापसी
उडइ रीठ अणपार पीठ लगा लाखां पिसण
वेढीगार वकार पइठउ उदियाचळ पतउ

(१०) यह उदाहरण महाराज रायसिंह (सत्रहवीं शताब्दीका पूर्वार्ध) बीकानेर-नरेशकी प्रशंसामें लिखित अेक समसामयिक गीतका अंश है—

पाताळ तठइ बळि, रहण न पाऊँ, रिध मांडे स्त्रगि करण रहइ
मो म्रितलोक राइस्यंघ मारइ, कठइ रहूँ हरि,—दळिद्र कहइ
रयण-दियण पाताळि न राखइ, कनक-स्रवण रूधउ कविलास
महि-पुड़ि गज-दातार ज मारइ, विसन, किसइ पुड़ि मांडउँ वास?

(११) नीचेका उदाहरण खिड़िया खाँपके चारण जगो कृत राव रतन महेसदासोतरी वचनिकासे लिया गया है। इसका समय १६५७ के लगभग है—

(क) हिन्दुआण तुरकाण करण घमसाण कड़क्खै
सझि कवाण गुण वाण दळां प्रारँभ बळ दक्खै
भड़ भिड़ज्ज गज धज्ज घड़ा चतुरंग कसस्सै
सिंधू सद्द रवद्द नद्द नीसाण निहस्सै
चत्रबाह साहि दोइ राह चढि सझि फौजां दोवै समय
विचि झंड थंड मंडे वडा करिवा भारथ अेम कथ

(ख) खगां चढि धार हुवै बि-बि खंड पड़ै धर हिंदु मळेच्छ प्रचंड
रळत्तळि नीर जिहीं रुहिराळ खलाहळ जाणि कि भाद्रव-खाळ

(ग) कसै हाथळां टोप मोजा क्रिगल्लं जमद्दाढ वामै जिके खाग ढल्लं
गुपत्ती कती संगि गद्दा गुरज्जं कसै आवधां औसछै जुज्झ कज्जं

: भुथाणं कवाणं जुआणं समल्लं मिळै मीरजादा इसा जुझमल्लं
बिन्हे फौज फौजां घणी चत्रवाहं सझै सार आवध्ध लीधां सनाहं[1]

(१२) गाडण गोपीनाथ कृत गजरूपक (संवत १८१० के आसपास) से—

ऊँनराव वहे मुहमंद कंठीर नरनाह चड़ावे वंस नीर
जैतसी भंजि कंम्मरै जड़ागि धूंवहर राड़ लागे धियागि
माळदे-तणो भंजियौ मांण कलियांण पांण झल्ले केवाण
बांधियौ उलक रासैं दुवाह मारवैं राव गुजरात मांह

(१३) प्रथम नेह भीनौ महाक्रोध भीनौ पछै लाभ चँमरी सँमर झोक लागै
रायकँवरी वरी जेण वागै रसिक वरी घड़ कँवारी तेण वागै
करण अखियात चढियो भलां काळमी निवाहण वंण भुज वांधिया नेत
पँवारां-सदन वरमाळसूं पूजियो खळां किरमाळसूं पूजियो खेत
नेह निज रीझरी वात चित्त ना धरी प्रेम गवरी-तणो नांहि पायो
राजकँवरी जिका चढी चँवरी रही आप भँवरी-तणी गीठ आयो
—पाबूजीरो गीत

(१४) मिळतां मिले न मुजरो मानैं आयां करै न आदर ऊठ
आसण मांड चोफळा अैंठे परगहने बैठैं दे पूठ

---

१ इस अंशमें कृत्रिम डिंगळका आभास मिलता है जिसमें आगे चलकर बहुत-सी रचनाऐं लिखी गईं। भाषा-विकासके नियमोंके विरुद्ध अक्षरोंको द्वित्त बनाना और अनावश्यक अनुस्वारका प्रयोग करना दोनों बातें इस उदाहरणमें मिलती हैं जिनका बादमें बहुत प्रयोग होने लगा। अैसा प्रतीत होता है कि इस प्रकारकी रचनाओंका आरम्भ इसी कालके लगभग हुआ। पृथ्वीराजरासोमें ये बातें प्रचुर परिणाममें मिलती हैं। उसके वर्त्तमान रूपका रचनाकाल इसी समयके आसपास आ सकता है। रासोकी सबसे प्राचीन प्रति १६४७ की बताई जाती है जो नागरीप्रचारिणी-सभामें सुरक्षित है। पर उसका सम्वत् हमारी समझमें गलत पढ़ा गया है। यह १६४७ न होकर १७४७ प्रतीत होता है। सत्रहवीं शताब्दीके पूर्वार्धकी दो प्रतियां बीकानेर-राज्यके पुस्तकालयमें हैं। इससे पूर्वकी कोई प्रति उपलब्ध नहीं होती। अतः उसके वर्तमान-रूपका रचनाकाल १६०० से पूर्व होना सम्भव नहीं जान पड़ता।

नरपत जरां सिकार नीसरै हळवळ हुवै नकीयां हाथ
आगे लियां तासळो अंठो वैठो रहै फाड़ियां वाक
आगे गयां सिकार ऊछरै ओ भी नाखै तुरँग उपाड़
ऊठी वाग पागड़ो उचकै नीचो पड़ै तुड़ावै नाड़
इसड़ी भांत हाजरी आवै पछै करावै जपत पटो
पाछो जाय घरां पिसतावै सझियो नह वापरो सटो

(१५) सुंभां-निसुंभा-भंजणी तूं घटा दे रोर आदेसरी
अंभा तोर दुलंभा थटा दे दयां पाज
विलंवां न कीजै जठी तठीसूं खटा दे वीत
अंवा मूझ चीतको मिटादे सोच आज

(१६) उडै पग-हाथ, किरका हुवै अंगरा, वहै रत जेम सावण-वहाळा
आप-आपोपरी जोयने आडियां लड़ै रिण भला भला निराताळा
तहक नीसांण हरखांण गिरवांण तन चित्त सरसांण रंभ गांण चालै
निडर रिख-रांण गह पांण वीणा नचै भांण रथ-तांण घमसांण भाळै
—रघुनाथरूपक (सं० १८६१)।

(४) राजस्थानी भाषाका साहित्य

राजस्थानीका प्राचीन साहित्य वहुत विस्तृत और महत्त्वपूर्ण है। पद्य ही नहीं किंतु गद्य भी उसमें प्रचुर परिमाणमें मिलता है। भारतीय भाषा-विज्ञान और मध्यकालीन भारतीय इतिहासके सुचारु अध्ययनके लिअे राजस्थानी साहित्यका अध्ययन नितान्त आवश्यक है। खेद है कि विद्वानों-का ध्यान अभीतक इस ओर नहीं गया और यह बहूमूल्य साहित्य प्रायः सब-का-सब अज्ञानांधकारके गहरे गर्त्तमें छिपा पड़ा है। यदि शीघ्र ही इसके उद्धारकी ओर ध्यान नहीं दिया गया तो यह बहुमूल्य निधि कीड़ोंका ग्रास बनकर या मटकों और बोरियोंमें सड़कर नष्ट हो जायगी।

राजस्थानी साहित्यको हम दो भागोंमें बाँटेंगे—(१) डिंगल साहित्य, और (२) साधारण बोलचालकी राजस्थानीका साहित्य।

(५) डिंगल साहित्य

डिंगळका साहित्यभंडार बहुत विस्तृत है। वह प्रधानतया वीर और शृंगार रसात्मक है। डिंगळका अपना अलग साहित्य-शास्त्र वर्त्तमान है जिसके नियमोंका निर्वाह डिंगळ-लेखकोंको करना पड़ता है। इसी प्रकार उसका पिंगळ भी अपना अलग है। डिंगळ कविता मुख्यतया गीतोंमें है। इन गीतोंका विस्तृत विवरण कवि मंछाराम कृत रघुनाथरूपक नामक ग्रंथमें किया गया है। गीत-साहित्य डिंगळकी अेक विशेषता है। ये गीत विशेष-तया अैतिहासिक व्यक्तियोंके संबंधके हैं और उनमें इन लोगोंकी वीरता तथा उदारतापूर्ण पराक्रमोंका वर्णन है। देवताओंकी स्तुतियोंके धार्मिक गीत भी बहुत बड़ी संख्यामें मिलते हैं। इन सब प्रकारके गीतोंका यदि संग्रह किया जाय तो उनकी संख्या लाखों तक पहुँचेगी। छन्दोंमें दूहा और कवित्त (छप्पय) डिंगळके प्रमुख छंद हैं। अन्य छंदोंमें पाधड़ी (पद्धरी), भुजंगप्रयात, मोतियदाम, हनूफाल तथा त्रिभक्खरी उल्लेखनीय हैं।

डिंगळ कविताकी अेक प्रमुख विशेषता वैंणसगाई अलंकारका प्रयोग है। वैंणसगाई अेक प्रकारका अनुप्रास होता है। इसके लिअे यह आवश्यक है कि छन्दके प्रत्येक चरणमें पहले शब्दका आरंभ जिस वर्ण से हो उसके अंतिम शब्दका आरंभ भी उसी वर्णसे होना चाहिअे[१]। यहांपर अेक उदाहरण दिया जाता है—

> गंगाजळ गटकीह, निरणे ही लीधी नहीं।
> भव-भवमें भटकींह, भूत हुवा, भागीरथी॥

डिंगळकी कुछ कृतियोंका उल्लेख यहांपर किया जाता है—

(१) श्रीधर कृत रणमल्ल-छंद। इसका रचनाकाल संवत् १४५४ के लगभग है। इसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। यह वीर-रसकी अेक बहुत सुंदर रचना है।

---

१ नहीं तो वह वर्ण अंतिम शब्दमें कहीं-न-कहीं अवश्य आना चाहिअे। वैंणसगाईके लिअे च-छ, ज-झ, ग-घ, प-फ, ट-ठ, द-ढ, ध-द, न-ण, और ब-व में तथा इ-ई-उ-अे-ओ-य-व में अन्तर नहीं गिना जाता।

(२) वीठू चारण सूजो नगराजोत कृत राउ जाइतसी-रउ छन्द— रचनाकाल संवत् १५६० के आसपास। इसमें कामरांके वीकानेरपर आक्रमण करने तथा राव जैतसी द्वारा उसके पराजित होनेकी कथा है। इसकी भाषा बड़ी प्रौढ़ और प्रांजल है।

(३) किसी अज्ञात चारण-कवि कृत राउ जइतसी-रउ छंद—इसमें भी वही कथा है तथा इसका रचनाकाल भी करीब-करीब वही है। विस्तारमें यह सूजोके छंदसे बड़ा है।

(४) राठोड़ पृथ्वीराज कृत कृष्ण-रुकमणीरी वेल—इसका रचनाकाल संवत १६३७ है। ये पृथ्वीराज वीकानेर-नरेश महाराज रायसिंहजीके अनुज तथा अकबरके दरवारी थे। यह ग्रंथ डिंगळका सर्वश्रेष्ठ काव्यग्रंथ समझा जाता है।

(५) आढा चारण दुरसो कृत विड़द-छिहत्तरी—यह कवि महाराणा प्रताप तथा अकबरका समकालीन था। इस रचनामें महाराणा प्रतापके स्वातंत्र्यप्रेमकी प्रशंसाके ७६ दूहे हैं।

(६) वरसळपुरगढ-विजय या सुजाणसिंहरासो—इसमें वीकानेर-नरेश सुजाणसिंहकी वरसळपुर-विजयका वर्णन है। इसका समय संवत १७६६ के लगभग है।

(७) बारठ नरहरिदास कृत अवतार चरित्र-इसमें भगवान्के अवतारोंका चरित्र लिखा गया है।

(८) कविया चारण करणीदान कृत सूरजप्रकाश—इसमें जोधपुर-नरेश अभयसिंहकी विजयोंका वर्णन है। इसका रचना काल संवत १७८७ के लगभग है।

(१०) उक्त चारण कृत विड़द-सिणगार—इसका विषय तथा रचना-काल ऊपर लिखे अनुसार ही है।

(११) गाडण चारण गोपीनाथ कृत ग्रंथराज या गजसिंह-रूपक—इसमें वीकानेर-नरेश गजसिंहजीका चरित्र वर्णित है। इसका समय संवत १८०० के आसपास है।

(१२) आढो चारण किशन कृत भीम-विलास—इसमें मेवाड़के महाराणा भीमसिंहका चरित्र लिखा गया है।

(१३) जस-रत्नाकर।

(१४) वीठू चारण भोमो कृत रतनविलास।

(१५) कविया चारण सागरदान कृत रतन-रूपग।

(१६) रतनविलास ग्रंथ।

ये बीकानेर-नरेश महाराज रतनसिंहजीके विषयमें बने हुअे हैं। इनका समय १९वीं शताब्दीका अंतिम भाग है।

(१७) मीसण चारण सूर्यमल कृत वंशभास्कर—यह डिंगळका सुप्रसिद्ध ग्रंथ है। इस ग्रंथकी भाषामें व्रजभाषाका मिश्रण बहुत अधिक है। कृत्रिम डिंगळका यह चरम उदाहरण है। पृथ्वीराजरासोको छोड़कर यह राजस्थानी और हिंदीसाहित्यका सबसे मोटा महाकाव्य है। इसका समय संवत् १८९७ है।

(१८) सेवग मंछाराम कृत रघुनाथ-रूपक—इसमें डिंगळ कवितामें प्रयुक्त गीतोंके लक्षण और उदाहरण दिये गये हैं। साहित्यशास्त्र तथा पिंगळकी कुछ बातोंका भी संक्षेपमें वर्णन किया गया है। उदाहरणोंमें रामायणकी कथा क्रमसे वर्णित की गई है।

गीतोंके लेखकोंमें कुछ महत्वपूर्ण नाम ये हैं—(१) गाडण पसाइत (२) आढो दुरसो (३) खिड़ियो जगो (४) गाडण ऊगो (५) झूलो साँइयो (६) बारठ अलो (७) बारठ हरसूर (८) वीठू मेहो (९) साँदू मालो (१०) बारठ ईसर (११) चारणी पदमा (१२) रतनू ईसर (१४) महाराज पृथ्वीराज राठोड़ इत्यादि-इत्यादि।

डिंगळमें गद्य भी लिखा गया है। वह भी अनेक-रूपात्मक है। डिंगळ गद्यका अेक भेद वचनिका है। वचनिका उस गद्यको कहते हैं जिसमें वाक्योंकी तुक मिलती जाय।[१] वचनिकाओंमें दो बहुत प्रसिद्ध हैं—(१) खीची

१ तुकवाला गद्य लिखनेकी परिपाटी बहुत प्राचीन है। पंद्रहवीं शताब्दीमें लिखी हुई कई राजस्थानी भाषाकी कथाअें इस प्रकारके गद्यमें लिखी हुई मिली

(२) वीठू चारण सूजो नगराजोत कृत राउ जाइतसी-रउ छन्द—रचनाकाल संवत् १५६० के आसपास। इसमें कामरांके वीकानेरपर आक्रमण करने तथा राव जैतसी द्वारा उसके पराजित होनेकी कथा है। इसकी भाषा वड़ी प्रौढ़ और प्रांजल है।

(३) किसी अज्ञात चारण-कवि कृत राउ जइतसी-रउ छंद—इसमें भी वही कथा है तथा इसका रचनाकाल भी करीब-करीब वही है। विस्तारमें यह सूजोके छंदसे वड़ा है।

(४) राठोड़ पृथ्वीराज कृत कृष्ण-रुकमणीरी वेल—इसका रचनाकाल संवत १६३७ है। ये पृथ्वीराज वीकानेर-नरेश महाराज रायसिंहजीके अनुज तथा अकबरके दरवारी थे। यह ग्रंथ डिंगलका सर्वश्रेष्ठ काव्यग्रंथ समझा जाता है।

(५) आढा चारण दुरसो कृत विड़द-छिहत्तरी—यह कवि महाराणा प्रताप तथा अकबरका समकालीन था। इस रचनामें महाराणा प्रतापके स्वातंत्र्यप्रेमकी प्रशंसाके ७६ दूहे हैं।

(६) वरसलपुरगढ-विजय या सुजाणसिंहरासो—इसमें वीकानेर-नरेश सुजाणसिंहकी वरसलपुर-विजयका वर्णन है। इसका समय संवत १७६६ के लगभग है।

(७) वारठ नरहरिदास कृत अवतार चरित्र-इसमें भगवान्के अवतारोंका चरित्र लिखा गया है।

(८) कविया चारण करणीदान कृत सूरजप्रकाश—इसमें जोधपुर-नरेश अभयसिंहकी विजयोंका वर्णन है। इसका रचना काल संवत १७८७ के लगभग है।

(१०) उक्त चारण कृत विड़द-सिणगार—इसका विषय तथा रचनाकाल ऊपर लिखे अनुसार ही है।

(११) गाडण चारण गोपीनाथ कृत ग्रंथराज या गजसिंह-रूपक—इसमें वीकानेर-नरेश गजसिंहजीका चरित्र वर्णित है। इसका समय संवत १८०० के आसपास है।

जैन रचनाओंके लेखक जैन साधु अथवा जैन गृहस्थ हैं। यह साहित्य तुरंत ही लिपिबद्ध हो जानेके कारण बहुत-कुछ अपने असली रूपमें सुरक्षित है। भाषाविज्ञानके लिये इसका बड़ा भारी महत्त्व है। प्राचीन राजस्थानी, प्राचीन गुजराती तथा प्राचीन हिंदी आदि भाषाओंके क्रमिक विकासके अध्ययनके लिये इसका अध्ययन नितान्त आवश्यक है। प्राचीन-ता-प्रेमके कारण इस साहित्यकी भाषापर प्राकृत और अपभ्रंशका प्रभाव पाया जाता है फिर भी बोलचालकी भाषाके वह अधिक सन्निकट है। यह साहित्य प्रधानतया धार्मिक या कथात्मक है।

जैनेतर लेखकोंकी कृतियोंको हम तीसरे विभागमें रखेंगे। अत्यन्त प्राचीनकालकी ऐसी कृतियाँ बहुत कम उपलब्ध होती हैं। इनमेंसे कुछ आगे चलकर बहुत लोकप्रिय हुईं और लौकिक साहित्यकी भाँति जनताकी वस्तु बन गईं। इस कारण उनमें समय-समयपर बहुत परिवर्त्तन और परिवर्धन होते रहे और उनको अपने असली रूपमें प्राप्त करना कठिन है। इस विभागमें धर्म, नीति, तथा कथात्मक रचनाओंकी प्रधानता है। खड़ीबोली-मिश्रित राजस्थानी अथवा व्रज-मिश्रित राजस्थानीकी रचनाएँ भी इस विभागके अन्तर्गत आवेंगी।

राजस्थानीका सन्त-साहित्य भी बहुत बड़ा है। इस साहित्यकी भाषा विशुद्ध राजस्थानी नहीं किन्तु उसमें व्रज, खड़ीबोली, गुजराती, पंजाबी आदि भाषाओंका मेल पाया जाता है। सूरदास, तुलसीदास, नानक आदि अनेक संतोंके भजन भी राजस्थानी रूप धारण करके राजस्थानी जीवन और राजस्थानी साहित्यके अंग बन गये हैं।

राजस्थानीका गद्य-साहित्य बहुत विस्तृत और महत्वपूर्ण है। हिंदीमें प्राचीन गद्य-साहित्यका प्रायः अभाव है पर राजस्थानीमें गद्य-लेखनकी परंपरा अपभ्रंशकालसे वर्तमान शताब्दीके प्रारंभ तक अनवच्छिन्न रूपसे जारी रही है। प्राचीन कालके अधिकांश गद्य-लेखक जैन लोग ही हैं। सत्रहवीं शताब्दीके प्रथमार्धसे राजस्थानके विभिन्न राज्योंकी ख्यातें (इतिहास) बराबर लिखी जाने लगीं। ऐतिहासिक, अर्धैतिहासिक और काल्पनिक

अचळदासरी वचनिका—इसमें गागरोनगढ़के चोहाण राजा अचळदास और मांडवगढ़के सुलतानके युद्धका वर्णन है जिसमें अचळदास वीरगति को प्राप्त हुआ। इसका कर्ता सिवदास नामक चारण था जो उक्त राजाका समकालीन था। यह रचना संवत् १४७० के आसपासकी है।

(२) राव रतन महेसदासोतरी वचनिका—औरंगजेब और महाराज जसवंतसिंहके बीच उज्जैनमें जो युद्ध हुआ उसमें रतनसिंहने वीरगति प्राप्त की। उसका वर्णन इस ग्रंथमें है। इसका लेखक खिड़िया चारण जगो था जिसने स्वयं उक्त युद्धमें भाग लिया था। इसका रचनाकाल अठारहवीं शताब्दीका द्वितीय दशक है।

इनमें पहली प्राचीनताकी दृष्टिसे और दूसरी प्रौढ़शैलीकी दृष्टिसे महत्वपूर्ण है।

(६) साधारण बोलचालकी राजस्थानीका साहित्य

साधारण राजस्थानी साहित्यके तीन विभाग किये जा सकते हैं—(१) लौकिक रचनाएँ (२) जैन रचनाएँ, और (३) जैनेतर रचनाएँ।

लौकिक साहित्यके निर्माता ढाढी, ढोली, भाट आदि जातियाँ हैं जिनका व्यवसाय गा-बजाकर अथवा कथा-कहानी सुनाकर जनताको रिझानेका होता है। ऐसे साहित्यकी रचना प्रधानतया मौखिक रूपमें ही होती है और वह बहुत काल तक मौखिक रूपमें ही रहता है। समयके साथ-साथ उसकी भाषा तथा ढांचा आदि बदलते रहते हैं। नये-नये गायक (या पाठक) अपनी-अपनी रुचिके अनुसार अथवा परिस्थितिको देखकर परिवर्तन एवं परिवर्धन करते रहते हैं। आगे चलकर कोई उत्साही व्यक्ति उसे लेखबद्ध कर देता है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह साहित्य हमें अपने आरंभिक असली रूप में प्राप्त नहीं हो सकता। राजस्थानीमें ऐसा साहित्य प्रचुर परिमाणमें है, केवल संग्रह करके लिपिबद्ध करनेकी आवश्यकता है (समय-समयपर कुछ-कुछ लिपिबद्ध किया भी गया है)।

हैं। हिंदीमें लल्लूलाल और इंशाअल्लाहखांने इस प्राचीन परिपाटीका अनुसरण कहीं-कहीं किया है।

जैन रचनाओंके लेखक जैन साधु अथवा जैन गृहस्थ हैं। यह साहित्य तुरंत ही लिपिबद्ध हो जानेके कारण बहुत-कुछ अपने असली रूपमें सुरक्षित है। भाषाविज्ञानके लिये इसका बड़ा भारी महत्त्व है। प्राचीन राजस्थानी, प्राचीन गुजराती तथा प्राचीन हिंदी आदि भाषाओंके क्रमिक विकासके अध्ययनके लिये इसका अध्ययन नितान्त आवश्यक है। प्राचीनता-प्रेमके कारण इस साहित्यकी भाषापर प्राकृत और अपभ्रंशका प्रभाव पाया जाता है फिर भी बोलचालकी भाषाके वह अधिक सन्निकट है। यह साहित्य प्रधानतया धार्मिक या कथात्मक है।

जैनेतर लेखकोंकी कृतियोंको हम तीसरे विभागमें रखेंगे। अत्यन्त प्राचीनकालकी ऐसी कृतियाँ बहुत कम उपलब्ध होती हैं। इनमेंसे कुछ आगे चलकर बहुत लोकप्रिय हुईं और लौकिक साहित्यकी भाँति जनताकी वस्तु बन गईं। इस कारण उनमें समय-समयपर बहुत परिवर्त्तन और परिवर्धन होते रहे और उनको अपने असली रूपमें प्राप्त करना कठिन है। इस विभागमें धर्म, नीति, तथा कथात्मक रचनाओंकी प्रधानता है। खड़ीबोली-मिश्रित राजस्थानी अथवा व्रज-मिश्रित राजस्थानीकी रचनाएँ भी इस विभागके अन्तर्गत आवेंगी।

राजस्थानीका सन्त-साहित्य भी बहुत बड़ा है। इस साहित्यकी भाषा विशुद्ध राजस्थानी नहीं किन्तु उसमें व्रज, खड़ीबोली, गुजराती, पंजाबी आदि भाषाओंका मेल पाया जाता है। सूरदास, तुलसीदास, नानक आदि अनेक संतोंके भजन भी राजस्थानी रूप धारण करके राजस्थानी जीवन और राजस्थानी साहित्यके अंग बन गये हैं।

राजस्थानीका गद्य-साहित्य बहुत विस्तृत और महत्वपूर्ण है। हिंदीमें प्राचीन गद्य-साहित्यका प्रायः अभाव है पर राजस्थानीमें गद्य-लेखनकी परंपरा अपभ्रंशकालसे वर्तमान शताब्दीके प्रारंभ तक अनवच्छिन्न रूपसे जारी रही है। प्राचीन कालके अधिकांश गद्य-लेखक जैन लोग ही हैं। सत्रहवीं शताब्दीके प्रथमार्धसे राजस्थानके विभिन्न राज्योंकी ख्यातें (इतिहास) बराबर लिखी जाने लगीं। ऐतिहासिक, अर्धैतिहासिक और काल्पनिक

कथा-साहित्यका तो प्रवाह-सा बह चला[१]। अभाग्यवश राजकीय परिवर्त्तनों के कारण तथा अन्यान्य कारणोंसे बहुत-कुछ प्राचीन गद्य-साहित्य नष्ट हो गया या बिखर गया। बहुत-सी राजकीय ख्यातें लेखकों या उस विभागके अधिकारियोंकी निजी संपत्ति बनकर विस्मृतिके गर्त्तमें जा पड़ीं। राजस्थानीका अधिकांश गद्य-साहित्य ख्यातों या वातोंके रूपमें है। इसके बाद धार्मिक गद्यका नम्बर आता है। संस्कृत और प्राकृतके धार्मिक तथा लौकिक कथाग्रंथोंके अनुवाद भी राजस्थानीमें हुअे और उन्होंने अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त की। राजस्थानमें गद्य-साहित्य-लेखनकी यह परंपरा बीसवीं शताब्दीके आरंभतक बराबर चलती रही। इस समयके आसपास खड़ीबोलीका उत्थान हुआ और राजस्थानकी शिक्षा-संस्थाओंमें राजस्थानीकी जगह उसको स्थान मिला। अब खड़ीबोली पढ़े-लिखे शिष्ट-समाज द्वारा समादृत हुई और राजस्थानी धीरे-धीरे गँवारू बोली समझी जाने लगी। फल यह हुआ कि राजस्थानीमें साहित्य-रचना बंद हो गई और राजस्थानी लेखक खड़ीबोलीमें लिखने लगे। बीसवी शताब्दीमें राजस्थानने खड़ीबोली-गद्यकी महान् सेवाअें कीं और इस विषयमें वह किसी प्रांतसे पीछे नहीं रहा। कविराज श्यामळदास, महामहोपाध्याय रायबहादुर गौरीशङ्कर हीराचंद ओझा, मुंशी देवीप्रसाद, पुरोहित हरिनारायण, विश्वेश्वरनाथ रेउ, हरिभाऊ उपाध्याय, डाक्टर निहालकरण सेठी आदि लेखकोंने तथा सौरभ, त्यागभूमि आदि पत्रिकाओंने जो सेवाअें की हैं वे हिन्दीमें अपने ढंगकी अद्वितीय हैं।

राजस्थानी साहित्यके कुछ साहित्यकारों और रचनाओंका यहाँ पर संक्षेपमें उल्लेख किया जाता है[२]—

---

१ वात राजस्थानीमें कहानीको कहते हैं। राजस्थानी वातोंके संग्रह राजस्थानके ग्रंथभंडारोंमें यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं। इन सबका संग्रह किया जाय तो न जाने कितने कथासरित्सागर यह सहस्ररजनीचरित्र तय्यार हो जायँ।

२ यह निबंध अैसे स्थानमें लिखा जा रहा है जहाँ इस विषयकी सामग्री तथा सहायक साहित्य (Reference-ग्रंथ आदि) प्राप्य नहीं। इस कारणसे अनेक महत्त्वपूर्ण लेखकों और कृतियोंके नाम छूट गये हैं। इस दृष्टिसे यह

(क) लौकिक रचनाअें—

(१) ढोला-मारूरा दूहा—यह राजस्थानका अेक अत्यन्त लोक-प्रिय काव्य था। इसमें नरवरके कछवाहा राजकुमार ढोला और पूगळके पँवार राजा पिंगळकी राजकुमारी मारवणी या मारूकी प्रेम-कथा है। आरंभमें किसी ढाढी-ढोलीने इसकी रचना की होगी और बादमें यह लोक-प्रचलित काव्य बन गया। समय-समयपर परिवर्तन और परिवर्धन भी इसमें होते रहे। जैन-कवि कुशळलाभ (संवत् १६१५ के लगभग) के समय-में इस काव्यके बहुत-से दूहे लुप्तप्राय हो गये और कथासूत्र छिन्न-भिन्न हो गया। उक्त कविने कथासूत्रको मिलानेके लिअे बीच-बीचमें चौपाइयाँ बनाकर जोड़ दीं। कुशळलाभके इस रूपमें भी समय-समयपर परिवर्तन होता गया। सौभाग्यवश प्राचीन दूहोंवाला रूप सर्वथा विनष्ट नहीं हुआ और उसकी कुछ लिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं। यह काव्य इतना लोक-प्रिय था कि इसके अनेक दूहे अब भी लोगोंकी जबान मिलते हैं। इसे राजस्थानका जातीय काव्य National Poetry कहा जा सकता है। मानव-हृदय के कोमल भावोंका इसमें बड़ा सुन्दर चित्रण हुआ है।

(२) डूँगजी-जवारजीरो गीत—डूँगजी और जवारजी शेखा-वाटी (राजस्थान) के सुप्रसिद्ध डाकू थे। इनका यह गीत राजस्थानमें लोकप्रिय है और अब भी अनेक थोरी जातिके गायक स्थान-स्थानपर इसे सुनाकर लोगोंका मनोरंजन करते हैं। यह वीर-रसका अेक फड़कता हुआ गीत है।

(३) हेड़ाऊ-महरीरो गीत—होलीके अवसरपर हेड़ाऊ और महरीका सांग निकलता है। इस गीतका संबंध इसी सांगसे है।

इसी प्रकार तेजोजी, रामदेवजी आदि अनेक वीरोंके गीत प्रचलित हैं।

विवेचन अधूरा समझा जा सकता है। इस प्रयासका उद्देश्य संपूर्णता नहीं किंतु केवल कुछ उदाहरण उपस्थित करना ही है।

कवीर आदि सन्त महात्माओंने अपनी साखियाँ इसी छंदमें कहीं। रहीम और वृंद जैसे नीति-कवियोंने भी इसीको पसंद किया और विहारी, मतिराम, रसनिधि आदिने अपनी अपूर्व रसधारा भी इसीमें प्रवाहित की। इन लोगोंको जो सफलता तथा लोकप्रियता प्राप्त हुई उसके विषयमें कुछ कहना अनावश्यक है। राजस्थानीका अधिकांश लौकिक साहित्य इसी छंदमें निर्मित हुआ है। प्राचीन कालसे सैकड़ों दूहे लोगोंकी जवानपर चलते आये हैं जिनका वात-वातमें कहावतोंकी भाँति प्रयोग किया जाता है। राजस्थानी जनताकी सर्वप्रिय माँड रागका माधुर्य और आकर्षण भी उसके दूहोंपर ही निर्भर है। प्राचीन लौकिक-वीरों (Popular Folk-Heroes) की कीर्ति. इन्हीं छोटे-छोटे दूहोंकी बदौलत नाम-शेष हो जानेसे बच गई है। आज भी प्राचीन ढंगके राजस्थानी-कहानी कहनेवाले लोग कहानियोंके बीच-बीचमें भावपूर्ण स्थलोंपर दूहोंका प्रयोग करके श्राता लोगोंको मुग्ध करते हैं।

दूहा छंद और दूहा-साहित्य राजस्थानको अपभ्रंशसे बपौतीके रूपमें प्राप्त हुअे हैं। उत्तर-अपभ्रंशकालमें दूहा साधारण जनता अेवं विद्वत्समाज दोनों द्वारा समादृत छंद था। राजस्थानीमें भी उसकी लोकप्रियता और उसका समादर ज्यों-के-त्यों कायम रहे। अपभ्रंशकालके बहुत-से दूहे जो लोगोंमें सर्वप्रिय थे बराबर आगे तक चलते गये। हाँ, समयके साथ-साथ उनकी भाषाका रूप भी वदलता रहा। अैसे कुछ दूहे आज भी लोगोंकी जवानपर मिलेंगे। वहुत-से विस्मृति-सागरमें लीन हो गये और कुछ थोड़े-से उत्साही व्यक्तियों द्वारा समय-समयपर लिपि-वद्ध कर लिये जानेसे सुरक्षित भी रह गये हैं। अैसे कुछ दूहे उदाहरण-स्वरूप नीचे दिये जाते हैं—

(१) हेमचन्द्रने अपने व्याकरणमें नीचे लिखा दूहा उद्धृत किया है—

वायसु उड्डावंतिअे पिउ दिट्ठउ सहसत्ति।
अद्धा वलया महिहि गय, अद्धा फुट्ट तडत्ति ॥८।४।३५२॥

यह दूहा इस समय इस रूपमें प्रचलित है—

काग उडावण धण खड़ी, आयो पीव भड़क्क ।
आधी चूड़ी काग-गळ, आधी गई तड़क्क ॥

(२) हेमचन्द्र द्वारा उद्धृत अेक दूसरा दूहा इस प्रकार है—

पुत्ते जाअें कवणु गुणु, अवगुणु कवणु मुअेण ।
जा बप्पीकी भुंहडी चंपिज्जइ अवरेण ॥ ८।४।३९५ ॥

इसका प्रचलित रूप यह है—

बेटां जायां कवण गुण, अवगुण कवणु धियेण ।
जां ऊभां घर आपणी, गंजीजै अवरेण ॥

(३) हेमचंद्र द्वारा उद्धृत अेक और दूहा है—

जइ भग्गा पारक्कडा तो सहि मुज्झु पिअेण ।
अह भग्गा अम्हहँतंणा तो तें मारिअडेण ॥८।४।३७८ ॥

यह आजकल इस रूपमें प्रचलित है—

जो भग्गा पारक्कड़ा, तो सखि मुज्झ पियेण ।
जो भग्गा अम्हे-तणा, तो तिह मुज्झ पड़ेण ॥

(४) प्रबंध-चिंतामणिमें अपभ्रंशका यह दूहा आया है—

जइ यहु रावणु जाइयउ, दह-मुहु इक्कु सरीरु ।
जणणि वियंभी चिंतवइ, कवणु पियावउँ खीरु ॥

इसका आधुनिक राजस्थानीमें यह रूप हो गया है—

राजा रावण जलमियो दस मुख अेक सरीर ।
जननीने सांसो भयो किण मुख घालूं खीर ॥

(५) प्रबंध-चिंतामणिमें उद्धृत अेक दूसरा दूहा इस प्रकार है—

नव जल भरिया मग्गडा गयण धडक्कइ मेहु ।
इत्थंतरि जइ आविसिइ तइ जाणीसिइ नेहु ॥

इसका आधुनिक रूप यह हो गया है—

आज धरा दिस ऊनम्यो, मोटी छांटां मेह ।
भीजी पाग पधारस्यो, जद जाणूंली नेह ॥

(८) दूहा छंद

दूहा उत्तरकालीन अपभ्रंशका प्रमुख छंद था। उसका प्रयोग समस्त देशके तत्कालीन साहित्यमें पाया जाता है। इस छंदका संबंध आरंभमें लोक-कविता (Folk-Poetry) से था असा जान पड़ता है क्योंकि पुराने अपभ्रंश-साहित्यमें उसका प्रयोग नहीं मिलता। जनतामें प्रचार पानेके बाद इसने साहित्यमें भी प्रवेश किया। विक्रमकी नवीं शताब्दीके पूर्वभागमें चौरासी सिद्धोंके आदिसिद्ध सरहपा हुअे। उन्होंने तत्कालीन बोलचालकी भाषामें कविता लिखी है।* जहाँ तक पता चला है लिखित साहित्यमें इस छंदका प्रयोग करनेवाले सबसे प्रथम यही महोदय हुअे। धीरे-धीरे यह छंद बहुत ही लोक-प्रिय हुआ। साहित्यमें भी इसका अधिकाधिक प्रयोग होने लगा। राजस्थानी, गुजराती और हिंदीने इसे अपभ्रंशसे वपौतीके रूपमें प्राप्त किया और यह इन तीनों भाषाओंका सबसे महत्त्वपूर्ण छंद सिद्ध हुआ। इन भाषाओंके साहित्यमें जितना प्रयोग इस छंद का हुआ है उतना शायद ही किसी दूसरेका हुआ हो।

ऊपर कहा जा चुका है कि दूहा छंदका सर्वप्रथम प्रयोग वज्रयानी सिद्ध सुरहपाकी रचनाओंमें मिलता है। उनके पश्चात् कण्हपा आदि अन्यान्य सिद्धोंने भी इसका प्रयोग किया। दसवीं शताब्दीके अंतमें देवसेन सूरिने सावय-धम्म-दोहा नामक ग्रंथ दूहोंमें लिखा। ग्यारहवीं शताब्दीके अंतिम भागमें महेश्वरसूरिने संयम-मंजरी नामक छोटी-सी पुस्तक इसी छंदमें लिखी।

बारहवीं शताब्दीके अन्तिम भागमें हेमचन्द्रने अपना सुप्रसिद्ध सिद्ध-हैम-शब्दानुशासन नामक संस्कृत तथा प्राकृतका व्याकरण लिखा। उसके अन्तिम अध्यायके अन्तमें अपभ्रंशका व्याकरण दिया गया है। वहाँपर

*गंगा मासिक पत्र (सुलतानगंज, भागलपुर), भाग ३, अङ्क १ (पुरातत्त्वांक), में राहुल सांकृत्यायनका मंत्रयान, वज्रयान और चौरासी सिद्ध, तथा हिन्दीके प्राचीनतम कवि और उनकी कविताअें नामक निबन्ध।

नियमोंका स्पष्टीकरण करनेके लिअे लेखकने अपभ्रंशके दूहोंको उदाहरणके रूपमें उद्धृत किया है। ये दूहे उसकी अपनी रचना नहीं। उस समयके प्रचलित दूहोंको लेकर उसने संग्रह मात्र कर दिया है।

उत्तरकालीन लेखकोंने दूहा या दोहा शब्दकी उत्पत्ति संस्कृत दोधकसे मानी है। हेमचन्द्र द्वारा उद्धृत दूहोंकी अेक संस्कृत टीका दोधकवृत्ति या दोग्धकवृत्ति नामसे मिलती है जिससे भी यही सूचित होता है। पर यह बादकी कल्पना है। प्राकृत-पैंगल नामक ग्रन्थके टीकाकारोंने दोहाका मूल द्विपदा शब्दको बताया है। संस्कृत शब्द द्विधाका प्राकृत रूप दूहा या दोहा होता है और दूहा छन्द भी द्विधा-दो प्रकारसे यानी दो पंक्तियोंमें लिखा जाता है। हमारी समझमें यह द्विधा शब्द ही दूहा या दोहाका मूल है।

(९) दूहा छंद के भेद

हिन्दीमें दूहा छन्द अेक ही प्रकारका है पर राजस्थानीमें (और गुजरातीमें भी) उसके चार भेद हैं। सोरठेको दूहेका ही अेक भेद माना गया है। राजस्थानी पिंगलमें दूहेके इन चार भेदोंके नाम और लक्षण इस प्रकार हैं—

१ दूहो—यह हिंदीका दोहा है। राजस्थानीमें भी इसका अलग नाम नहीं है। इसके पहले और तीसरे चरणोंमें तेरह-तेरह, तथा दूसरे और चौथे चरणोंमें ग्यारह-ग्यारह मात्राअें होती हैं।

२ सोरठियो दूहो या सोरठा—इसे हिंदीमें सोरठा कहते हैं। यह दूहे का उलटा है, यानी इसके पहले और तीसरे चरणोंमें ग्यारह-ग्यारह तथा दूसरे और चौथे चरणोंमें तेरह-तेरह मात्राअें होती हैं।

इस भेदका आरंभ सौराष्ट्र या सोरठ देशमें हुआ तथा वहांके कवि ही पहले उसका विशेष प्रयोग करते थे इसीलिअे इसका यह नाम पड़ा। करुण, वीर और शृंगार रसोंके वर्णनके लिअे यह बड़ा ही उपयुक्त छंद है। भावा-वेश-पूर्ण स्थानोंमें राजस्थानीमें इसीका प्रायः प्रयोग होता है। यह भेद दूहेके सब भेदोंमें श्रेष्ठ समझा जाता है। कहा भी है कि सोरठियो दूहो भलो*।

* देखो समान्य नीतिमें दूहा १७१, पृष्ठ ४८।

राजस्थानीका नीति-संबंधी दूहा-साहित्य भी अधिकतर इसीमें लिखा गया है। राजिया, किशनिया, वींजरा, नाथिया, मोतिया, नागजी, जेठवा आदिके सोरठिये दूहे राजस्थानमें बहुत प्रसिद्ध हैं।

३ वडो दूहो (वड़ा दूहा)*—इसके पहले और चौथे चरणोंमें ग्यारह-ग्यारह, तथा दूसरे और तीसरे चरणोंमें तेरह-तेरह मात्राअें होती हैं। युद्ध-वर्णन और वीर-रसमें इसका मुख्यतया प्रयोग होता है।

४ तूँबेरी दूहो†—इसके पहले और चौथे चरणोंमें तेरह-तेरह, तथा दूसरे और तीसरे चरणोंमें ग्यारह-ग्यारह मात्राअें होती हैं। यह वड़े दूहेका उलटा है।

ध्यान रखना चाहिअे कि तुक सदा ग्यारह-ग्यारह मात्राओंवाले चरणों की मिलती हैं अर्थात् दूहेमें दूसरे और चौथे चरणोंकी, सोरठिये दूहेमें पहले और तीसरेकी, वड़े दूहेमें पहले और चौथेकी, तथा तूँबेरी दूहेमें दूसरे और तीसरेकी तुक मिलेगी।

(१०) दूहा-साहित्यके विभाग

राजस्थानी भाषाके दूहा-साहित्यके चार मोटे विभाग किये जा सकते हैं—

(१) लौकिक दूहा-साहित्य—अैसे दूहे प्राचीन कालसे चले आये हैं अथवा समय-समय पर जनता द्वारा निर्मित होते रहे हैं। इसमेंसे कुछ लिपि-बद्ध हो गये, कुछ नष्ट हो गये और कुछ अब भी जनताकी जबान पर हैं। कबीर, तुलसी आदि संतोंकी साखियाँ भी राजस्थानी रूप धारण करके जनतामें प्रचलित हो गई हैं। उन्हें भी हम इस विभागके अन्तर्गत कर सकते हैं।

---

* इसके दोनों छोरवाले (यानी पहले और चौथे) चरणोंकी तुक मिलनेसे इसे अंतमेळ दूहा भी कहते हैं।

† इसके दोनों मध्यवाले (यानी दूसरे और तीसरे) चरणोंकी तुक मिलनेसे इसे मध्यमेळ दूहा भी कहते हैं।

इन फुटकर दूहोंका उपयोग समय-समय पर कहावतोंकी भांति किया जाता है। इसके अतिरिक्त कहानी कहनेवाले प्रभाव-वर्धनके लिअे बीच-बीचमें उपयुक्त दूहोंका प्रयोग करते हैं।* यह रीति बहुत प्राचीन है। इसी प्रकार लिपि-बद्ध कहानियोंके बीच-बीचमें भी ये दूहे पाये जाते हैं।

लौकिक दूहा-साहित्यमें केवल फुटकर दूहे ही नहीं हैं किन्तु बड़ी-बड़ी कहानियाँ तथा कथा-काव्य भी हैं। ढाढी, ढोली, भाट आदि अब भी गा-गाकर इन्हें सुनाया करते हैं। इन कहानियोंके फुटकर दूहे जनतामें प्रचलित पाये जाते हैं—किन्हीं-किन्हीं लोगोंको सारी-की-सारी कहानी भी याद रहती है। अैसे कथा-काव्योंमें कुछ थोड़े-से लिपि-बद्ध भी हो गये हैं। भिन्न-भिन्न स्थानोंमें भिन्न-भिन्न परिवर्त्तन तथा परिवर्धन होते रहनेसे इनके अनेक पाठभेद और रूपांतर हो गये हैं। अैसे कथा-काव्योंमें ढोला-मारूरा दूहा प्रमुख है।†

बड़े दुःखकी बात है कि हमारा यह लौकिक साहित्य धीरे-धीरे नष्ट होता जा रहा है। पश्चिमी शिक्षाके प्रभावसे हम अपनी इन चीजोंको नीची

---

*उदाहरणार्थ जहाँ किसी सुन्दरीका उल्लेख आया वहाँ उसकी सुन्दरताके वर्णनमें यह दूहा जोड़ दिया—

कद थां नाग विसासिया, नैण दिया मृग झल्ल।
मान-सरोवर कद गया, हंसां सीखण हल्ल॥

जहाँ प्रेम या मित्रता वर्णन आया वहाँ यह दूहा कह दिया—

मो मन लागो तो मनां, तो मन मो मन लग्ग।
दूध विलग्गा पाणियां, पाणी दूध विलग्ग॥

दूरस्थित प्रेमियोंका वर्णन आया तो यह दूहा लाया गया—

जळमें वसै कमोदणी, चंदो वसै अकास।
जो ज्यांहीके मन वसै, सो त्यांहीके पास॥

†इसका अेक सुसंपादित संस्करण हिंदी अनुवाद, पाठांतर, टिप्पणी, शब्दकोष, विस्तृत अैतिहासिक आलोचनात्मक तथा भाषावैज्ञानिक प्रस्तावना, अेवं कई परिशिष्टोंके साथ नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुआ है।

दृष्टिसे देखने लगे हैं। ढाढी-ढोली आदि जो जातियाँ इनका रक्षण करती आई हैं उनका अब आदर नहीं होता, उन्हें सुननेवाले नहीं मिलते, उन्हें कोई नहीं पूछता। इस प्रकार हमारा यह बहुमूल्य खजाना, जिसमें हमारी जाति और हमारे पूर्वजोंका जीवन भरा है, धीरे-धीरे विस्मृतिके तमोतम गर्त्तमें विलीन होता जा रहा है। राजस्थानी जाति यदि अपने व्यक्तित्वके स्वतंत्र अस्तित्वको लोप नहीं होने देना चाहती तो उसे तुरन्त ही इस उपेक्षित कोषकी रक्षाके लिअे कमर कसकर तय्यार हो जाना चाहिअे।

(२) बोलचालकी राजस्थानीमें लिखित दूहा-साहित्य—अैसा दूहा-साहित्य मुख्यतया तीन प्रकारका है—१ सन्त-साहित्य—कबीर,* दादूदयाल, हरिदास दयालजी, रामचरणदास आदि सन्तोंकी साखियाँ इस विभागके अन्तर्गत आती हैं। व्रजभाषाके महत्त्व प्राप्त करनेके बाद जो सन्त-कवि हुअे उनकी भाषापर व्रजका भी काफी प्रभाव पाया जाता है। २ नीति-साहित्य—इसके अन्तर्गत राजिया, किशनिया, नाथिया, नोपला, ईलिया, दानिया, भैरिया, मोतिया, उदैराज आदिके नीतिके दूहे आते हैं। जेठवा, नागजी, वींजरा† आदिके प्रेम तथा करुण रसात्मक दूहोंको भी इनमें परिगणित कर लेते हैं। ३ कथा-काव्य—विभिन्न कवियोंने समय-समयपर दूहोंमें कथा-कहानियाँ लिखी हैं उनका समावेश इस विभागमें होगा। अैसी कहानियोंमें माधवानळ-कामकंदळाकी कहानी अधिक प्रसिद्ध है। यह दूहा-साहित्य, विशेषतया सन्त-साहित्य और नीति-साहित्य, राजस्थानमें खूब लोक-प्रिय है।

---

*कबीरकी रचनाओंकी भाषा प्रधानतया राजस्थानी थी इसका विवेचन अेक स्वतंत्र निबन्धमें किया जा रहा है।

†राजिया, किसनिया, जेठवा, वींजरा आदिके दूहे इन लोगोंके बनाये हुअे नहीं किन्तु इनको सम्बोधन करके अन्य लोगों द्वारा रचे गये हैं। उदाहरणार्थ राजियाके दूहे चारण कृपाराम द्वारा अपने चाकर राजियाको सम्बोधन करके कहे गये थे। इसी प्रकार जेठवाके दूहे उजळी नामकी चारणीके बनाये हुअे हैं जो इस जेठवा राजा मेहापर आसक्त हो गई थी।

(३) जैन दूहा-साहित्य—जैन लेखकोंने जैनधर्म सम्बन्धी बहुत-सी रचनाअें दूहोंमें की हैं। इनमें कथा-काव्योंकी अधिकता है।

(४) डिंगळ दूहा-साहित्य—यह साहित्य प्रधानतया नीति-विषयक और वीर-रसात्मक है। अैतिहासिक वीरों तथा अन्यान्य व्यक्तियोंके सम्बन्धके दूहोंका बहुत बड़ा संग्रह राजस्थानीमें वर्त्तमान है।

राजस्थानी लेखकोंने व्रजभाषामें भी दूहा-साहित्यकी रचनाकी है पर वह हमारे विवेचनके बाहरका विषय है क्योंकि प्रस्तुत संग्रहमें व्रजभाषाके दूहोंको स्थान नहीं दिया गया है।

(११) राजस्थानीका आधुनिक साहित्य

खड़ीबोलीकी प्रधानताने राजस्थानी-साहित्य-निर्माणको बंद-सा कर दिया इसी कारण उसका आधुनिक साहित्य बहुत ही पोच है। राष्ट्रभाषाकी सेवामें राजस्थान सबसे आगे रहा यह हमारे लिअे बड़े हर्ष और गौरवकी बात है परन्तु मातृभाषाकी उपेक्षारूप घोर कलंकका टीका भी हमारे माथेपर लगा हुआ है इस ओर भी हमारा ध्यान जाना चाहिअे। हर्षकी बात है कि इस उपेक्षाके होते हुअे भी अनेक उत्साही मातृभाषा-भक्तोंने मातृभाषाकी सेवासे मुँह नहीं मोड़ा और समय-समयपर इस दिशामें कार्य करते रहे। अैसे सज्जनोंमें श्री शिवचंद्र भरतिया, गुलाबचंद नागोरी, कचरदास कलंत्री, करोड़ीमल मालू आदिके नाम गिनाये जा सकते हैं। जो जाति अपनी भाषा से विमुख रहती है वह अपना अस्तित्व, अपना जातीय जीवन, सबकुछ खो बैठती है। वह अपने पैरोंपर आप ही कुल्हाड़ी मारती है। इसीलिअे संसार की प्रत्येक स्वतंत्र जाति अपनी मातृभाषाके उत्थान और अभ्युदयकी ओर सर्वप्रथम ध्यान देती है। जापान, आयर्लैण्ड, पोलेंड, जेकोस्लाविया, हंगरी आदि महान राष्ट्रोंके उदाहरण हमारे सामने उपस्थित हैं।

मातृभाषाके समुद्धारकी आवश्यकताका अनुभव राजस्थानके निवासी भी करने लगे हैं और कई स्थानोंपर कार्य आरंभ भी हो चुका है। अजमेर, जयपुर, बीकानेर आदिमें इसके लिअे संगठित प्रयत्न आरंभ करनेका उद्योग

हो रहा है जिनमें वीकानेरकी राजस्थानी-साहित्य-परिषद्का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। पिलाणीमें सुप्रसिद्ध दानवीर सेठ घनश्यामदास विड़लाने पिलाणी-राजस्थानी-ग्रंथमाळाकी स्थापना की है जो अबतक दो महत्त्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित कर चुकी है।

श्रीशिवचंद्रजी भरतिया आधुनिक राजस्थानी साहित्यके भारतेंदु हरिश्चन्द्र हैं। उन्होंने लोकोपयोगी अनेक ग्रंथ सरल भाषामें लिखकर राजस्थानीको लोकप्रिय बनानेका प्रयत्न किया और राजस्थानीके लेखकोंको मार्ग दिखाया। श्रीनागोरीजी राजस्थानीके वहुत पुराने उत्साही सेवक हैं और उनका सेवाकार्य अभीतक चल रहा है। कलंत्रीजीने राजस्थानीका अेक वहुत उत्तम हास्यरसप्रधान पत्र निकाला था जिसका नाम पंचराज था। राजस्थानीके और भी कई पत्र निकले पर राजस्थान-वासियोंके मातृभाषाके प्रति उपेक्षाभावने उनको पनपने नहीं दिया। धामणगांवके मारवाड़ी-प्रचारक-मंडळसे अनेक उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं और वहांसे इस भाषाका अेक छोटा-सा पत्र अभीतक निकलता है।

राजस्थानी भाषाके अन्यान्य वर्त्तमान साहित्यकारोंके दो-चार नाम उदाहरणार्थ नीचे दिये जाते हैं—

(१) श्रीयुत पंडित रामनिवास शर्मा हारीत, साहित्यरत्न(रतनगढ़)-आप अच्छे कवि और आलोचक हैं। राजस्थानीमें नवीन ढंगकी छाया-वादकी कविता करनेवाले प्रथम कवि भी आप ही हैं।

(२) श्रीयुत खीची जुगलसिंह, अेम० अे०, इत्यादि—आप राज-स्थानीके सुकवि हैं। आपके दूहे वहुत अच्छे वनते हैं। 'मारवाड़रो देशड़लो' नामक आपका गीत वहुत प्रसिद्ध हैं।

(३) श्रीयुत पं० सूर्यकरण पारीक, अेम० अे०—आपने वोळावण नामक वीर-रसका अेकांकी नाटक लिखा है। जगदेव पँवार नामक दूसरा नाटक भी आप लिख रहे हैं।

(४) श्रीयुत पं० मुरलीधर व्यास लालाणी (वीकानेर)—आप

राजस्थानीके उत्साही कार्यकर्ता हैं। बीकानेरकी राजस्थानी-साहित्य-परिषत् आपके ही उद्योगका फल है। आप गद्य और पद्य दोनों लिखते हैं।

(५) श्रीयुत डाक्टर छगनलाल मोहता—आप कवि और गद्यलेखक हैं। हास्य-रस अच्छा लिखते हैं।

(६) महाराज चतरसिंह (रूपाहेली, मेवाड़)—आप अच्छे कवि हैं। आपने फुटकर कविताओंके अतिरिक्त चतुर-विलास नामक काव्य भी लिखा है।

संग्रहकार तथा संपादक

राजस्थानी-साहित्यके संग्रहकारों तथा संपादकोंमेंसे दो-चार प्रमुख नामोंका उल्लेख नीचे किया जाता है—

(क) संग्राहक—

(१) श्रीयुत ठाकुर भूरसिंहजी शेखावत (मलसीसर-जयपुर)—आपने विविध-संग्रह और महाराणा-यशप्रकाश नामक दो संग्रह राजस्थानी साहित्यके बनाये जिनमेंसे पहला बहुत लोकप्रिय हुआ।

(२) श्रीयुत मुंसिफ देवीप्रसाद (जोधपुर)—आपने राजस्थानके लेखकोंकी कई सूचियाँ बनाई तथा राजस्थानी कविताके राजरसनामृत, महिलामृदुवाणी, कविरत्नमाला आदि कई संग्रह प्रस्तुत किये।

(३) श्रीयुत चतरसिंह बीका (बीकानेर)—आपने राजस्थानी सोरठोंका अेक बहुत बड़ा संग्रह तय्यार किया था।

(४) श्रीयुत मुरलीधर व्यास लालाणी (बीकानेर)—आपने राजस्थानी कहावतों, मुहावरों तथा स्त्री-गीतोंका वृहत् संग्रह किया है।

(५) श्रीयुत ठाकुर रामसिंहजी अेम. अे. (बीकानेर)—आप राजस्थानी वीर-गीतों और ग्रामगीतोंका विस्तृत संग्रह तय्यार कर रहे हैं।

(६) श्रीयुत जगदीशसिंहजी गहलोत, विद्याविनोद (जोधपुर)—आपने मारवाड़ी ग्रामगीतों तथा कहावतोंके संग्रह प्रकाशित करवाये हैं।

(७) सूर्यनारायण चौबे (जयपुर)—आप राजस्थानके ग्राम-गीतोंके संग्रहमें प्रयत्नशील हैं।

(ख) कोषकार—

(१) श्रीयुत मिस्रण मुरारीदानजी (बूँदी)—आप सुप्रसिद्ध वंशभास्करके रचयिता सूर्यमलजीके दत्तक पुत्र हैं। आपने डिंगळ-कोष नामक बड़ा कोष तय्यार किया।

(२) श्रीयुत रामकर्णजी आसोपा (जोधपुर)—आप आजकल डिंगळशब्दोंका अेक विस्तृत कोष तय्यार कर रहे हैं

(ग) संपादक तथा टीकाकार—

(१) महाराज श्रीजगमालसिंहजी (बीकानेर)—आपने महाराज पृथ्वीराजजीकी कृष्ण-रुक्मणीरी वेलि नामक सुप्रसिद्ध डिंगळ-काव्य की हिंदी टीका लिखी जिसका प्रकाशन हिंदुस्तानी-अेकेडेमीसे हुआ है।

(२) पुरोहित हरिनारायणजी बी० अे० (जयपुर)—आपने बांकीदास ग्रंथावली, व्रजनिधि-ग्रंथावली आदि कई महत्त्वपूर्ण ग्रंथोंका संपादन किया है।

(३) श्रीयुत रामकर्णजी आसोपा (जोधपुर)—आपने बांकीदास ग्रंथावली (प्रथम भाग) आदि ग्रंथ संपादित किये हैं।

(४) श्रीयुत जगदीशसिंहजी गहलोत (जोधपुर)—आपने ऊमर-काव्य, मारवाड़के गीत आदि कई अच्छे ग्रंथोंको संपादित किया है।

(५) श्रीयुत ठाकुर रामसिंहजी अेम० अे० (बीकानेर)—आपने श्रीयुत सूर्यकरणजी पारीकके सहयोगमें उक्त 'कृष्ण-रुकमणीरी वेलि' का संपादन किया है जिसकी यूरोपियन विद्वानोंने मुक्तकंठसे प्रशंसा की है। डा० ग्रियर्सननें तो उसके विषयमें यहां तक लिखा है कि भारतीय भाषाओंमें अभी तक किसी पुस्तकका अैसा अच्छा संपादन नहीं हुआ। ढोला-मारूरा दूहा, जटमल कृत गोरा-बादळरी बात, आदि कई अन्यान्य पुस्तकोंका संपादन भी आपने उक्त पारीकजी तथा इस निबंध-लेखकके सहयोगमें किया है।

(६) श्रीयुत सूर्यकरणजी पारीक अेम० अे० (पिलाणी-जयपुर)—आपने उल्लिखित ग्रंथोंके संपादनमें सहयोग देनेके अतिरिक्त राजस्थान

वार्ता नामक प्राचीन राजस्थानी गद्यमें लिखित वीर-कथाओंका संपादन किया है जो इस पिलाणी-राजस्थानी-सीरिजका प्रथम ग्रंथ है।

(७) श्रीयुत मुरलीधर व्यास (बीकानेर)—आपने इस निबंध-लेखकके सहयोगमें राजस्थानी कहावतां नामक वृहत् ग्रंथका संपादन किया है।

बीकानेरकी राजस्थानी-साहित्य-परिषत् निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण ग्रंथोंके लिअे सामग्री अेकत्र कर रही है—

(१) राजस्थानीका व्याकरण

(२) राजस्थानीकी विभिन्न बोलियोंका तुलनात्मक व्याकरण

(३) राजस्थानी भाषाका इतिहास

(४) राजस्थानी साहित्यकारोंकी डाइरेक्टरी

(५) राजस्थानी साहित्यका इतिहास

(६) राजस्थानी-काव्य-संग्रह (८ भागोंमें)

(७) वृहत् राजस्थानी-हिंदी कोष

राजस्थानी साहित्य और इतिहासके सम्बंधकी गवेषणाओंको प्रकाशित करनेके लिअे अेक त्रैमासिक खोज-पत्रिकाके प्रकाशनका आयोजन भी उक्त परिषत् कर रही है। आशा है कि यह आयोजना शीघ्र ही कार्यरूपमें परिणत होगी।[1]

नरोत्तमदास स्वामी

---

१ जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि इस निबंधका उद्देश्य केवल उदाहरण उपस्थित करनेका है अतः यह अनेक दृष्टियोंसे अधूरा है और अज्ञान अेवं भ्रमवश अनेक महत्त्वपूर्ण लेखकोंके नाम छूट गये हैं। हालमें ही कलकत्तेमें राजस्थान रिसर्च सोसाइटी नामकी संस्था स्थापित हुई है जो प्राचीन राजस्थानी साहित्यके संग्रह तथा प्रकाशनकी आयोजना कर रही है। इस संस्थाको ओरसे भी अेक त्रैमासिक पत्रिका निकलनेवाली है।

उत्तरार्ध

कर्नल टाड यह लिखते समय कि—There is not a petty state in Rajasthan that has not had its Thermopylae and scarcely a city that has not produced its Leonidas इतना और लिखना भूल गये थे कि थर्मापोली-से रणक्षेत्र तैयार करनेवाले वीर, सैनिक कवियोंसे भी राजस्थानका साधारण-से-साधारण गाँव भी खाली नहीं रहा है। यहांके वीर तथा भावुक-हृदय चारण, भाट, ढाढी, ढोली और ढोलणोंकी कवित्त्वाभाको कालिदास, भवभूति और भारवि तथा शेक्सपियर और मिल्टनके काव्यानन्दसे कम उद्भासित न पायेंगे। सब मानते हैं कि वीर राजस्थान भारतकी वीर-बाहु रहा है, अब मानना होगा कि राजस्थान भारतका सबल तथा भावुक हृदय भी रहा है। राजस्थानी नैसर्गिक वीरों की तरह जीवित रहे हैं और वीरोंकी तरह मिटे हैं। राजस्थानी साहित्यके विद्वान् श्रीयुत पं० सूर्यकरणजी पारीक अेम० अ० अपनी 'राजस्थानी वार्ता' की भूमिकामें लिखते हैं—

"सबसे पहली विशेषता जो राजपूतके चरित्रमें देखी जाती है वह है उसकी मन, कर्म और वचनसे दृढ़-प्रतिज्ञता। प्रतिज्ञा-पालनसे विमुख होना राजपूत अपनी कायरता समझता है, अतअेव प्राण देकर भी प्रतिज्ञा-पालन करता है।" छल-प्रपंचमय राजनीतिसे यह जाति सदैव घृणा करती रही है। जैसी नैसर्गिक-पवित्रता यहांकी वीरतामें रही है, वैसी ही प्राकृतिक पावनता यहांकी साहित्य-धारामें मिलेगी। इस जातिके वीर साहित्यमें तेजोमय वीर बनानेकी शक्ति है, शृंगार-साहित्यमें सुरम्य-प्रणय-धारा बहानेकी शक्ति है, करुण-साहित्यमें पत्थर पिघलानेकी शक्ति है और शान्त-साहित्यमें कैवल्यमय करनेकी शक्ति है। आचार्य चतुरसेन शास्त्रीने लिखा है—मारवाड़का अबसे सौ वर्ष पूर्वतकका साहित्य महाजातियोंके सजने योग्य साहित्य है।

शूकरीके बच्चे कुरूप होते हैं और हिरणी सुन्दर बच्चोंको जन्म देती है। पर यह सौंदर्य किस कामका जब उनका जीवन ही सदा संशयमें रहता है। अेक साधारण पत्तेकी आवाज होते ही बेचारे भयके मारे कांप उठते हैं और जीव लेकर ही भागते बनता है। उधर शूकरीके बच्चोंको देखिये, कैसी निर्भीकतासे शानके साथ चलते हैं।

अेक बालक था। बहुत भोलाभाला और सीधासादा। उसकी चाची तो उसे बिलकुल बोदा और निकम्मा ही समझती थी। पर युद्धका अवसर आया। उसकी चाचीने देखा कि आज उसका वही जेठूत (जेठका लड़का) सबसे बढ़-बढ़कर शत्रुके हाथियोंपर आक्रमण कर रहा है। जिनके सामने जाने तकका साहस दूसरोंको नहीं होता था उन्हें वह काट-काटकर फेंक रहा है—

दिन-दिन भोळो दीसतो, सदा गरीबी सूत।
काकी कुंजर काटतां जाणवियो जेठूत॥

वीरमाताके दूधका असर भला कहाँ जा सकता है?

जब हम अत्यन्त कष्टकी स्थितिमें होते हैं तो प्रायः माताकी याद आती है। हाय माँ, अरी मावड़ी—आदि शब्द हठात् मुँहसे निकल पड़ते हैं। वीर राजस्थानी माता अैसी स्थितिमें भी अैसे शब्दोंका मुँहसे निकलना सहन नहीं कर सकती क्योंकि ये शब्द हृदयकी दुर्बलता प्रकट करते हैं। राणकदेका अबोध पुत्र उसकी आँखोंके सामने मारा जाता है। असहाय बालक माँ-माँ चिल्लाता है पर माता कहती है—

माणेरा, मत रोय, मत कर रत्ती अंखियां।
कुळमें लागै खोय, मरतां मां न सँभारजे॥

अरे माणेरा, मत रो, आँखोंको लाल मत कर, मरते समय माँको कभी याद न करना क्योंकि इससे कुलको कलंक लगता है। मरना है तो हँसते-हँसते मरो, दुर्बलता दिखाकर मरणको कटु मत बनाओ।

अेक वीरबाला अपने असहाय और कर्त्तव्य-विमूढ़ देवरको कैसे ओजस्वी और प्रभावशाली शब्दोंमें कर्त्तव्य-मार्ग दिखाती है—

राहव, उठ्ठ कमाणगर, मूंछ मरोड़, म रोय।
मरदां मरणा हक्क है, रोणा हक्क न होय॥

देवर राहव, रोते क्या हो? उठो, मोछोंपर ताव दो। मर्दके लिअे मरना हक है, रोना नहीं। रोना तो निराधार अबलाओंका काम है।

इन माताओंके वीर-पुत्रोंका भी कुछ वर्णन सुन लीजिये। बारह बरसका बादळ अलाउद्दीनसे लोहा लेनेको चला। माता कहती है—अरे बादळ, तू यह क्या कर रहा है? तु तो अभी बालक है। बालक शब्द सुनते ही बादळ क्षुब्ध हो उठता है। इस शब्दको वह अपने लिअे अपमानजनक समझता है। कहता है—

माता, बाळक क्यों कहो?, रोइ न मांग्यो ग्रास।
जे खग मारूँ साह-सिर तो कहियो साबास॥

माता, मुझे बालक क्यों कहती है? क्या मैंने कभी रोकर तुमसे खानेको भी मांगा है? अवस्थामें छोटा होनेसे ही कोई छोटा नहीं हो जाता—

सिंघ सिचाणो सापुरुष, अै लहुरा न कहाइ।
वडो जिनावर मारिकै छिनमें लेयँ उठाइ॥

सिंह, बाज और वीरपुरुष ये कभी छोटे—बालक—नहीं होते। बड़े-से-बड़े जानवरको मार करके क्षण भरमें उसे उठा लेनेकी सामर्थ्य रखते हैं। मुझे तो तुम तभी कहना जब मैं बादशाहके सिरपर खड्ग मारूँ।

इन राजस्थानी वीर-बालकोंका प्रतिदिन पढ़नेका मंत्र होता था—
"बारह बरसां बापरो लहै वैर लंकाळ"।

वीरमाता और वीरपुत्रको हमने देखा अब वीरपत्नीको देखिये। वीर-माताकी कोखसे जनमी हुई वीर-बालिका उसी वीरता-मय आवरणमें पलती है। उसका वीरत्व, उसका त्याग, उसके भाई के वीरत्व और त्यागसे किसी कदर कम नहीं। विवाहके समय उसका दूल्हा आता है। विवाहमंडपमें भी वह स्वामीके वीरत्वमय रूपको ही देखती है।

ढोल सुणंतां मंगळी मूंछां भूंह चढंत।
चँवरीमें पीछाणियो कँवरी मरणो कंत॥

गीव-नमाड़े देखणो, करणो सत्रु सरांह ।
परणंती घण परखियो ओछी ऊमर नाह ॥
मैं परणंती परखियो वागां मांहि सनाह ।
लायो साथ लिखायकर ओछी ऊमर नाह ॥

पतिकी यह 'ओछी ऊमर' उसके लिअे दुःखका कारण होनेके स्थान-पर गौरवका विषय होती है क्योंकि वह यह भी देख लेती है कि—

मैं परणंती परखियो तोरणरी तणियांह ।
धर-धण लांबी पहरतां पहरै घण जणियांह ॥

स्वामीको युद्धके वीरवेशसे सजाना यह वीरनारी अपना कर्तव्य, अपना अधिकार, समझती है। प्राणप्रिय पतिको यमराजके सामने भेजते हुअे वह कभी विचलित नहीं होती। वह तो सोल्लास उसे प्रोत्साहित करती है—

पाछा फिर मत झांकज्यो, पग मत दीज्यो टार ।
कट भल जाज्यो खेत में, पर मत आज्यो हार ॥
भाग्ये मत तू, कंथड़ा, तो भाग्ये मुझ खोड़ ।
मोरी संग-सहेलियां ताळी दे मुख मोड़ ॥

प्राणोपमा प्रियतमाके मधुर अनुरोधका पालन करनेको किसका जी न करेगा ? उसकी अवहेलना करनेका साहस किसको हो सकता है ? कौन पति सहन कर सकता है कि उसकी प्राणवल्लभा अपनी सहेलियोंमें उसके कारण उपहासका पात्र बने ? अैसी वीरपत्नियोंका पति यदि हँसते-हँसते आत्मोत्सर्ग करदे तो इसमें क्या आश्चर्य ? पर क्या इससे यह सूचित होता है कि उनके हृदयमें कोमल भाव नामको भी नहीं है ? कठोर वातावरणमें पलते-पलते क्या उनका जीवन भी इतना कठोर बन गया कि शुष्क कर्तव्य-परायणताके सिवा उसमें कुछ रही नहीं गया ? नहीं, उन हृदयोंमें कोमल भावोंकी धारा भी उतने ही प्रबल वेगसे प्रवाहमान है जितनी वे ऊपरसे नीरस प्रतीत होती हैं। 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' का वे ज्वलंत उदाहरण थीं। इसीलिअे तो धधकती हुई चिताओंपर हँसती-हँसती अपने पतियोंके (मृत शरीरोंके) साथ चढ़ जाती थीं।

अेक वीरनारी युद्धमें जाते हुअे पतिसे कहती है—

कंथ, लखीजै उभय कुळ, नांह धिरंती छांह।
मुड़ियां मिळसी गींदवो, मिळै न धगरी बांह॥

हे पति, अपने और मेरे, दोनों, कुलोंकी ओर देखना, सांसारिक सुख तो छायाके समान आता-जाता रहता है, उसके लिअे युद्धसे विमुख होकर दोनों कुलोंको कलंकित न करना। यदि अैसा किया तो तुम्हारी इच्छा भी पूर्ण होनेकी नहीं। लौटनेपर अपना सिर तकियेपर रखकर ही सोना, तुम्हारी प्रियतमाकी बाँह सिर रखनेको नहीं मिलेगी यह निश्चित समझ रखना।

यह वीरपत्नी जिस समय सुन लेती है कि उसका पति युद्धसे विमुख हुआ उसी समयसे अपनेको विधवा समझ लेती है। कायरकी अंकशायिनी होनेकी अपेक्षा चिताकी अंकशायिनी होना वह अधिक पसन्द करती है।

उसे विश्वास है कि जब तक उसका पति जीवित है तब तक उसकी सेना कभी भाग नहीं सकती। युद्धमें देवरको अकेला देखकर उसके लिअे आशंकित होनेवाली अपनी जेठानीको वह वीर नारी किस विश्वस्तता के साथ उत्तर देती है—

भाभी देवर अेकलो, सोचीजै न लगार।
मूझ भरोसो नाहरो, फोजां ढाहणहार॥

हे भाभी, तुम्हारा देवर अकेला है यह जानकर सोच न करो। मुझे अपने पतिका पूरा भरोसा है। उस अकेलेको तुम कम न समझना। वह अकेला ही समस्त सेनाको विध्वस्त करनेके लिअे पर्याप्त है।

पति युद्धमें मारा जाता है। पतिको अपने हाथोंसे यमराजको सौंपनेवाली वीर नारी उसे अकेला कैसे सौंप सकती है? उसके बिना, उसके वियोगमें, अकेली वह कैसे जियेगी? वह अपनेको भी साथ ही सौंपती है। न पतिको मृत्यु-मुखमें भेजते समय वह अधीर होती है, न स्वयं उसका सहगमन करते। पति ढोल बजाते हुअे उसे लेने आया था और ढोल बजाती हुई ही वह उसके साथ जाती है।

पर चितारोहणके पूर्व वह अपने पिताको अेक संदेशा कहला देना चाहती है—

> पंथी, अेक संदेसड़ो बाबलने कहियाह ।
> जायां थाळ न वज्जिया, टामक टहटहियाह ॥

हे पथिक, मेरे पिताको अेक संदेश कह देना। जन्मके समय तो मेरे लिअे थाली भी नहीं बजाई गई पर आज मेरे लिअे बड़े-बड़े नगाड़े बज रहे हैं। आज मैंने तुम्हारे नामको भी समुज्ज्वल बना दिया है।

कन्याको हीन समझकर उसके जन्म-समय थाली न बजानेकी प्रथा पर कितना तीव्र कटाक्ष है!

अैसे गौरवशाली राजस्थानका आज जो महान् अधःपात हुआ है वह किसके हृदयको दुखी नहीं कर देगा? अपनी भीषण ललकारसे संसारको कंपायमान कर देनेवाली वह वीर राजपूत जाति आज घोर विलास और विनाशकारी शराब तथा अफीमके नशेमें सुधबुध खोकर कुत्सित जीवन-यापन कर रही है और मुसकुराता हुआ अतीत आज व्यंगकी भयानक हँसी हँस रहा है।-पर राजपूत-बालाका वह तेज अब भी किसी-न-किसी अंशमें बचा हुआ है। मातृभूमिकी दुर्दशा देखकर अेक आधुनिक राजपूत-रमणी अपने कायर पतिको फटकारती है—

> पराधीन भारत हुयो प्यालांरी मनवार।
> मात्रभूम परतंत्र हो, बारबार धिरकार॥
> दुसमण देसां लूंटकर ले ज्यावै परदेस।
> राजन, चुड़ल्यां पहर लो, धरो जनानो भेस॥
> विस खावो, कै सरण लो सरवरियैरी थाह।
> कै कंठां विच घाल लो घाघरियारी धाह॥

धिक्कार है तुम्हें, जो प्यालोंके दौरदौरमें मातृभूमिको पराधीन बना दिया। विदेशी प्रतिदिन देशको लूटकर उसका धन सात समुद्र पार ले जा रहे

हैं पर तुम्हारे कानोंपर जूँ भी नहीं रेंगती। शर्म तो नहीं आती! चुल्लू भर पानीमें डूब क्यों नहीं मरते? अरे, औरत क्यों न हुअे? अब भी हाथोंमें चूड़ियाँ डाल लो और कमरमें पघरी (लहँगा) पहन लो—

यो सुवाग खारो लगै, जद कायर भरतार।
रंडापो लागै भलो, होय सूर सिरदार॥

इस सुहागसे तो वैधव्य कितना ही अच्छा! अरे, तुम तो सिंह पद धारण करनेवाले हो। तीतर, लवा, बटेर, खरगोश, सुअरका शिकार करके फूल जाते हो! क्या यही तुम्हारी राजपूती है—

तीतर लवा बटेर अर सुस्सा सूर शिकार।
इणहां रजपूती नहीं, नाम सिंघ रखणार॥

अब भी कुछ हया है तो—

वस्त्र कसूमल पहर लो कसो कमर तलवार।
बरछी ओर कटार ले हुवो तुरँग असवार॥
पाछा फिर मत झांकज्यो पग मत दीज्यो टार।
कट भल जाज्यो खेतमें पर मत आज्यो हार॥

भीषण पर्देकी कुप्रथासे असहाय बनी हुई इस क्षत्रियबालाको इतनेसे ही संतोष नहीं होता। वह फिर कहती है—

सीख राजरी होय तो हूँ भी चालूं साथ।
दुसमण भी फिर देखले म्हांरा दो-दो हाथ॥

धन्य है तू राजस्थानकी वीर नारी! जो देश अैसी बालाओंको जन्म दे सकता है उसको अपने घोर पतन-कालमें भी निराश होनेकी आवश्यकता नहीं।

राजस्थानका यह साहित्य जीवनसे अलग नहीं किंतु उसके साथ मिला हुआ है। राजस्थानके ये वीर साहित्यकार कलमके ही धनी नहीं होते थे, तलवारके साथ भी खेलते थे। उनके इस सप्राण साहित्यका

कवि इस सौन्दर्यपर मोहित होकर कहता है—

मारू-कामण घर दखण जे हर देय तो होय ।

ढूँढाड़के हरेभरे भू-भागका कविने कितना रोचक वर्णन किया है—

वागां वागां वावड़्यां, फुलवांदां चहुँ फेर ।
कोयल करै टहूकड़ा, अइ हो घर आंवेर ।
आम ज उमदा नीपजै, गेहूँ अर गुड़ वाड़ ।

और भी ढूँढाड़में जानने योग्य क्या बात है—

ऊँचा परवत, सेर वन, कारीगर तरवार ।
इतरा वधका नीपजै, रंग देस ढूंढाड़ ।
नर नाहर तो नीपजै, सेखा-धर ढूंढाड़ ॥

कवियोंने वातायनसे निकले हुओ चन्द्राननका बड़े चावसे वर्णन किया है—

उदियापुररी कामणी गोखां काढै गात ।
मन तो देवांरा डिगै, मिनखां कितीक वात ॥

वातायनसे निकले हुओ शरीर-सौंदर्यपर मनुष्य तो दूर रहे, देवता भी मुग्ध हो जाते हैं। कालिदासने भी सुनन्दासे कहलाया है—

प्रासाद-वातायन-संश्रितानां नेत्रोत्सवं पुष्पपुरांगनानाम् ।

पार्वत्य-सौंदर्य-वर्णन भी देखिये—

टूके-टूके केतकी, झिरणे-झिरणे जाय ।
अरबुदकी छबि देखतां और न सालै दाय ॥
वनसपती पाखर वणी, वणिया टूक विहद्द ।
पटा विछूटै नीझरण, आयो मद अरवुद्द ॥
गह घूमी, लूमी घटा, वीजां सहिरां वद्द ।
वादल मांय विराजियो आजूणो अरवुद्द ॥
चंपा माणो, गिर चढो, आंवा भखो अवल्ल ।
अरवुदसूं अलगा रहै, जिणरो कोण हवल्ल ॥

श्रीधर पाठकने हिमालय-वर्णन बड़ा सुंदर किया है पर उसमें उक्ति-वैचित्र्यको जितना महत्व दिया है उतना निसर्ग-सौंदर्यको नहीं—

सोहन त्रिगुन, त्रिदेव, त्रिजग प्रतिभास निरन्तर ।
बिलसत सो तिहुँ काल त्रिविध सुठि रेख अनूपम ॥

इससे आगे पाठकजी भूगोल पढ़ाने लग जाते हैं—

हरिद्वार केदार बदरिकाश्रमकी सोभा ।
× × ×
पुनि देखिय कसमीर देस नैपाल तराई ।
सिकम और भूटान राज्य आसाम लगाई ॥

दूहाकारके पास आबू-सौंदर्यपर मुग्ध होनेपर उसकी सीमा बतानेके लिये अवकाश नहीं रहा, वह तो आनंद-विभोर होकर बोल उठा—

जमी ओर असमान विच आबू तीजो लोक ।

•

प्रेम-कहाणी कहत हूँ, सुणो सखी री आय ।
पिव ढूंढणको हम गई, आई आप हिराय ॥

कठोर कर्त्तव्य-पथका अनुयायी राजस्थान हृदयके कोमल भावोंसे शून्य नहीं है। उसके हृदयमें सुकमार-भाव-धारा भी उतने ही वेगसे प्रवहमान है जितना कि वह ऊपरसे कठोर दिखाई देता है। राजस्थानी साहित्यमें प्रेम संबंधी उक्तियाँ भावुकता, मर्म स्पर्शिता और मनोहारितामें अन्य किसी भाषाके साहित्यसे उतरती हुई नहीं। प्रेमतत्त्वका निरूपण देखिये—

प्रणयका सच्चा स्वरूप है ममत्त्वका त्याग। उस संसारमें या तो 'मैं' रह सकता है या 'तू'। वहाँ द्वैतवादका निर्वाह नहीं हो सकता है, अद्वैताकार बनना पड़ता है—

दोय-दोय गयंद न बंधसी अेकै कंबू ठाण ।

साधक साधनाके लिये 'तत्त्वमसि' या 'सोऽहम्' में से अेक मार्ग अपना सकता है। कबीरने भी अपनी प्रणय-कहानी इसी तरह कही है—

लाली मेरे लालकी जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥

प्रेमी-अन्वेषण ही यही है कि प्रेमोमय हो जाना।

प्रणय साधना ही ईश्वर-साधना है। प्रणय और परमेश्वरमें कुछ भी अन्तर नहीं—परमेश्वरका दूसरा नाम ही प्रणय है—Love is God and God is Love. इसी साधन-सफलताको ही मोक्ष या कैवल्य कहते हैं, जो सच्चे प्रेमीको सदेह ही प्राप्त हो जाती है। उस अवस्थामें पहुँचनेपर हृदय और जिह्वाका सम्बन्ध रही नहीं जाता। वहाँ प्रणयका "मौनं चैवास्मि गुह्यानाम्" सम्मोहक स्वरूप मिलता है, जिसमें तल्लीन होकर मनुष्य "अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्" का दर्शन करने पर "मूकास्वादनवत्" उस आनन्दका वर्णन नहीं कर सकता और उसका अन्तर्प्रदेश ही सृष्टि बन जाता है—

जैसे छहियां फूल की मांहोमांह समाय

फिर उस मानससे अेक अपूर्व संगीत फूटता है जिसमें ब्रह्माण्ड लय हो जाता है—

Music in the valley;
Music in the hill;
Music in the woodland;
Music in the rill;
Music in the mountain;
Music in the air;
Music in the true breast;
Music everywhere;

इस स्वर्ण-संगीतसे अेक नव-आभा फूटती है जहाँ "बारह मास विलास" और "तेजपुंज परगास" अनन्त कालतक उद्भासित होते रहते हैं।

यह पावन-लोक पुस्तकावलोकनसे नहीं मिल सकता—

पोथा तो थोथा भया, पंडित भया न कोय ।
ढाई आखर प्रेमका, पढ़ै स पंडित होय ॥

प्रणय-स्वरूप जितना आनन्ददायक है उतना ही गहन है। प्रणय करनेका बहाना बहुत-से धूर्तजन भी करते हैं पर उनसे "आदि-अंत निवहै नहीं"। अनन्य उपासिका गोपियाँ भी अेक बार घबराकर कह उठी थीं—

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो ।

प्रणय-संसारमें प्रवंचनके लिअे स्थान नहीं। यहाँ मिट जानेपर भी शायद ही सफलता मिले। फिर प्रवंचकोंका यहाँ कैसे गुजारा हो सकता है? उनके लिअे सूचना लगी रहती है—

Go, go, you nothing love......a Lover! No,
The semblence you, and shadow of a Lover.

क्षुद्रोंका प्रेम प्रारंभमें ही मादक-सा होता है—

डूंगर केरा वाहळा, ओछां-केरा नेह ।
वहता वहै उँतावळा, छिटक दिखावै छेह ॥

आत्म-बलिदान करना सरल है पर प्रणय-तपस्यामें सफल तपस्वी होना कठिन है—

खड्ग-धार पर काय, चालै तो चलवो सहल ।
मुसकल जगरे मांय नेह निभावण, नागजी ॥

सर्वस्व लुटाकर भी वह विभूति नहीं मिलती, साधक साधनामें जीवन मिटाकर भी वह ज्योति नहीं लख सकता, उसका मूल्य सिरमात्र ही होगा? प्रणय-मार्ग बड़ा विकट है—प्रणय-स्वरूप भगवान कहते हैं—

यततामपि, सिद्धानां, कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ।

अतः कहना होगा—

जाणै सोई जाणसी प्रीत-रीतको भेद ।

प्रणय-मार्ग सर्वस्वत्याग है। सच्चा प्रेमी परवाह नहीं करेगा कि दूसरी तरफ भी चाह है या नहीं। यदि तुम प्रेमके बदले प्रेम चाहते हो तो वह

प्रेम नहीं स्वार्थ है। आदर्श-प्रेमी पतंग मर मिटता है पर कभी परवाह नहीं करता कि दीपक चाहता है या नहीं—

हाय दई, कैसी भई, अणचाहतको संग।
दीपकके भावै नहीं, जळ-जळ मरै पतंग।

पतंगने जलते-जलते दीपकका स्वरूप पहचान ही लिया—

पहले तो दीपक जळे, पीछे जळै पतंग।

प्रेमीका सत्य-स्वरूप जानने पर यह कहनेकी आवश्यता न होगी—

उन्हें भी जोशे उल्फत हो तो लुत्फ उट्ठे मुहब्बत का।
हमीं दिन रात अगर तड़पें तो फिर इसमें मजा क्या है?

यह प्रेम नहीं माया है। प्रेमाग्निमें तपने पर ही कोई सच्चा प्रेमी हो सकता है। विना तपाये स्वर्ण और प्रेमी दोनों खरे नहीं हो सकते। यहाँ अेक बार मिट जाना होगा फिर प्रणय-सोम-रससे नव-जीवन मिलेगा। प्रियतमके रंगमें रँग जानेके लिअे अपना रंग छोड़ना होगा।

आत्मा और परमात्माका अनन्त मिलन ही रहस्यवाद है तथा मिलन-मार्गकी वेदना हृदयवाद है। हृदयमें ममत्वका भार सौंपनेकी अेक आकांक्षा है। जब वह आकांक्षा किंचित् परिवर्द्धित होती है तो अपना सर्वस्व समर्पण करनेको व्याकुल हो उठती है और वह मिलन-मार्ग खोजने लगती है अेवं अनन्त प्रियवस्तुको प्रेमिका रूपमें या प्रियतम रूपमें पुकार उठती है—पिव-पिव लागी प्यास।

श्रीयुत प्रसाद भी अकुलाते-से कहते हैं—आ मिलो, प्राणधन।

श्रीनिरालाने प्रेमिकाके दृग खुलवाने आरंभ किये और श्रीयुत पन्तने तुतलाना—

प्रिय मुद्रित दृग खोलो।—निराला

वैसे ही तेरा संसार
अति अपार यह पारावार
नहीं खोलता है मा!
अपने अद्‌भुत रत्नोंका भण्डार।—पन्त

फिर प्रेमीके लिअे प्रियतम ही सर्वस्व वन जाता है। वह उसके विना रही नहीं सकता। वह उस जीवनको विरहाग्निमें तपाना प्रारंभ करता है। उसके लिअे संसार शून्य हो जाता है—नव कोटी नगरी वसै, म्हांरे भांव उजाड़। विरह-तपस्याका प्रेमी जब सफल तपस्वी हो जाता है तब प्रणयके दर्शन होते हैं। वीच-वीचमें प्रणय परीक्षा लेता है कि इतने कष्ट-साध्य कठिन मार्ग पर क्यों चलते हो, पथिक ? याद रखना Love is a blind guide. पर प्रेमी क्या उत्तर देता है कि तमसाकार इस तुम्हारे काले रंग पर दूसरा रंग चढ़ ही नहीं सकता—

जैसो काळो रंग।
मैलो हुवै न मँद पड़ै, धोयो धुपै न अंग॥

तुम्हारा प्रेमी दूसरी तरफ कैसे देख ले—

'सूरदास' प्रभु कारी कामरी चढ़त न दूजो रंग।

इसीलिअे पन्तने भी 'माँ' से काला दुकूल माँगना प्रारंभ किया—

मां! काले रँगका दुकूल नव
मुझको बनवा दो सुन्दर

क्योंकि यह काला रंग, जो जीवन विशुद्ध करनेका साधन है,—

ज्यों ज्यों डूबै स्याम रँग, त्यों त्यों उज्ज्वल होय।

इस परीक्षामें उत्तीर्ण होने पर साधक अन्तर्जगतमें देखते ही मुसकाने लगता है—

जब नयणांसूं वीछड़्या, तब उर मांझ पइट्ठ।

अपूर्णताका स्थान पूर्णताने ले लिया। जीवन अलौकिकानन्दसे मत्त हो उठा—

हूँ वळिहारी सज्जणां, सज्जण मो वळिहार।

फिर सन्देश भेजनेका स्मरण आते ही प्रेमी मुसकाता हुआ कहता है—

पाती तहां पठाइये, जो साजन परदेस।
निज मनमें साजन वसै, ताकूं का संदेस॥

अपने प्रियतममें अेकाकार हो जाने पर आदर्श प्रेमी कवीर कहते हैं—

हम सब मांहि सकल हम मांही, हममें और दूसरा नाहीं,
तीन लोकमें हमारा पसारा, आवागमन सब खेल हमारा।
खट दरसन कहियत हम भेखा, हमही अतीत रूप नहीं रेखा,
हमही आप कबीरा कहावा, हमही अपना आप लखावा।

सूरकी गोपियां भी विरहाग्निमें तपकर कहती हैं—

पूरनता इन नयनन पूरी।

उनके मानसमें भी वह ज्योति जग गई—

चन्द्रकोटि प्रकास मुख, अवतंस कोटिक भांन।

श्रीप्रसाद भी आनन्द-विह्वल हो उठते हैं—

तुम्हे अर्पण औ' वस्तु त्वदीय,

श्रीपन्त भी प्राणोंको लययोग-साधनाके साधक बना चुके हैं—

बन्धु! गीतोंके पंख पसार
प्राण मेरे स्वरमें लयमान,
हो गये तुमसे अेकाकार
प्राणमें तुम औ' तुममें प्राण।

श्रीमती महादेवी वर्मा भी 'मैं' और 'तू' को अेकाकार करती हुई कहती है

तुम अनन्त जलराशि उर्मि मैं चंचल-सी अज्ञात,
+ + +
मैं तुमसे हूं अेक, अेक हैं जैसे रश्मि प्रकाश।

प्रेमी-जन सांसारिकतासे ऊपर अपना अेक नव-लोक बना वि करते हैं। वहां, उस आनन्द-लोकमें प्रियतमके साथ जानेका इरादा कर हैं या विरहावस्थामें प्रियतमका वास ही उस लोकमें होता है। पवित्र प्रण लिअे विकारमय संसारसे ऊपर ही कोई आलोकित संसार चाहिअे—

सांझ पड़ी दिन आंथव्यो, चकवी दीनी रोय।
चल, चकवा, वा देशमें, सांझ कदे नहिं होय॥

जहां हम अनन्तकालके लिअे मिल जायँ और सतत प्रणयालोक आलोि होता रहे। कबीरके शब्दोंमें—

..........जहँ बारह मास विलास।
प्रेम झरै बिगसै कमल, तेज-पुंज-परगास॥

निरालाने भी उसी संसारमें जानेका इरादा कर लिया है—

जहां नयनोंसे नयन मिले,
ज्योतिके रूप सहस्र खिले,
सदा ही बहती नव-रस-धार—
वहीं जाना, इस जगके पार।

भावुक कवि श्रीयुत भरतप्रसाद व्यासने भी उस संसारका कितना सम्मोहक चित्र चित्रित किया है—

चलो चलें उस मधुमय जगमें प्रियतमकी हो छांह जहां।
अलि-बाला स्वच्छन्द डोलती प्रिय-गल डाले बांह जहां॥
पुतलीमें पुतलीका नर्तन, नयन नयनसे मिले जहां।
हृदय-वीणके मृदुल तारपर प्रणयीका हो गान जहां॥
× × × ×
प्रेयसिका उर बन जाता है प्रियतमका उर-हार जहां॥

राजस्थानी साहित्यमें नायिकाका आदर्श कैसा मनोहर और पवित्र-भाव-पूर्ण है—

गति गंगा, मति सरसती, सीता सीळ-सुभाय

चालमें (शाब्दिक और लाक्षणिक दोनों अर्थों में) पवित्र गंगाके समान बुद्धिमें वीणापाणि भारतीके समान और शील तथा स्वभावमें सती-शिरोमणि सीताके समान।

स्त्री-सौंदर्यका राजस्थानी आदर्श नीचे लिखे दूहोंमें मिलेगा—

मारू-देस उपन्नियां सर ज्यूं पध्धरियांह
कड़वा कदे न बोलही मीठी बोलणियांह
मारू-देस उपन्नियां त्यांका दंत सुसेत
कूंझ-बचां गोरंगियां, खंजर जेहा नेत।

उर चवड़ी, कड़ पातळी, झीणी पांसळियांह
थळ भूरा, वन झंखरा, नहीं स चांपो जाय
गुणे सुगंधी मारवी महकी सब वणराय

मारवाड़की स्त्रियां तीरकी तरह सीधी (ऊँचे कदकी) होती हैं, सद मीठी बोलनेवाली होती हैं, उनके दांत मोतीकी तरह शुभ्र होते हैं, शरी क्रौंच-शावकके समान सुकुमार और गौरवर्ण होता है, नेत्र खंजनकी तर विशाल और चंचल होते हैं, छाती चौड़ी होती है, कमर पतली होती है औ पँसुलियां सुकुमार होती हैं। उनकी सौंदर्य-सुरभिसे शुष्क मरुभूमि में सोल्लास सुरभित हो उठती है।

इस काव्य-वाटिकामें थोड़ा और विहार कीजिये। यहां आपको प्रणय का सत्य स्वरूप दृष्टिगोचर होगा—नायिकाओंका नग्न रूप देखनेको नहं मिलेगा। जीवनमय वह काव्यधारा मिलेगी कि जीवन-ज्योति जागृत ह उठेगी।

प्रियतमके प्रेममें मग्न अेक नायिका कहती है—

साजन-साजन हूं करूं, साजन जीव-जड़ी।
साजन फूल गुलाबरो निरखूं घड़ी-घड़ी॥

वह तो समस्त लोकको साजन-मय ही देखना चाहती है—

साजन-साजन हूं करूं साजन जीव-जड़ी
सजन लिखा लूं चूड़ले बांचूं घड़ी-घड़ी।
साजन, तुम मुख जोय जग सारो ही जोइयो।
अैसो मिल्यो न कोय ज्यां देख्यां तुम वीसरूं॥

जब तुम्हारा सौन्दर्य मानसमें विकसित है तब दूसरी वस्तुकी तरफ हृदय कैसे आकर्षित हो सकता है। यहां प्रेमी परमेश्वरके रूपमें देखा गया है। प्रेमीको जब प्रणयका मोहक सत्य-स्वरूप मिल सकता है तब सून्य भीति पर चित्र रंग नहिं तन बिनु लिखा चितेरे—इस आराधनाकी कोई आवश्यकता नहीं होती। कविवर टेनिसनने कहा है—

Where God in man is one with man in God.

प्रेमीकी कसौटी

साजन अैसा कीजिये, जामें लखण बतीस।
भीड़ पड़्यां विरचै नहीं, सीस करै बगसीस॥
साजन अैसा कीजिये, जैसा रेसम रंग।
सिर सूळी धड़ कांगरे, तोइ न छूटै संग॥

यहाँ "सीस उतारैं भुइं धरै" इतनेसे ही प्रणय-संसारमें पैठनेकी इजाजत नहीं मिलती लेकिन "सिर सूळी धड़ काँगरे" रहनेपर भी प्रियतमका संग न छोड़नेपर प्रवेश-आज्ञा मिलती है। जीवनको अैसा मिटाना होगा कि न जीवनका अस्तित्व रहे और न मृत्युका। इस भावनाका आत्मसमर्पण ही अमरत्व है। फिर सत्यमार्ग जीवनके सामने चमक उठेगा—

अमरता है जीवनका ह्रास,
मृत्यु जीवनका चरम-विकास॥

प्रियतमके मिलनमें सांसारिक बाधाअें बाधक नहीं हो सकतीं—

जलहर वसै कमोदणी, चंदो वसै अकास।
जो ज्यांहीके मन वसै, सो त्यांहीके पास॥

जिसके हृदयासन पर जिसने स्थान पा लिया है, वह फिर अलग कैसे हो सकता है। कबीरने भी कहा है—

कबीर गुर बसै बनारसी, सिप समंदां तीर।

प्रेमिका प्रियतमसे सदा मिली रहना चाहती है। उसे किसी भी ऋतु-में विरह पसन्द नहीं। इसीलिअे वह तीनों ही ऋतुओंमें दोष दिखाकर उनको चलनेके अयोग्य बतलाती है—

सीयाळे तो सी पड़ै, ऊनाळे लू वाय।
बरसाळे भुंय चीकणी, चालण रुत न काय॥

प्रियतमके चलनेके समय उसे रोकनेके लिअे पागड़ेसे झूमती हुई नायिकाका चित्र कितना स्वाभाविक और हृदयस्पर्शी है—

सायधण हल्लण सांभळै ऊभी आंगण छेह।
काजळ जळ भेळा करी नांखीनांग भरेह॥

ढोलो हल्लाणो करै घण हल्लवा न देय ।
झवझव झूंबै पागड़े डवडव नयण भरेय ॥

विरहाश्रुओंसे परिपूर्ण नेत्रोंके दो-चार मनोहर चित्र और लीजिये—

सजण सिधाया, हे सखी, ऊभी आंगण दीच ।
नैणां चाल्या चोसरा, काजळ माच्यो कीच ॥

बिहारी कहते हैं—नाहक मन बँध जाय। पर केवल मनही बंधनमें नहीं आता, नयनोंके लिये भी घोर संकट आ जाता है—जिव्हा बंद हो जाती है।

बैणा हुयो न दोलणो, नैणा चाली धार ।
सजण सिधाया, हे सखी, पाछा फिर मत झांख ।
जोय-जोय ऊठी जावतां, रोय-रोय फूटी आंख ॥
सजन सिधाया, हे सखी, झीणी ऊडै खेह ।
हियड़ो वादळ छाइयो नयण टवूकै मेह ॥
साजणिया ववलाइकै गोखे चढी लहक्क ।
भरिया नैण कटोर ज्यूं मूंधा हुई डहक्क ॥
ऊभी थी रायंगणे सायब सांभरियाह ।
च्यारूँइ पल्ला चूनड़ी आंसू जळ भरियाह ॥

नयनोंकी घोर-साधनाका कविने क्या ही कारुणिक चित्र खींचा है। कबीरने भी इनकी साधनाके फल-स्वरूप इनको वैरागीकी उपाधि दी है—

विरह कमण्डळ कर लिये, वैरागी दो नैण ।

सूरने भी आंसुओंकी बाढ़का अच्छा वर्णन किया है पर उनके वर्णनमें शायरीपनकी बू अधिक आगई है, जिससे स्वाभाविकता अलग होगई है—

निसि दिन वरसत नैन हमारे ।

\+ + + +

सूरदास प्रभु अंबु बढयो है गोकुल लेहु उवारे ।
कहँ लौं कहौं स्यामघन सुन्दर विकल होत अति भारे ॥

प्रियतमके जानेपर हृदय तो उनके साथ चला गया पर नेत्रोंको बड़ी मुश्किलसे रखा है—

साल्ह चलंता हे सखी, गोख चढ मैं दीठ ।
हियड़ो वांहीसूं गयो, नैण वहोड़या नीठ ॥

मनके चले जानेपर वहीं पहुंचनेको नेत्र भी वैराग्य धारण कर लेते हैं। प्रणय-संसारमें आँख और मनका ही तो शासन है। मानस-समर्पण बिना तो उधर झांकना भी कठिन है।

प्रियके प्रवासमें रहनेपर विरहिणीको उसकी स्मृति करानेवाले प्राणी अच्छे नहीं लगते—

बावहिया, तूं चोर, थारी चांच कटावसूं।

रात सखी, इण तालमें कांइज कुरळी पंखि ।
वा सर, हूँ घर आपणे, बेहुँ न मेली अंखि ॥

पक्षी तालपर करुणामय रोना रोता हुआ जागता रहा और मैं पीड़ित मानस लेकर अपने घरमें सच्चे प्रेमीके लिये प्रियतम-प्राप्ति बिना आनन्द मोह है। संसार जब आनन्द-विहारमें विचरता है तब सन्त साधना करते हैं—

सब जग सोवै नींद भरि, संत न आवै नींद ।

प्रसादने भी कहा है—

लोग जब हँसनें लगते हैं;
तभी हम रोनें लगते हैं।

\+ + +

कृपक जब हँसने लगते हैं,
तभी हम रोनें लगते हैं।

संसार जब आनन्द करता है तब विरही-मानस तपस्या करता है—

सावण आयो, सायवा, हरिया हरिया रुख ।
हरियो हुयो न अेकलो, प्यारी थणरो मुख ॥
नाळा नदियांसूं मिलै, नदियां सरवर जाय ।
विरछांसूं वेलां मिलै, अैसी सही न जाय ॥

The fountain mingles with the river
And the river with the ocean,
The winds of Heaven mix for ever
With a sweet devotion:
Nothing in the world is single,
All things by law divine
In one spirit meet and mingle,
Why not I, with thine ?

अेक ही शक्ति प्रणयमें सब मिलते हैं और दूसरोंको मिलते हुअे देखकर विरहीके हृदयमें पीड़ा उठती है कि प्रेम-स्वरूप प्रियतमसे मैं ही क्यों नहीं मिलता । शैलीने व्यापक रूपमें जो वस्तु रखी है वह दूहेमें संक्षेपमें कही गई है। अन्तिम कथन Why not I with thine की अपेक्षा "अैसी सही न जाय" में ज़्यादा उक्ति-वैचित्र्य तथा कसक है—

सावण आयो, सायवा, सब वन पांगरियाह ।
आव, विदेसी पावणा, अै दिन दूभरियाह ॥

प्रियतमकी प्रतीक्षा करती हुई नायिकाका कैसा मूर्तिमान चित्र खींचा गया है—

दिस चाहंती सज्जणा नेहाळंती मग्ग ।
साधण कुंझ-बचाह ज्यूं लांबा हूया पग्ग ॥
दिस चाहंदी सज्जणा नेहाळंदी मुंध ।
साधण कुंझ-बचाह ज्यूं लांबी थई तु कंध ॥

देखनेके लिअे बारबार उझकती हुई नायिकाकी गर्दन और पैर क्रौंच-शावकोंकी गर्दन और पैरोंकी भांति लंबे हो गये।

अन्तमें प्रियतमके न आनेसे विरहिणी क्रौंच पक्षीसे पांख मांगती है—

कूंजा, द्यो ने पांखड़ी, थांको विनो वहेस ।
सायर लंघी पिव मिलूं, पिव मिलि पाछी देस ॥

उनके पांख न देनेपर उनसे सन्देश पहुँचानेके लिये आग्रह करती है।

उत्तर दिसि उपराळियां दख्खण सामहियाह ।
कुरझां; अेक संदेसड़ो, ढोलाने कहियाह ॥

यह स्थल मेघदूतसे किसी तरह कम रोचक नहीं है। विरहिणी और क्रौंच वार्तालापका-सा रोचक और करुण स्थल अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। हम अपने पाठकोंसे उसे मूलमें पढ़नेकी प्रार्थना करेंगे।

जब किसीकी प्रतीक्षा होती है तो प्रायः कौवेको उड़ाया जाता है। यह प्रथा प्रायः समस्त भारतमें प्रचलित है। साहित्यमें भी स्थान-स्थानपर इसका वर्णन हुआ है। अेक नायिका अपने प्रियतमकी प्रतीक्षामें कौवेको उड़ा रही थी। इतनेमें ही अचानक उसका पति आ गया। उस समय नायिकाको जो हर्ष हुआ उसका कैसा मूर्त्तिमान चित्र कविने खींचा है—

काग उडावण धण खड़ी, आयो पीव भड़क्क
आधी चूड़ी काग-गळ, आधी गई तड़क्क,

प्रियतमके विरहमें नायिका इतनी दुबली हो गई कि जब उसने कौवेको उड़ानेके लिअे हाथ फेंका तो हाथकी चूड़ियाँ उछलकर कौवेके गलेमें जा गिरीं। पर ज्योंही उसने प्रियतमका आगमन देखा त्योंही हर्षके मारे उसका दुबलापन काफूर हो गया, वह अेक दम इतनी मोटी हो गई कि जो चूड़ियाँ अभी निकली नहीं थीं वे तड़ककर टूट गईं और नीचे गिर पड़ीं। हेमचन्द्रके 'अध्धा वलया महिहि गय' के भाव की मनोहारिता 'आधी चूड़ी काग-गळ' के रूपमें कितनी बढ़ गई है!

प्रियके आगमनसे संजात हर्ष और उल्लासका कैसा रोचक और जीता-जागता चित्र उपस्थित किया गया है—

साजन आया, हे सखी, हुंता मूझ हियाह
सूका था सू पाल्हव्या, पाल्हविया फळियाह
साजन आया, हे सखी, ज्यांकी हूंती चाय
हियड़ो हेमागर भयो, तन-पंजरे न माय।
आजे रळी-वधावणा, आजे नवला नेह।
सखी, अम्हीणी गोठमें दूधां वूठा मेह॥

नायिकाका हृदय आनन्दमें विभोर होकर नाच रहा है। यही नहीं वह सारे घरको, समस्त वातावरणको, विश्वके प्रत्येक पदार्थको, समस्त विश्व-को, उसी आनन्दमें नाचता हुआ देख रही है—

साजन आया, हे सखी, ज्यांकी जोती वाट
थांभा नाचै, घर हँसै, खेलण लागी खाट

बहुत दिनोंके बाद प्रेमातिथि आया है। उसे कुछ भेंट देनी चाहिये। पर भेंटका पदार्थ होना चाहिये कोई अपूर्व वस्तु। और इससे बढ़कर अपूर्व भेंट भला क्या होगी—

साजन आया हे सखी, कांई भेंट करांह
गज-मोतियनको थाळ ले ऊपर नैण धरांह

दम्पतिके मिलनका वर्णन स्पष्ट होता हुआ भी कितना पवित्रता-पूर्ण और अश्लीलतासे दूर है—

आसालूध उतारियउ धण कंचुवो गळांह
घूमै पड़िया हंसड़ा भूला मानसरांह
कंठ विलग्गी मारवी करि कंचूवो दूर
चकवी मन आणँद भयो किरण पसारया सूर
मन मिलिया, तन गड्डिया, दोहग दूर गयाह
सज्जन पाणी-खीर ज्यूं खिल्लोखिल्ल थयाह

खुले हुए कुचों के लिये मानसरोवर भूले हुए हंसोंकी उपमा कितनी भावपूर्ण और मधुरिमामय तथा साथ ही पवित्रता-व्यंजक है।

दम्पतिके मधुर विनोदको जरा देखिये। नायिका कहती है—

म्हेंने ढोली झूंवियो लूंगे-लक्कड़ियेह
म्हांने प्रिउजी मारिया चंपारे कळियेह
म्हांने प्रिउजी मारिया म्हांनू आवी रीस
चोवा-केरी कूंपळी ढोळी सायब-सीस

प्रियतम मुझे लौंगकी लकड़ियाँ (जरा लकड़ी शब्द पर गौर फरमाइये) लेकर झूम गया। उन्होंने मुझे चम्पाकी कलियोंसे मारा। जब उन्होंने मारा तो हमें भी रोष आ गया और हमने चोवेका पात्र लेकर उनपर उँड़ेल दिया।

राजस्थानकी सर्वश्रेष्ठ ऋतु वर्षा ऋतु है—जे भर वूठो भादवो मारू देस अमूल। यदि गहरो वर्षा हो जाय तो फिर मरुदेशका क्या कहना! राजस्थानीका वर्षा-सम्बन्धी काव्य बड़ा ही सरस और हृदयहारी है। विविध प्राकृतिक दृश्यों, लोगोंकी उमंगों, प्रेमियोंके नाना मनोभावों आदिके चित्र बड़े ही मनोमुग्धकारी और सजीव हैं। कुछ चित्र लीजिये—

घटा और बिजलीका चमकना—

> आई घटा उतरादरी भँज सो कोसां बीच
> सहरों सहरों संचरी बादांवाद खिवंत

प्राकृतिक दृश्य—

> लूमां झड़, नदियां लहर, बग-पंगत भर वाय
> मोरां सोर ममोलिया, सावण लायो साय

पशु और मानव सृष्टिकी उमंगें—

> हरणी-मन हरियाळियां, उर हाळियां उमंग
> तीज परव, रँग त्यारियां, सावण लायो संग
> बाजरियां हरियाळियां, बिच-बिच वेलां फूल
> जे भर वूठो भादवो मारू देस अमूल
> धर नीळी, धण पुंडरी, धर गहगहइ गमार
> मारू देस सुहावणो, सावण सांझी वार

इसी वर्षाऋतुमें अत्यन्त लोकप्रिय तीजोंका त्योहार पड़ता है जो राजस्थानका जातीय त्योहार है। राजस्थानी स्त्रीको यह त्योहार बहुत प्यारा है क्योंकि उसे विश्वास होता है कि इस अवसरपर तो उसका प्रियतम अवश्य ही उसके पास रहेगा—यदि वह प्रवासी है तो अवश्य आ पहुँचेगा। पतिको विदा करते समय पत्नी अवश्य ही कहेगी—

> कंथा, मती चुकावज्यो, तीजां-तणो तिव्हार।

विरहिणी सन्देश भेजती है—

> जे तूं प्रीतम नावियो काजळियारी तीज
> चमक मरेसी मारवी देख खिवंती बीज

संयोगिनी पतिसे कहती है—

> घन घोरा, झीणा फड़, मोरां [illegible]
> [illegible] म मावै सुरता, पपिया, तीज [illegible]
> मेह [illegible], [illegible] [illegible]
> पिक टहूकै, [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]

घोरोंसे गिर घन (आकाश) से भर गये हैं, पृथ्वी जोरोंसे उमड़ आई है और मोर ला-लाकर [illegible] रहे हैं, बादलोंमें बिजली नहीं समाती, मोर शिखरोंपर [illegible] बने हुओ नाच रहे हैं, पिक टहुक रही है, झरने शब्दायमान होते हुओ [illegible] [illegible] गिर रहे हैं। अैसे समयमें, हे रसिक, हरी पहाड़ी पर चलो और मुझे [illegible] रमाओ।

राजस्थानी जीवनने प्राकृतिक सौंदर्यसे मुख नहीं मोड़ लिया है।

कुसुमोंके सौन्दर्यमय जीवनमें मुस्कानका जो स्थान है, वही स्थान हमारे जीवनमें हास्यका है। प्रकृतिके कण-कणमें हास्य बिखरा पड़ा है—उषा अपनी आकर्षक मोहिनी शक्तिके साथ मुसकाती है, सरिताअें सतत मन्द-हासके साथ जीवन-पथ पर चलती हैं, और पिकके मस्तानी अदाके साथ कूक उठने पर निसर्गका कण-कण मौन हासमें व्यङ्गात्मा पोलकर निखर पड़ता है। हास्य-हीन जीवन शून्य है। हास्य शृंगारका प्रबल पोषक है।

हमारे पुराने नाटककारोंने हास्यका प्रशंसनीय सम्मान किया है, उनके नाटकोंमें विदूषकका अेक विशेष स्थान है। धीरे-धीरे हमारे साहित्य-से हास्यका वह रूप उठ गया। हिंदीके पुरातन और नवीन कवियोंने हास्यरसमयी कविताअें कम ही लिखी हैं और जो लिखी हैं उनको घटनात्मक स्वरूप दे दिया है, जिससे इस रसका निसर्गसे सम्बन्ध उठ-सा गया। हास्य का घटनात्मक-विकास अश्लाघ्य नहीं है पर निसर्गसे काव्य-जीवनमें भिन्नता लाना श्लाघ्य कार्य भी नहीं है।

धीर वीर गंभीर होनेपर भी राजस्थान हास्यसे अछूता नहीं। यहाँके हास्य-रसमें निसर्ग और मानव-जीवनका अपूर्व संमिश्रण मिलेगा—

> वाळूं बाबा, देसड़ो पाणी ज्यां कूवांह ।
> आधी रात कुहक्कड़ा, ज्यूं माणस मूवांह ॥
>
> वाळूं, बाबा, देसड़ो पाणी-संदी तात ।
> पाणी-केरे कारणे प्रिय छंडे अधरात ॥
>
> बाबा, मत देइ मारुवां, वर कूंवारि रहेस ।
> हाथ कचोळो, सिर घड़ो, सींचती य मरेस ॥

जहाँ पानी गहरे कुवोंमें मिलता है और पानी निकालनेके लिअे आधीरातसे मरसिया गाया जाने लगता है तथा प्रियतम पानीके लिअे अर्धरात्रिमें छोड़कर चला जाता है अैसी जगह ब्याही जानेकी अपेक्षा लड़की कुमारी ही रहना चाहती है। वहाँ तो बेचारीको सारी उम्र ही सिर पर पानी ढोते-ढोते बितानी पड़ेगी। मारवाड़की पनिहारियोंके 'पणिहारी' गीतका रसास्वादन करनेवाले महाशयोंने इन पनिहारियोंके हृदयकी बातको समझनेका भी कभी कष्ट उठाया है! आगे वह मारवाड़की थोड़ी तारीफ और करती है—

> जिण भुंय पन्नग पीवणा, केर-कँटाळा रूँख ।
> आके-फोगे छांहड़ी, हूँछां भांजै भूख ॥

ढूँढाड़ कुछ विशेष हरा भरा देश है न अतः वहाँ होनेवाले मेवोंके नाम सुन लीजिये और स्त्री-पुरुषोंका सौंदर्य भी देख लीजिये—

> गाजर मेवो कांस खड़, पुरख ज पून-उघाड़ ।
> ऊँघा ओद्धर अस्तरी, अइ हो धर ढूंढाड़ ॥

मारवाड़की रेल प्रसिद्ध है। महात्मा गांधी तक उसकी खूबियों (?) का वर्णन कर चुके हैं। उसी पर अेक नवीन कविजी कहते हैं—

> नहीं तार, नहिं टैम है, नहीं वतीमें तेल ।
> आ चालै मनरे मते मारवाड़री रेल ॥

न तो तारका पता है न टाइमका ख्याल। और तो और, बत्तीमें तेल भी नहीं। फिर चाल! उसकी तो बात ही मत पूछिये! मौज आ गई

तो नौ दिनमें अढ़ाई कोस तो अवश्य ही चल लेती है ! भला रेल भी ठ मारवाड़की ठहरी, जहाँ रेल क्या, सभी कामोंकी प्रगति इसी द्रुत गतिके साथ होती है । बड़े बाबा कही गये हैं—मारवाड़-मनसूबे डूबी ।

क्या आपको मालूम है कि अकालका निवासस्थान कहाँ है? अजी, यों तो इतने बड़े देशमें कहीं-न कहीं उसके दर्शन हो ही जाते हैं, पर आइये हम आपको उसका निश्चित पता बतलावें—

पग पूगळ, धड़ कोटड़े, बाहू बायड़मेर ।
फिरतो-घिरतो बीकपुर, ठावो जैसळमेर ॥

उसके पैरोंसे पूगल पवित्र होता है, कोटड़ा धड़को सम्हालता है, औ भुजाअें बाड़मेर तक पहुँच जाती हैं। सैर-सपाटा करनेके लिअे अकस बीकानेर पर आपकी कृपा-दृष्टि हो जाती है, पर जैसलमेरमें तो आ निश्चितरूपसे बारहकी जगह तेरहों महीने विराजमान रहते हैं ।

जनरल सर प्रतापसिंहका नाम आपने सुना ही होगा । आप ब्रिटि साम्राज्यके अेक महान सिंह थे। पर कवियोंने उन्हें भी न छोड़ा ।

महाराज डाढ़ी-मूछ मुँड़ाये रखते थे और टोप लगाते थे अेक दि उनको देखकर कवि महोदय कही उठे—

दाड़ी-मूंछ मुंड़ाय कै सिर पर धरियो टोप ।
प्रतापसी तखतेसरा, थारे बाकी घटै लँगोट ॥

डाढ़ी और मोंछें मुँडा ही ली हैं, टोपी भी धारण कर ली है, अ कमी केवल अेक लंगोटकी है । वह भी धारण कर लिया जाय तो फिर द स्वामिन् बननेमें क्या कसर रही !

सखियोंकी अेक मण्डली जुटी थी । स्त्रियोंके पास और विषय क्या ? अपने-अपने पतियोंके विषयमें बातचीत होने लगी । अेकने कहा-

मैं परणंती परखियो, नाह भरै बळ नाड़ ।
पड़ै न रण में अेकलो, पड़सी केता पाड़ ॥

दूसरी बोली—

मैं परणंती परखियो, मूंछां भिड़ियो मोड़ ।
जासी स्वर्ग न अेकलो, जासी दळ संजोड़ ॥

तीसरीने तारीफ की—

मैं परणंती परखियो, तोरणरी तणियांह ।
घर-धण लांबी पहरतां पहरैं घण जणियांह ॥

अब चौथीकी बारी आई। चुप कैसे रहती ? बोली—

मैं परणंती परखियो, लांबो घणो लड़ाक ।
आलेड़ारी भींत ज्यूँ, पड़ै दड़ाक दड़ाक ॥

[मैंने विवाहके समय पतिको देखा कि वह बहुत ही लम्बा-लड़ाक लम्बे मनुष्यके लिये हास्यपूर्ण शब्द) है और गीली भींतकी भाँति ड़-तड़ करता हुआ गिरता है ।]

अब राजस्थानकी जातियोंका वर्णन भी थोड़ा सुन लीजिये—

अग्गमवुद्धी वाणियो, पिच्छमबुद्धी जाट ।
तुर्तबुद्धी तुरकड़ो, बामण सप्पमपाट ॥

बनिया पहले सोचकर काम करता है, जाटको अक्लि बादमें आती , वह काम करके सोचता है; मुसलमानकी बुद्धि मौके पर काम देती है; और ब्राह्मण ? उनको तो क्या आगे और क्या पीछे, बुद्धि कभी होती ही हीं—वे तो बुद्धिके नाम सफंसफा होते हैं।

आधुनिक राजपूत सरदारोंकी गिरी हुई दशा देखकर कवि आवेशमें ा जाता है—

वै घोड़ा, वै गाम, रिजक वही, राजा वही ।
राजपूतांरो राम नीसरग्यो क्यूं, नोपला ॥
ठाकर गेया, ठग रह्या, रह्या मुलकरा चोर ।
वै ठकराण्यां मर गई, ठाकर जिणती ओर ॥

घोड़े वही, गाँव वही, जागीर-पट्टा आमदनी सब कुछ वही, राज्य भी ही; पर फिर भी राजपूतोंका 'राम' न जाने क्यों निकल गया ? सच्चे

ठाकुर तो सब चले गये, अेक भी बाकी नहीं रह गया, बाकी रह गये ठग और मुल्क-भरके चोर, जिन्होंने प्रजाको लूटने-खोसनेका ही धंधा बना रक्खा है। जो ठकुरानियाँ सच्चे ठाकुरोंको जन्म देती थीं वे अब पृथ्वी-तल पर नहीं रह गईं।

आजकलके राजपूत सरदारोंका बखान एक दूसरा कवि करता है—

> घोचो लागां घाव, घी-गेहूँ भावै घणा।
> अहड़ा तो अमराव, मोत्यां मूंघा 'राजिया'॥

घोचे (तिनके) का घाव लग जाने पर ही—और घाव तो दूर रहे—उन सरदारोंको गेहूँ और घीके बने तर माल खानेकी जरूरत पड़ जाती है। कवि कहता है अैसे सरदार तो हमारे लिअे मोतियोंसे भी महँगे (बहुमूल्य) हैं!

जब अैसे सरदार रह गये कि जिन्हें घोचेका घाव भी भारी हो जाता है तो फिर युद्धके लिअे प्रेरित करनेवाली वाणीके धनी कविराजोंकी क्या आवश्यकता? इसलिअे हमारे कविजी उन कविराजोंको सलाह देते हैं—

> कविराजा, खेती करो, हळसूं राखो हेत।
> गीत जमींमें गाड़ दो, ऊपर राळो रेत॥

हे कविराजाजी, अब कविता करनेकी आवश्यकता नहीं। यदि पेट भरना है तो हलसे प्रेम करो और खेती करना शुरू कर दो। अपनी कविता-को जमीनमें खूब गहरी गाड़ दो और ऊपर तक अच्छी तरहसे रेत चुन दो ताकि, बकौल पातसाह औरंगजेब, वह कभी बाहर न आने पावे।

अब शाहजीसे भी जै-गोपाल कर लीजिये—

> जळ नदियां मिळिया जिके, मिळिया समँद मँझार।
> वित कर चढिया वाणियां पूगा समँदां पार॥

जो जल नदीमें मिल गये वे फिर गहरे समुद्रमें ही जाकर ठहरे और जो धन वनियोंके हाथ पड़ गये वे तो समुद्रके भी उस पार जा

पहुँचे। वह जल समुद्रमें फिर हाथ आ सकता है पर इसकी संभावना नहीं कि शाहजीके पास गया हुआ धन फिर कभी वापिस मिल जायगा।

दरसावै जगने दया, पाप उठावै पोट।
हितमें, चितमें, हातमें, खतमें, मतमें, खोट॥

ऊपरसे जगतको बड़ी दया दिखलाते हैं—तिलक लगाते हैं, धर्मशालाएँ और मन्दिर बनवाते हैं, कुवे खुदवाते हैं—पर पापोंकी बड़ी भारी गाँठ लादनेसे नहीं चूकते। उनके प्रेममें, चित्तमें, कागजोंमें, विचारोंमें, कोई अेक-दोमें हो तो गिनाया भी जाय यहाँ तो सभी बातोंमें, कपट-ही-कपट भरा रहता है।

औरोंकी तो औकात ही कितनी, यमराज भी इनसे पार न पा सके। बिचारेको अपनी गद्दी छोड़कर भागना पड़ा। कविजी आँखों-देखी कहते हैं—

दी सुरही हाजर हुई, विनय सुणावै बात।
गादी-हूँत भजावियो जमराजा इण जात॥*

लगे हाथों महन्तजीके दर्शनोंका सौभाग्य भी प्राप्त कर लीजिये। कहीं दर्शनसे ही भवसागरसे मुक्ति हो जाय!

चेला लावै माँगकर, बैठा खावै मंथ।
राम-भजन तो नाँव है, पेट भरणरो पंथ॥

चेले माँगकर लाते हैं, महंतजी बैठे-बैठे मौज उड़ाते हैं। काम करना नहीं पड़ता, आसानीसे पेट भर जाता है—तर माल चाबनेको मिलते हैं। वैकुंठका सुख इससे बढ़कर क्या होगा। बाबाजीको तो इसी जन्ममें मुक्ति प्राप्त है—जीवन्मुक्त भला और कैसे होते होंगे?

मूँड मुँडायाँ तीन गुण,—मिटी टाटकी खाज।
बाबा बाज्या जगतमें, मिल्या पेट भर नाज॥

मूँड़ मुँड़ानेसे 'हरि चाहे न मिलें' पर यही तीन लाभ क्या थोड़े हैं? सिर पर बाल नहीं रहे—टाटकी खुजली मिट गई। दूसरे, सारा जगत

*कहानी टिप्पणीमें देखिये।

बाबाजी-बाबाजी कहने लगा * (यों कोई टके सेर तो दूर, टके मनको भी न पूछता)। और तीसरे बिना परिश्रमके बैठे-बिठाये पेट भर अनाज मिल जाता है। फिर हरिसे मिलकर क्या घास छीलते!

जहां राजस्थानी जीवन स्वातंत्र्य-मय है वहां उसके कविलोग भी उद्दंड और स्वतंत्र प्रकृतिके पाये जाते हैं। सच्ची बातको स्पष्ट मुँहपर कह देनेमें वे कभी नहीं हिचकते।

किसी समय जयपुर-नरेश सवाई जयसिंहजी और जोधपुर-नरेश अभयसिंहजी साथ-साथ बैठे हुअे थे। अेक कविराज भी वहां बैठे थे। फरमायश हुई कि कविराजाजी दोनों नरेशोंके विषयमें कुछ सुनावें। पहले तो कविराजाजीने टालना चाहा पर जब बहुत आग्रह किया गया तो बोले—

पत-जैपुर, जोधाण-पत, दोनूं थाप-उथाप।
कूरम मारचो डीकरो, कमधज मारचो बाप॥

जयपुर-पति और जोधपुर-पति दोनों ही अेक अेकसे बढ़कर हैं। कछवाहे (जयपुर-नरेश) ने बेटेको मारा तो कबंधज (जोधपुर-नरेश) ने भाईके द्वारा बापपर हाथ साफ किया।

उक्त पितृहंता वखतसिंहजी अेकबार अपने घोड़ेको बापा-बापा कहकर विड़दा रहे थे। अेक चारण वहींपर खड़ा था। उससे नहीं रहा गया। बोल पड़ा—

बापो मत कह, वखतसी, कांपत है केकांण।
अेकण बापो फिर कह्यां तुरग तजेलो प्राण॥

* पाठक ध्यान रखें कि बाबाजी केशवदासकी तरह चंद्रवदनियों और मृगलोचनियों द्वारा 'बाबा' कहे जानेसे अप्रसन्न होनेवाले व्यक्ति नहीं, वे तो इसे अपना महान सौभाग्य समझते हैं।

हे वखतसिंह, घोड़ेको वापा करकर मत पुकार, यदि अेक वार और वापा कह दिया तो वेचारा प्राणोंसे हाथ धो वैठेगा।

वीकानेर-नरेश दलपतसिंहजीको वादशाहने कैद कर लिया । पर वीकानेरके सरदारोंने उन्हें छुड़ाने तकका प्रयत्न नहीं किया । जला हुआ चारण उन्हें किस तरह फटकारता है—

फिट वीदां, फिट कांधळां, जंगळधर लेडांह ।
दळपत हुड ज्यूं पकड़ियो, भाज गई भेडांह ॥

जोधपुर-महाराज विजयसिंहजीकी मराठोंके साथ लड़ाई हुई जिसमें महेसदास वड़ी वीरताके साथ काम आया। उसीकी वीरतासे महाराजकी विजय हुई। पर उसकी कद्र न करके जगरामसिंह नामक अेक दूसरे सरदारको जो युद्धसे भाग आया था महाराजने आसोपका पट्टा देनेका विचार किया। कोई चारण भी वहीं खड़ा था। तुरन्त बोल उठा—

मरज्यो मती महेस ज्यूं राड़ विचे पग रोप ।
झगड़ामें भागो जगो, उण पाई आसोप ॥

कविके कथनका यह प्रभाव हुआ कि महाराजने अपना विचार वदल दिया।

अेक ताजा उदाहरण लीजिये । मेवाड़के महाराणा सज्जनसिंहजीको सरकारकी ओरसे G. C. S. 1. की उपाधि मिली । वड़ा भारी उत्सव मनाया गया। अेक कविराज मन मलीन किये अेक ओर चुपचाप वैठे थे। पूछा गया—कविराजाजी, मन मारे कैसे वैठे हैं, कुछ सुनाइये, आज तो आनन्दका दिन है। आग्रह किये जानेपर चारण बोला—

आगे आगे वाजता हिंद-हदरा सूर ।
अव देखो मेवाड़पत तारा हुया हजूर ॥

कहां हिन्दुआ-सूरज और कहां हिन्दके सितारे! पतनकी भी कोई सीमा है!

बाबाजी-बाबाजी कहने लगा * (यों कोई टके सेर तो दूर, टके मनको भी न पूछता)। और तीसरे बिना परिश्रमके बैठे-बिठाये पेट भर अनाज मिल जाता है। फिर हरिसे मिलकर क्या घास छीलते!

जहाँ राजस्थानी जीवन स्वातंत्र्य-मय है वहाँ उसके कविलोग भी उद्दंड और स्वतंत्र प्रकृतिके पाये जाते हैं। सची बातको स्पष्ट मुँहपर कह देनेमें वे कभी नहीं हिचकते।

किसी समय जयपुर-नरेश सवाई जयसिंहजी और जोधपुर-नरेश अभयसिंहजी साथ-साथ बैठे हुअे थे। अेक कविराज भी वहाँ बैठे थे। फरमायश हुई कि कविराजाजी दोनों नरेशोंके विषयमें कुछ सुनावें। पहले तो कविराजाजीने टालना चाहा पर जब बहुत आग्रह किया गया तो बोले—

पत-जैपुर, जोधाण-पत, दोनूं थाप-उथाप।
कूरम मारचो डीकरो, कमधज मारचो बाप॥

जयपुर-पति और जोधपुर-पति दोनों ही अेक अेकसे बढ़कर हैं। कछवाहे (जयपुर-नरेश) ने बेटेको मारा तो कबंधज (जोधपुर-नरेश) ने भाईके द्वारा बापपर हाथ साफ किया।

उक्त पितृहंता बखतसिंहजी अेकबार अपने घोड़ेको बापा-बापा कहकर बिड़दा रहे थे। अेक चारण वहींपर खड़ा था। उससे नहीं रहा गया। बोल पड़ा—

बापो मत कह, बखतसी, कांपत है केकांण।
अेकण बापो फिर कह्यां तुरग तजेलो प्राण॥

---

* पाठक ध्यान रखें कि बाबाजी केशवदासकी तरह चंद्रवदनियों और मृगलोचनियों द्वारा 'बाबा' कहे जानेसे अप्रसन्न होनेवाले व्यक्ति नहीं, वे तो इसे अपना महान सौभाग्य समझते हैं।

हे वख़तसिंह, घोड़ेको बापा करकर मत पुकार, यदि अेक वार और बापा कह दिया तो बेचारा प्राणोंसे हाथ धो बैठेगा।

बीकानेर-नरेश दलपतसिंहजीको बादशाहने कैद कर लिया। पर बीकानेरके सरदारोंने उन्हें छुड़ाने तकका प्रयत्न नहीं किया। जला हुआ चारण उन्हें किस तरह फटकारता है—

फिट वीदां, फिट कांधळां, जंगळघर लेडांह।
दळपत हुड ज्यूं पकड़ियो, भाज गई भेडांह॥

जोधपुर-महाराज विजयसिंहजीकी मराठोंके साथ लड़ाई हुई जिसमें महेसदास बड़ी वीरताके साथ काम आया। उसीकी वीरतासे महाराजकी विजय हुई। पर उसकी कदर न करके जगरामसिंह नामक अेक दूसरे सरदारको जो युद्धसे भाग आया था महाराजने आसोपका पट्टा देनेका विचार किया। कोई चारण भी वहीं खड़ा था। तुरन्त बोल उठा—

मरज्यो मती महेस ज्यूं राड़ विचे पग रोप।
झगड़ामें भागो जगो, उण पाई आसोप॥

कविके कथनका यह प्रभाव हुआ कि महाराजने अपना विचार बदल दिया।

अेक ताजा उदाहरण लीजिये। मेवाड़के महाराणा सज्जनसिंहजीको सरकारकी ओरसे G. C. S. I. की उपाधि मिली। बड़ा भारी उत्सव मनाया गया। अेक कविराज मन मलीन किये अेक ओर चुपचाप बैठे थे। पूछा गया—कविराजाजी, मन मारे कैसे बैठे हैं, कुछ सुनाइये, आज तो आनन्दका दिन है। आग्रह किये जानेपर चारण बोला—

आगे आगे बाजता हिंद-हद्दरा सूर।
अब देखो मेवाड़पत तारा हुया हजूर॥

कहाँ हिन्दुआ-सूरज और कहाँ हिन्दके सितारे! पतनकी भी कोई सीमा है!

भक्ति-काव्यमें भी वही स्वातंत्र्य-प्रियता दृगोचर होती है । भक्तोंके उपालंभ कैसे वीरोचित हैं—

> आयो महिमा आण त्हारी, रघुकुळका तिलक ।
> पोत भयो पाखाण दीखै, दसरथराव-उत ।।
> तूंबी ही तारण समथ जळ ऊपर पाखाण ।
> ताहि तारियँ, जगतरण, तइ केहा वाखाण ।।

अेक वीर-जातिका हृदय अपने महापुरुषको विनयोपालंभ भी शक्तिकी ही तरफ इशारा करके देगा कि आपकी सामर्थ्यसे पाषाण नाव बनके तैर गये पर यह जीवन-नैया न जाने आपके पास आकर क्यों पाषाण बन गई। आखिर उद्धत हृदय शक्ति-परीक्षा लेनेको तैयार हो ही तो गया कि पाषाण तैराकर कौन-सा महत्त्वपूर्ण कार्य कर डाला ? मुझे तारोगे तो समर्थ समझूँगा।

अेक दूसरे भक्तका उपालंभ लीजिये—

> पहली केस खिचाविया, पछे वधायो चीर ।।
> आयो लाज गमायकर, आखर जांत अहीर ।।

जब कभी तू आया है लाज गँवानेके बाद ही आया है । आखिर तो जातिका अहीर ही ठहरा न ! जाति-स्वभाव भी कहीं छूटता है—चाहे कोई कितना ही ऊँचा क्यों न चढ़ जाय ।

संसारका व्यावहारिक ज्ञान नीतिशास्त्रका जन्मदाता है। वे अनुभव 'सौ सयाने अेकमत' के अनुसार समान-भाववाले भी हैं और असमान भाववाले भी । किसीने नम्रता प्रशंसनीय बतलाई है तो किसीने अैंठको, और कहीं-कहीं तो अेक ही व्यक्तिने दो विरोधी बातें कह दी हैं। नीति-काव्योंका यह अनोखा रूप सभी भाषाओंमें "भिन्नरुचिर्हि लोकः" के सिद्धान्तानुसार मिलता है। राजस्थानी दूहा-साहित्यकी नीति-वाटिकाकी भी जरा सैर कर लीजिये—

डाक्टर रवींद्रनाथ ठाकुरकी निम्नलिखित उक्ति अंग्रेजी विद्वानोंकी जिह्वा पर पाई जाती है । उसको सुनाते समय वे अेक प्रकारके गर्वका अनुभव करते हैं।

Saith the false diamond, What a gem am I.
I doubt its value from that boastful cry.

इसी भावका यह प्राचीन राजस्थानी दूहा है—

वडा वडाई ना करै, वडा न बोलै बोल ।
हीरा मुखसे ना कहै, लाख महारा मोल ॥

सिंहोंके बहाने वीर मनस्वी पुरुषोंकी तेजस्विता, प्रताप और पराक्रम-के क्या ही सुन्दर चित्र इन दूहोंमें खींचे गये हैं—

जिण माण केहर वुवो, लागी वास तिणांह ।
ते खड़ ऊभा सूकसी, नह चरसी हिरणाह ॥
घाल घणा घर पातळा, आयो थहमें आप ।
सूतो नाहर नींद सुख, पोहरो दियो प्रताप ॥
हाथळ बळ निरभै हियो, सरभर नको समथ्थ ।
सींह अकेला संचरै, सींहां केहा सथ्थ ॥
सिंघां देस विदेस सम, सिंघां किसा वतन्न ।
सिंघ जका वन संचरै, वै सिंघांरा वन्न ॥

जिस मार्गसे सिंह अेकबार भी होकर निकल गया है उस मार्गके खेतों-का घास चरनेकी हिम्मत हिरनोंको स्वप्नमें भी नहीं हो सकती । वे खेत तो खड़े-खड़े ही सूखेंगे । सिंह अनेकोंको मारकर आया है पर निश्शंक सो रहा है, सोते हुअे कोई शत्रु उसपर आक्रमण कर देगा इसकी तो संभावना भी नहीं हो सकती । सिंह किसीको अपना सहायक नहीं बनाता, उसका सहायक उसका 'हाथळका बळ' है जिसके भरोसे वह निर्भय घूमता है। उसकी तेजस्विताका कारण कोई अेक स्थान नहीं है, वह तो जहां जाता है वहीं अपनी तेजस्विताके बलपर शासन करने लगता है।

सिंह और हाथी अेक ही वनमें रहते हैं फिर भी क्या कारण है कि हाथी लाखोंमें बिकता है पर सिंहका कौड़ी मूल्य भी नहीं आता—

ओक्कइ वन्न वसंतड़ा अेवड़ अंतर काय।
सिंघ कवड्डी ना लहै गयवर लख्ख विकाय॥

कवि इसका क्या ही सुन्दर उत्तर देता है—

गयवर गळे गळथ्थियो जहँ खंचै तहँ जाय।
सिंघ गळथ्थण जे सहै तो दह लाख विकाय॥

हाथीके गलेमें लोग बंधन डालकर अपनी इच्छानुसार उसे चलाते हैं। हाथी चुपचाप सहन कर लेता है। यदि सिंह भी गलेका बंधन स्वीकार कर ले तो वह अेक क्या दसों लाखमें विके। पर यह असंभव है। वह तो स्वातंत्र्यका पुजारी है। उसके गलेमें बंधन डालनेकी किसकी हिम्मत हो सकती है ?

स्वाधीनता बेचकर पाँचों सवारोंमें नाम लिखानेवालोंकी कैसी कटीली चुटकी ली गई है।

संस्कृत-साहित्यकी यह प्रसिद्ध लोकोक्ति है कि—

क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां, नोपकरणे

इसी बातका स्पष्टीकरण पतिपत्नीके संवाद द्वारा किया गया है—

कळह करचे मत कामणी घोड़ां घी देतांह।
आडा कदयक आवसी वारड़ली वहतांह॥

हे कामिनी, घोड़ोंको घी खिलाते समय तू कलह न करना। यह घी खिलाना व्यर्थ नहीं जायगा। जब कभी वार चढ़नेका मौका आयगा तो उस समय ये ही घोड़े काम देंगे।

पत्नी इस कथनका कैसा मुँहतोड़ उत्तर देती है—

आक वटूकै पवन भख, घोड़ां आगळ जाय।
हूँ तने पूछूं, सायबा, हिरण किसा घी खाय॥

हे पति, बेचारे हरिण कौन-सा घी खाते हैं, वे तो आकके पत्तों और हवा पर ही गुजारा करते हैं पर जब दौड़ते हैं तो तुम्हारे घी खानेवाले घोड़ोंके फरिश्ते भी उन्हें नहीं पा सकते।

रोज तर माल उड़ानेवाले सेठों और बाजरी पर गुजारा करनेवाले देहाती जाटोंको तुलना कर सकते हैं।

सत्संगतिकी महिमा विषयक दो-चार सुभाषित कितने भावपूर्ण हैं—

पुत्र गया परवार सज्जन साथ छुटचा जदे।
दुर्जण जणरी लार रोता फिरवै, राजिया ॥
ओछेको सँग साथ, अहमद, तजो अँगार ज्यूं।
तातो जारै हाथ, सीरो कर कारो करै ॥

पिछले दूहेके भावको रहीमने इस प्रकार प्रकट किया है—

रहिमन ओछे नरनसों तजहु बैर अरु प्रीत।
काटे चाटे स्वानके, दुहूँ भांति विपरीत ॥

सच्चे मित्रका लक्षण देखिये—

मित जओगण मितके अनत नहीं भाखंत।
कूप छांह ज्यूं आपणी हीयेमें राखंत ॥

'गुह्यं च गूहति' के भावको उदाहरण देकर कैसा स्पष्ट किया है।

आदर्श मित्रका चित्र हंस और वृक्षके संवादमें अंकित किया गया है—

आग लगी वनखंडमें, दाझ्या चंदण वंस।
हम तो दाझ्या पंख बिन तूं क्यों दाझै हंस ?

किसी जंगलमें अेक पेड़ पर अेक हंस रहता था। अेक बार जंगलमें आग लगी। पेड़ जलने लगे। जिस पेड़ पर हंस रहता था वह भी जल उठा। पर हंस वहांसे नहीं हटा। पेड़ कहने लगा—मित्र, हमारे तो पंख नहीं इससे लाचार हैं। पर तू क्यों हमारे साथ जलता है ? हंस उत्तर देता है—

पान मरोड़्या, रस पिया, बैठ्या अेकण डाळ।
तूम जळो, हम उठ चलें, जीणो कितोक काळ ?

आनन्द मनाते समय तो साथ रहे, अब विपत्तिके समय तुम्हें छोड़ दूँ ? भला, संसारमें जीवन ही कितना है कि उसके लिअे मित्रको जलता छोड़कर अपनी जान बचाऊँ ?

राजस्थानी साहित्यमें प्रेमका आदर्श हंस है।

दूसरा उदाहरण लीजिये—

डीघी पाळ तळावरी हंसा बैठया आय ।
प्रीत पुराणी कारणे चुग-चुग कांकर खाय ॥

दुनियादारीकी दो-चार बातें लीजिये । संसारमें सीधे आदमीके लिअे कोई स्थान नहीं होता । सभी उसको सताया करते हैं। राजस्थानी कहावत भी है कि सीधे ऊँटपर दो सवारियाँ बैठती हैं, दुष्ट ऊँटपर चढ़ते हुअे सभी डरते हैं। इसीलिअे अेक पत्नी अपने पतिसे कहती है—

वांका रहज्यो, वालमा, वांका आदर होय ।
वांका वनका लाकड़ा, काट न सक्कै कोय ॥

जंगलमें जो लकड़ी सीधी होती है वही काटी जाती है ।

संसारमें प्रायः उसीका आदर होता है जो ऊपरी आडंबर रखना जानता है, भीतर चाहे कुछ भी न हो । जो आडंबर नहीं रखता उसकी कोई बात भी नहीं पूछता। उसी भावको इस दूहेमें उदाहरण देकर समझाया गया है—

लछमी कर हरि लार, हरने दध दीधो जहर ।
आडंबर इधकार राखै सारा, राजिया ॥

देखो, समुद्रने आडंबरी विष्णुके पीछे तो चुपचाप लक्ष्मीको कर दिया पर सीधेसादे भोलानाथ बाबाको, जानते हैं क्या दिया, जहर, हलाहल जहर ।

धनमहिमा अनन्त कालसे गाई जाती रही है । सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयंति, न बंधु-मध्ये धनहीनजीवनम्, धनान्यर्जयध्वं धनान्यर्जयध्वं, दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी, आदि संस्कृत कवियोंकी उक्तियाँ रोजानाकी कहावतें बन गई हैं। राजस्थानीका अेक उद्दण्ड कवि अपनी शैलीमें धनमहिमाका गान करते हुअे कहता है—

दाळद घर दोळो हुवै, परणी नावै पास ।
रुपिया होवै रोकड़ा, सोरा आवै सांस ॥

रुपियां विन रागां करै, हाजर जोड़ै हाथ ।
अेक अधेली आडमें, वोळो सुण लै वात ॥

यदि पैसा पास नहीं हैं तो चाहे जितनी हाजिरी भरो, हाथ जोड़ो और मीठी-मीठी रागें गाओ, कोई वात भी नहीं सुनेगा। पर यदि आपके पास ज्यादा नहीं अेक अधेली ही है तो बहरा भी आपकी वातको सुन लेगा, दूसरोंका कहना ही क्या !

गोड़ो पूछै, गोड़िया, किसो भलेरो देस ?
संपत होय तो घर भलो, नहीं भलो परदेस ॥

'न बंधुमध्ये धनहीन-जीवनम्' की वातको संवादात्मक रूप देनेसे उसमें नवीनता आ गई है।

भाग्यके खेलका वर्णन कैसा रोचक उदाहरण देकर किया गया है—

परालबधका पावणा, देख दईका खेल ।
भम्भीखणने लंक, अर हड़ूमानने तेल ॥

कहाँ विभीषण और कहाँ हनुमानजी। पर विभीषणको मिली लंका और हनुमानजीको ? तेल और सिन्दूर।

अवसर बीत जानेपर कार्यसिद्धि हो जाय तो भी उससे क्या लाभ ? इसी भावको कवि कैसा सजीव बनाकर उपस्थित करता है—

आधो रहग्यो ऊँखळी, आधो रहग्यो छाज ।
सांगर सट्टे धण गई, (अव) मधरो-मधरो गाज ॥

मेघ आवश्यकताके समय तो वरसा नहीं, अव अवसर नाश हो जाने-पर चाहे मीठे स्वरसे गरज। इसमें अन्तर्वेदनाके सिवाय अकालका भी सजीव रूप खड़ा कर दिया है—"सांगर सट्टे धण गई"। तुलसीने इसी भावको इस प्रकार प्रकट किया है—"का वरखा जव कृषी सुखाने" और "अवसर कौड़ी जो चुके, बहुरि दिये का लाख"। पर दोनों कथनोंमें वह वात नहीं जो दूहेमें है। "सांगर सट्टे धण गई मधरो-मधरो गाज।" वेदना-को साकार वना दिया है और साथही व्यवहारिक-कथन-संसर्गने और भी सजीवता भर दी है—"आधो रहग्यो ऊँखळी,आधो रहग्यो छाज"। महाकवि

भारविने भी "किमसामयिकं वितन्वता" आदि वचनोंसे असामयिकताकी निन्दा की है पर अैसा हृदय पिघलानेवाला कथन खोजनेसे भी नहीं मिलेगा।

गृहस्थ-जीवनके सुख-दुःखोंका वर्णन नीचेके दूहोंमें किया गया है—

> साठी चावळ, भैंस-दुध, घर शिळवंती नार।
> चौथी पीठ तुरंगरी, सुरग-निसाणी च्यार॥
> नाज पुराणो, घी नयो, आग्याकारी नार।
> पंथ तुरी चढ चालणो, पुन्न-तणा फळ च्यार॥
> विद्या, अर वर नार, संपत गेह, सरीर-सुख।
> मांग्या मिलै न च्यार, पूरब पूरा दत्त विन॥

खानेको उत्तम चावल मिलें, भैंसका दूध हो, नया घी हो, घरमें संपत्ति हो, शरीर नीरोग हो, विद्या प्राप्त हो, पतिव्रता सुशीला स्त्री हो और सवारीको घोड़ा हो तो फिर क्या कहना। यदि ये प्राप्त हैं तो घाघके शब्दोंमें—उहाँछाडि इहँवै वैकूँठा।

> लूखो भोजन, भू सुवण, घर कळखारी नार।
> चौथा फाटया कापड़ा, नरक-निसाणी च्यार॥
> कालर खेत, कसूत हळ, घर कळखारी नार।
> मैला जिणरा कापड़ा, नरक-निसाणी च्यार॥
> लोक चुगल कानां लग्या, घूघू बोल्यो गेह।
> भायांसूं भेळप नहीं, विपत लिखी विध तेह॥

रूखा भोजन मिले, जमीनपर सोना पड़े, कपड़े फटे और मैले हों, खेत ऊसर हो, हल सीधा चलनेवाला न हो, चुगलखोर कानोंसे लगे रहें, घर पर उल्लू बोले, भाइयोंसे मेल न हो और सबसे बढ़कर स्त्री कर्कशा और रातदिन कलह करनेवाली हो तो गृहस्थ-जीवन नरकके जीवनसे किस कदर कम है!

जीवन-साफल्यके विषयमें राजस्थानी भावना क्या है यह इस दूहेसे मालूम होगा—

जलम अकारथ ही गयो, भड़-सिर खग्ग न भग्ग ।
तीखा तुरी न माणिया, गोरी गळे न लग्ग ॥

अेक संस्कृत कवि कहता है—

न ध्यानं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसार-विच्छित्तये ।
स्वर्ग-द्वार-कपाट-पाटन-पटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः ॥
नारी-पीन-पयोधरोरु-युगलं स्वप्नेऽपि नालिंगितम् ।
मातुः केवलमेव यौवन-वनच्छेदे कुठारा हि ते ॥

दोनों भावनाओंका अंतर स्पष्ट है। संसार में आने पर भक्तिभाव और भोग-विलास ही जीवनका उद्देश्य नहीं है। भोग-विलास भी जीवनकी अेक नैसर्गिक आवश्यकता है पर जीवन इतने ही उद्देश्यमें केन्द्रित नहीं किया जा सकता है। देशके लिअे सैनिक-वेषमें तैयार रहना भी हमारा कर्तव्य है अतः अेक वीरका हृदय भोगाकांक्षामें भी "तीखा तुरी न माणिया" की याद किये बिना नहीं रह सकता। श्लोकमें ईश्वर-ध्यान और रमणी-भोगसे वंचित जीवनको व्यर्थ जीवन बताया है पर यहाँ तो पहली असफलता "भड़ सिर खग्ग न भग्ग", दूसरी असफलता "तीखा तुरी न माणिया", और तीसरी "गोरी गळे न लग्ग" बताई गई है तथा ईश्वर-भजनका नाम तक नहीं लिया गया है। वीर राजस्थानके लिअे वीरता ही भक्ति रही है। "भड़ सिर खग्ग न भग्ग" में राजस्थानकी सारी भावनाअें केन्द्रित हैं। इन वीरोंके लिअे युद्ध ही स्वर्ग-द्वार है—

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्ग-द्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥

"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" भारतका मूलमंत्र-सा रहा है। परिवार-के शिशु, तरुण और वृद्ध सबके मुँह पर अेक ही बात मिलेगी—"जग

झूठा सारा सांइया" और शास्त्रोंमें संसारमें "पद्मपत्रमिवाम्भसा" रहनेका ही आदेश मिलेगा। राजस्थानी काव्यधारामें भी यह शान्ति मिलेगी। राजस्थानी-काव्योंमें शान्त रस भी अन्य रसोंको तरह लालित्यपूर्ण मिलेगा। अेक दो उदाहरण ही आपके सामने रखे जाते हैं—ये ही माधुर्य-परिचय देनेमें पर्याप्त होंगे—

> पान झड़ंता देखकर, हँसी ज कूंपलियांह।
> मो वीती तुझ वीतसी धीरी वापड़ियांह॥

वृक्षके पत्तोंका पतन देखकर कोंपलें हँस पड़ीं। उन्हें हँसते देखकर पत्ते कहते हैं—अरी अबोध कोंपलों, क्या हँसती हो, जरा ठहर जाओ, जो हमपर बीत रही है वही तुमपर भी शीघ्र ही बीतनेवाली है। दूसरोंकी विपत्तिमें सांसारिक जनोंको प्रसन्नता होती है। उस समय उन्हें यह ध्यान नहीं रहता कि कभी हम भी इस विपत्तिमें फँस सकते हैं।

वर्त्तमानकालीन क्षणिक वैभवमें फूलकर मनुष्य जानते हुअ भी वास्तविकताको भूल जाता है। इस बातको अन्योक्ति-रूपमें कैसे सुंदर ढंगसे समझाया है—

> गहरी लाली देखकर फूल गुमान भयाह।
> कितरा वाग जहानमें लग-लग सूख गयाह॥

समयके फेरसे मनुष्यकी अवस्थामें जो परिवर्त्तन हो जाता है उसका कैसा सजीव और करुणापूर्ण चित्र इन दूहोंमें अंकित किया गया है—

> तन भर सोनो पहरती मोत्यां मरती भार।
> अेक दिन अैसो आयग्यो घर-घररी पिणियार॥
> महिपत देता मोज घर वैठां घोड़ा घणा।
> रोटयां-केरो रोज निजरां देख्यो, नोपला॥
> भावै नहीं ज भात लागै विंजण विडावणा।
> रीरावै दिन रात रोटयां कारण, राजिया॥

जो सोने और मोतियोंके आभूषणोंसे लदी रहती थी वह आज घर-घर भटकनेवाली पनिहारी है। जिनको राजा लोग घर बैठे रीझ

वरूशते थे उनके यहाँ आज रोटियाँ तकके लाले पड़े हैं। जिनको स्वादिष्ट व्यंजन भी अच्छे नहीं लगते थे वे आज सूखो रोटियोंके लिअे आजिजी करते फिरते हैं।

संसारके अस्थायी नश्वर जीवनका रूपक कितना स्पष्ट चित्रित किया गया है—

> नदी-किनारे देखिये, सम्मन, सब संसार ।
> कइ उतरे, कइ उत्तरें, (कइ) बुगचा बांध तयार ॥

सारा संसार नदी-किनारेका यात्री-समाज है जिसमेंसे कुछ नदीका पार कर चुके हैं, कुछ कर रहे हैं और कुछ अपने-अपने बुगचे बांधकर पार जानेको तय्यार खड़े हैं—नावकी बाट जोह रहे हैं।

यौवनापगम पर वृद्धावस्थाका भयंकर रूप देखकर प्राणी पुकार उठता है—

> हा ! हा ! जोवन ! जाय मत, मैं वरजत हूँ तोय ।

जब यौवनरत्न चला गया तो फिर कोई बात भी नहीं पूछता ! उस समय सहारा देनेवाली केवल लकड़ी ही रह जाती है—

> आव, सुहागण लाकड़ी, तेरा पड़िया काज ।
> माता दी आसीसड़ी, सो दिन आया आज ॥

माता पर झुँझलाहट आती है। न जाने क्या जानकर उसने दीर्घायु की आशीष दी थी।

अेक बुढ़िया अपनी कथा कहती है—

> यहि अँगना, यहि देहरी, यही ससुरको गांव ।
> दुलहिन दुलहिन टेरता, बुढिया पड़्यो नांव ॥

यहीं आँगन है, यही देहली है, यही वह ससुरका गाँव है जिसमें मैंने नव-वधूके रूपमें प्रवेश किया था और जहाँ मैं दुलहिन कहकर पुकारी गई थी। दुलहिनके नामसे पुकारते-पुकारते आज मैं बुढ़ियाके नामसे पुकारी जाने लगी हूँ। कितनी करुण कथा है !

बचपनके साथियोंसे वियुक्त अेक भावुक हृदय उनकी स्मृतिसे ही करुणा-विह्वल हो उठता है—

आसी सावण मास, वरखा रुत आसी वळे ।
साईनांरो साथ वळे न आसी, वींझरा ॥

यह सावनका महीना फिर लौट आयगा, वर्षा भी फिर आ जायगी, पर जिन साथियोंके संग बचपनमें खेलेकूदे हैं उनका संग जीवनमें फिर नहीं आयगा ।

दूहेमें कितनी वेदना, कितनी करुणा, कितनी विह्वलता और कितनी हृदय-वेधकता भरी है इसे भुक्तभोगीके सिवाय कौन जान सकता है !

—रामनिवास शर्मा हारीत
नरोत्तमदास स्वामी

संशोधन

विशेष—यहांपर केवळ बहुत आवश्यक संशोधन ही दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त अनेक स्थानोंपर अक्षर, विरामचिह्न, मात्राअें आदि टूट गये हैं तथा ल-ळ, व-बृ-च, आदि कई-अेक वर्णोंका परस्पर विपर्यय हो गया है।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	संशोधन
१५	२	रचियता	रचयिता
१७	२०	इसवे	इसने
१९	३ (नीचेसे)	थे	ये
३१	११	मुस्य	मुख्य
३१	१४	व्रजभाके	व्रजभाषाके
३२	११	पिंगळ	डिंगळ
३४	७	लक्षणिक	लाक्षणिक
४०	३ (नीचेसे)	खलाहळ	खळाहळ
४३	१ (")	-इ-उ	अ-इ-उ
४३	२ (")	वैणा	वंण
४८	६ (")	वात राजस्थानीमें कहानीको	कहानीको राजस्थानीमें वात
५०	१०	काम-कंळदा	काम-कंदळा
५१	७	वर्णत	वर्णन
५३	१६	मूरखांरी	मूरखांरी,
५३	२ (नीचेसे)	लोकप्रियाका	लोकप्रियताका
५४	१२	श्राता	श्रोता
५५	८	कवणु	कवण
५५	१२	तंणा	तणा
५५	१५	जुञ्झ	जुज्झ
५६	१८	भंजरी	मंजरी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	संशोधन
५७	१ (नीचेसे)	दूहा १७१	दूहा नं० १ और ११७
५९	९ (")	मित्रता	मित्रताका
६०	४	तमोतम	तमोमय
६१	५ (नीचेसे)	जेकोस्लाविया	जेकोस्लावकिया
६२	अंतिम	अपा	आप
८५	१०	मधुममय	मधुमय
८८	८	दोलणो	बोलणो
८९	१२	घरमें	घरमें ।
१०८	१३	वोड़ा	घोड़ा
१०९	४	मीश्वरस्य	योर् हरस्य

मूल-ग्रंथ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	संशोधन
१२	१२	वड़ा	वडा
१४	४	दोनोंमें	दोनांमें
१७	९	रंजिया	राजिया
१८	८	जानत	लानत
३१	१८	आजा	अजा
३२	१	धर	घर
३२	१६	बूढा	वूठा
४८	११२	जाण	जाणँ
४८	१४	गंग-लल	गंग-जळ
४९	७-३ (नीचेसे)	१२४·१२५·१२६· १२७·१२८	१२५·१२६·१२७· १२८·१२९
५१	१	सण	सैण
५४	९	दुरजसा	दुरजण
५७	६	हू, रणियां	हूँ, राणियां
५९	२	मरण	मरणा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	संशोधन
५९	५	विलग्यियँ	विलगियँ
६२	५	परणती	परणंती
६२	६	लिवाय	लिखाय
६४	१	आया	आयो
६५	९	था	थो
६९	९	तुरकसँ	तुरकसूँ
७६	१०	हींद	हींदू
७८	१०	वनचर	(म्हे) वनचर
८०	५-६	वलू	वलू
८५	३	राणगदे चोहाण-यह शीर्षक छूट गया है	
८५	१३	देतां···नित	देतो···दत
८८	१	जाण	जाणै
९२	७	माणेरा	माणेरो
९२	१०	साडां	सोड़ां
९२	११	दाख	दाखै
९५	११	चाटीआला	चोटीआला
९५	१५	व के ीकानेर	वीके बीकानेर
९५	१८	फाग	फोग
९५	१९	अछ	अब
९५	३ (नीचेसे)	संन्यासी—	संन्यासी।
९७	३	सूरो	सूरो,
९८	६ (नीचेसे)	वड़ा	छोटा
१०८	१८	सिरसर	सिरपर
१०९	१३	चळणो	चलणो
११३	२ (नीचेसे)	पीछे	आगे
११४	१० (नीचेसे)	महिब	महिप
११७	५ (”)	वावड़ै	वावड़ै
११७	१ (”)	करये	करने

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	संशोधन
१२६	१५	पैर मारकर	×
१२७	८	घाट	घाट
१३०	५	गांवर	गँवार
१३०	२ (नीचेसे)	अम्नकण	अन्नकरण
१३१	१ (")	पिछले	छिछले
१३५	७	गोख	गोखे
१३८	१२	मेल	मेळो
१४०	१३	ताल	ताल
१४०	१९-२०	वरजियो-मना किया। (यह इबारत अगली पंक्तिमें होनी चाहिये)	
१४२	१३	विछावा	विछोवा
१४४	५	चुण	चुणँ
१४५	२२	जायगा	हो जायगा
१४५	२४	हो हुईं	हुईं
१४६	५	उतर	उत्तर
१४६	६	संभरया, वूटा	संभरयो, वूठो
१४७	१०	...	करी आवँ
१४८	१	विजली, वरस	विजळी, वरसँ
१४८	१६	हाडाहोडी	होडाहोडी
१४९	१३	छांटी	छांटां
१५१	१०	आप	आय
१५२	३	पसरे	पसरे पण
१५७	१२	हुइ	हुई
१६०	१९	वांया	वांया
१६०	२४-२५	हाथ ऊँचा…जा पड़ा। × (शुद्ध अर्थ प्रस्तावनाके पृष्ठ ९१ पर देखिये)	
१६६	१५	सायिबो	सायबो

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	संशोधन
१६७	६ (नीचेसे)	डुबो	हुई
१७२	१५	सरवर	तरवर
१७२	१६	हांत	हात
१७८	१६	बरी	वंरी
१७९	२ (नीचेसे)	खिजाता	खीझता
१८१	५ (नीचेसे)	लैंलड़ो	कोयल अथवा लैंलड़ी
१८३	६	उठती	उडती
१८७	१७	ठंढी	ठंढी हवा
१८९	१२	वंचो	वंचो
१९१	१३	कँवलकं	कँवलकूं
१९१	१७	हँस	हंस
१९५	३	सुवस	सुवेस
२००	१६	भवद्धाम	भगवद्धाम
२०४	२	धाम	धम्म
२१३	१२	रतनसेन	रतनसिंह
२१४	८	रस्त्रा	रखा
२१४	१८	करना करना	करना
२१६	८	उसने	उनने
२२१	१७	दरवारन	दरवार
२२४	७ (नीचेसे)	•मुसलमानोंसे	मुसलमानोंके
२३७	७	नोगोर	नागोर
२३९	१८	१७१७	१७२७
२४४	९ (नीचेसे)	साजन…व ड़ियां	सजन…कड़ियां

राजस्थानरा दूहा

भाग पहलड़ो

(१) विनय

१—भगवानकी स्तुति

सिल ऊधरती सारि, नाठो झीवर नाव लै।
महिमा चलण मुरारि, देखे, दसरथराव-उत ॥ १ ॥
फिरि फूटियै कपाल, श्रीकम, तूं विमुखां-तणा।
घड़ी-घड़ी घड़ियाल, बाजै, वसदेराव-उत ॥ २ ॥
धायो, धावंतांह गरुड़ै ही माठो गणै।
ग्रह ऊग्राहण ग्राह, वारण वसदेराव-उत ॥ ३ ॥

१—भगवानकी स्तुति

१—हे राजा दशरथके पुत्र भगवान् श्रीराम, आपके चरणोंकी महिमा देखकर और शिला (शिला बनी हुई अहल्या) के उद्धारकी बात याद करके केवट नाव लेकर भाग खड़ा हुआ (यह सोचकर कि चरणोंको छूकर जब शिला स्त्री बन गई तो काठकी बनी नावके लिए ऐसा होना क्या असंभव है, और यदि मेरी नाव स्त्री बन गई तो फिर मैं अपना और अपने परिवारका पेट कैसे पालूँगा।)

२—हे राजा वसुदेवके पुत्र भगवान् त्रिविक्रम, जो तुमसे विमुख हैं उनका माथा अवश्य ही फूटने योग्य है जैसे घड़ी-घड़ीके बाद घड़ियालका घंटा कूटा जाता है (बजाया जाता है)।

३—हे राजा वसुदेवके पुत्र, ग्राहसे ग्रस्त हाथीकी पुकार सुनकर उसे बचानेके

दीनानाथ दयाल, तूँ जोइ आधव आपरो।
कांइ अम्ह समो क्रपाल देखै, दसरथराव-उत ? ॥ ४ ॥
आयो महिमा आण त्हारी, रघुकुलका तिलक।
पोत भयो पाखाण दीखै, दसरथराव-उत ॥ ५ ॥
तूँबी ही तारण समथ जल ऊपर पाखाण।
ताहि तारियै, जगतरण, तइ केहा वाखाण ? ॥ ६ ॥
जद मैं थाँने जाणिया, राम, गरीबनिवाज।
मणि-माणक मूँघा किया, सूँघा जल-तृण-नाज ॥ ७ ॥

लिए तुम दौड़े और दौड़ते समय शीघ्रगामी गरुड़को भी तुमने मंदगामी समझा।

४—हे राजा दशरथके पुत्र, हे दीनोंके नाथ, हे दयालु, तुम अपने प्रभुत्वकी ओर देखो। हे कृपालु, हमारी ओर क्या देखते हो ? (अपनी महानताका ध्यान करके हमारा उद्धार कर दो; हमारे दुर्गुणोंकी ओर मत देखो क्योंकि ऐसा करनेसे हमारा उद्धार असंभव हो जायगा)।

५—हे रघुकुलके तिलक और राजा दशरथके पुत्र श्रीराम, तुम्हारी महिमासे पत्थर भी नावकी भांति तैर गये थे, इसी तुम्हारी महिमाका ध्यान करके मैं तुम्हारे पास आया था, पर मुझे जान पड़ता है कि पत्थरका नाव बनना तो दूर रहा, मेरी नाव ही तुम्हारे पास आनेपर पत्थर बन गई है (प्रेमपूर्ण उपालंभ)।

६—हे श्रीराम, तुमने जलपर पत्थर तैरा दिये तो यह कौन बड़ा काम किया ? तूँबी भी जलपर पत्थर तैरानेकी सामर्थ्य रखती है। हे जगतके तारनेवाले यदि उन्हें तैरा भी दिया तो क्या बड़ाई ? (बड़ाई तो तब है जब मुझ जैसे पापीको भी तारो)।

७—हे राम, तब मैंने तुमको दीनोंका पालन करनेवाला समझा, जब मैंने देखा कि तुमने मणि-माणिक आदि धनवानोंके कामकी चीजोंको महँगा बनाया है और दीनोंके कामकी आवश्यक वस्तुओं जैसे जल, अनाज, घास आदिको सुलभ और सस्ता किया है।

२—गंगाजीकी स्तुति

काया लाग्यो काट सिकलीगर सुधरै नहीं ।
निरमल होय निराट तव भेट्याँ, भागीरथी ॥ १ ॥

ताहरउ अद्‌भुत ताप, मात, सँसारे मानियउ ।
पाणी-मुँहड़े पाप जो तूँ जाळै, जान्हवी ॥ २ ॥

कीया पाप जकेह जनम-जनममें जूजुआ ।
तैं भाँजिया तकेह मेळा ही, भागीरथी ॥ ३ ॥

पुळिये मग पुळियाह, दरस हुवाँ अदरस हुवा ।
जळ पैठाँ जळियाह मंदा क्रम, मंदाकिनी ॥ ४ ॥

जव-तिल जितरो जाय हेक कणूको हाडरो ।
मुवाँ पछै ही, माय, मेळै गत, भागीरथी ॥ ५ ॥

गंगा-जळ गुटकीह निरणे ही लीधी नहीं ।
भव-भवमें भटकीह भूत हुवा, भागीरथी ॥ ६ ॥

२—गंगाजीकी स्तुति

१—हे भागीरथी, शरीरमें लगा हुआ मायाका जंग सिकलीगरसे साफ नहीं हो सकता परन्तु तुमसे भेंटनेपर वह जंग बिलकुल साफ हो जाता है ।

२—हे माता जाह्नवी, तेरे अद्‌भुत प्रतापको समस्त संसारने मान लिया है क्योंकि तू केवल पानीके द्वारा पापोंको जलाती है (पानीसे जलाना यह एक अद्‌भुत बात है) ।

३—हे भागीरथी, मैंने जो पाप अलग-अलग जन्मोंमें अलग-अलग किये थे उन सबको तूने एक ही साथ नष्ट कर दिया ।

४—हे मंदाकिनी, जब मैं तुम्हारी ओर चला तो मेरे पाप भी अपने रास्ते लगे, जब तुम्हारा दर्शन हुआ तो वे अदृश्य हो गये, और जब मैं तुम्हारे जलमें घुसा तो वे जल गये ।

५—हे माता भागीरथी, जौ या तिल जितना एक हड्डीका टुकड़ा भी यदि तुम्हारे पानी में चला जाय तो वह, मरनेके बाद भी, सद्‌गति दे देता है ।

६—हे भागीरथी, गंगा-जलका एक घूँट प्रातःकाल भोजनके पूर्व जिन्होंने नहीं लिया वे जन्म-जन्ममें भटककर अन्तमें भूत होते हैं ।

जिण थारे तट जाय, उदर भरे पीथो उदक ।
मिनख जिके फिर, माय, आया नह जननी-उदर ॥ ७ ॥
नारायण—पग— नीर मानूं किम, मंदायणी ।
सांपड़ जेथ सरीर हर कोइ नारायण हुवै ॥ ८ ॥
दूधां वरणां पाणियां, मंजण करसी देह ।
वांका उण दिन वरससी, दूधां--हंदा मेह ॥ ९ ॥ १६

३—करणीजीकी स्तुति

वड़कै डाढ वराह, फड़कै पीठ कमट्ठरी ।
धड़कै नाग धराह, बाघ चढै जद वीसहथ ॥ १ ॥
करनल किणियाणीह, धणियाणी जंगल-धरा ।
आलस मत आणीह, वीसहथी, लाजै विड़द ॥ २ ॥
आई विखमी, वार जे ऊपर करसी नहीं ।
सरणाई साधार कुण जग कहसी, करनला ? ३ ॥

७—हे माता, जिन मनुष्योंने तुम्हारे तटपर आकर पेट भरकर तुम्हारा पानी पी लिया वे मनुष्य फिर माताके उदरमें नहीं आये (उनका संसारमें फिर जन्म नहीं हुआ—वे आवागमनके दुःखसे छूट गये)।

८—हे मंदाकिनी, मैं तुम्हें नारायणके चरणोंका जल कैसे मान लूँ, जहाँ शरीरसे स्नान करके हरकोई मनुष्य नारायण हो जाता है ।

९—बांकीदास कहते हैं कि जिस दिन गंगाके दुग्धवर्ण जलमें शरीर स्नान करेगा उस दिन मेरे यहाँ दूधका मेह बरसेगा।

३—करणीजीकी स्तुति

१—जब बीस हाथोंवाली देवी बाघपर चढ़ती है तो वाराहकी दाढ़ें तड़क जाती हैं, कच्छपकी पीठ कड़कने लगती है और शेषनाग तथा पृथ्वी डगमगाने लगते हैं।

२—हे जांगल देशकी स्वामिनी देवी करणी, आलस्य मत लाना, नहीं तो हे बीस भुजाओंवाली, तेरा विरद लज्जित होगा ।

३—हे माता करणी, संकट की अवस्था आ गई; उसपर यदि तू सहायता नहीं करेगी तो तेरी शरणको संसारमें कौन साधार (आधारवाली) कहेगा ?

१—मनस्वी पुरुष

अेकइ वन्न वसंतड़ा, अेवड़ अंतर काय ।
सिंघ कवड्डी ना लहै, गयवर लाख विकाय ॥ १ ॥
गयवर गळे गळथ्थियो, जहँ खंचै तहँ जाय ।
सिंघ गळथ्थण जे सहै, तो दह लाख विकाय ॥ २ ॥
जिण मारग केहर वुवो, लागी वास तिणांह ।
ते खड़ ऊभा सूकसी, नह चरसी हिरणाह ॥ ३ ॥
कंथा, करक न छोडियै, हिरण किसा घी खाय ।
आक वटूकै, पवन भख, घोड़ां आगळ जाय ॥ ४ ॥
भूँडण तो भूँडा जिणै, हिरणी जिणै सुगठ्ठ ।
पान खड़कै उठ चलै, थागड़ चालै थठ्ठ ॥ ५ ॥

१—मनस्वी पुरुष

१—सिंह और हाथी अेक ही वनके रहनेवाले हैं, फिर इतना न्तर क्यों ? सिंहका तो एक कौड़ी भी मोल नहीं होता और हाथी लाखोंमें बकता है ?

२—हाथीके गलेमें बंधन पड़ा रहता है जिससे वह जिधर खींचा ाय उधर ही चला जाता है। यदि सिंह अैसे गलेके बंधनको सह सके ो वह अेक क्या दस लाखमें बिके !

३—जिस मार्गसे सिंह अेक बार भी गया है और जिस घासको सकी गन्ध लग गई है, उस मार्गवाले और उस घासवाले खेत खड़े-खड़े ही सूखेंगे; हिरन उन्हें नहीं चरेंगे (उनको तो उधर देखनेकी भी हिम्मत नहीं होगी।

४—हे कंत, अपनी कड़क मत छोड़ो। हरिनोंको देखो, वे कौन घी खाते हैं, आक और वायु ही उनका भोजन है। पर फिर भी जब दौड़ते हैं तो घी खानेवाले घोड़ोंसे भी आगे निकल जाते हैं।

५—भूँडण—शूकरी। भूँडा—कुरूप। जिणै—जनती है। सुगठ्ठ—सुरूप। खड़कै—खड़कनेपर ही। थागड़ थठ्ठ—शानके साथ निर्भीक होकर धीरे-धीरे चलते हैं।

हूँ जाण्यो, धोळो मुयो, खाली हुयग्यो वग्ग।
वाड़े उणहिज वाछड़ू औरूँ तांडण लग्ग॥६॥

सिर नह सींगो संचरी, पगां न टेठर बंध।
दूध पिवंते वाछड़ू दियो महाभड़ कंध॥७॥

हाथळ-वळ निरभै हियो, सरभर नको समत्थ।
सींह अकेला संचरै, सींहां केहा सत्थ॥८॥

कारण कटक न कीध, सखरा चाहीजे सुपह।
लंक विकट गढ लीध रीछ-वांनरां, राजिया॥९॥

लावा-तीतर लार कर हाका भागै किता।
सिंघां-तणी सिकार कोइक आणै, किसनिया॥१०॥

२—महापुरुष

✓ वडा वडाई ना करै, वड़ा न बोलै बोल।
हीरा मुखसें ना कहै, लाख महारा मोल॥१॥

तन चोखा, मन ऊजळा, भीतर राखै भाव।
किणका बुरा न चींतवै, ताकूँ रंग चढाव॥२॥

६—धोळो—उत्तम जातिका बैल। वग्ग—वर्ग, वाड़ा। उणहिज इ० उसीका बछड़ा। औरूँ—और भी (अधिक। तांडण—दहाड़ने।

७—नह—नहीं। सींगों—सींग। ठेठरबन्ध—पैरकी ठरी या हड्डी बँधना। महाभड़—बड़ा योद्धा।

८—हाथळ—हथेली। सरभर इ०—बराबरी करनेमें कोई समर्थ न संचरै—घूमते हैं। केहा—कैसे। सींहां—सिंहोंके।

९—कारण इ०—सेना (विजयका) कारण नहीं होती, मालिक वीर चाहिए। देखो लंका जैसे दुर्गम गढ़को साधारण रीछ-बन्दरोंने फतह कर लिय

१०—हाका—शोर। किता—कितने ही, बहुत-से। तणी—की।

२—महापुरुष

१—महारा—मेरा।

२—भीतर—हृदयमें। भाव—सद्भाव। किणका इ०—किसीका नहीं सोचते। रंग चढाव—धन्य-धन्य कहो।

धनकूँ ऊँडा नह धरै, भीतर राखै भाव ।
भागी फौजां भेड़वै, तिणकूँ रंग चढाव ॥ ३ ॥
रहणा इकरंगाह, कहणा नहि कूड़ा कथन ।
चित उज्ज्वल चंगाह, भला ज कोइक, भैरिया ॥ ४ ॥
काछ दढा, कर वरसणा, मन चंगा, मुख मिट्ठ ।
रण-सूरा, जग वल्लभा, सो मैं विरला दिट्ठ ॥ ५ ॥
कतरण, सीवण, फेवटण, लै दरजी चित चोर ।
रजधानी तंबू रचै, ते नरनायक ओर ॥ ६ ॥
पूरा सहजै गुण करै, गुण ना आवै छेह ।
सायर पोखै, सर भरै, दाण न मांगै मेह ॥ ७ ॥
हाथी हींडत देख, कूकर लव-लव कर मरै ।
वडपण-तणे विवेक, क्रोध न आणै, किसनिया ॥ ८ ॥ १८ ॥

३—सज्जन

तरवर, सरवर, संतजन, चोथो वरसण मेह ।
परमारथरे कारणे च्यारां धारो देह ॥ १ ॥

३—ऊँडा—गहरा (गाड़कर)। भागी इ०—भागी हुई सेनाओंको फिर लेके लिये तैयार करे।

४—इकरंगाह—अेकरस । कूड़ा—झूठ । भला इ०—अैसे भले पुरुष कोई काध ही होते हैं ।

५—काछ दढा—लंगोटके पक्के, पक्के ब्रह्मचारी । कर वरसणा—दानी । लभा—प्यारे । विरला—बिरले ।

७—पूरा—पूरे मनुष्य । छेह—अन्त । गुण—उपकार । सायर—सागर । ण—कर । मेह—मेघ ।

८—हींडत—झूमता हुआ । लव-लव—कुत्तेकी आवाज़ । वडपण-तणे—ड़प्पनके । आणै—हृदयमें लाता है । किसनिया—कविका नाम ।

३—सज्जन

१ वरसण—बरसने वाला । च्यारां—चारोंने ।

तरवर कदे न फल़ भखै, नदी न संचै नीर ।
परमारथरे कारणे साधाँ धरयो सरीर ॥ २ ॥
तखत विराज्या जानरा', संत विराज्या खाट ।
केवल़कूवो यूँ कदै, दोनोंमें कुण घाट ॥ ३ ॥
दरसण जाताँ साधके जेता दीजै पाँव ।
पैंड-पैंड असमेद जिग फल़ै स मनको भाव ॥ ४ ॥
सज्जण थोड़ा हंस ज्यूँ विरल़ा कोइ दीसंत ।
दुरजण काल़ा नाग ज्यूँ महियल घणा भमंत ॥ ५ ॥
निज गुण ढांकण, नेक नित, परगुण गिण गावंत ।
अैसा जगमें सुजण जण विरल़ा ही पावंत ॥ ६ ॥
दुरजणरी किरपा बुरी, भली सुजणरी त्रास ।
जद सूरज गरमी करै जद वरसणरी आस ॥ ७ ॥२४॥

४—सच्चा मित्र

साँचो मित्र सचेत, कह्यो, काम न करै किसो ।
हर अरजनरे हेत रथ कर हाँक्यो, राजिया ॥१॥

---

२ भखै—खाते हैं । संचै—जमा रखती हैं । साधाँ—साधुओंने ।

३ तखत—सिंहासनपर । जानराय—भगवान् । केवलकूवो—कवि नाम । दोनोंमें कु०—दोनोंमें कौन घटकर है ।

४ जाताँ—जाते हुए । पैंड-पैंड—पग-पगपर । असमेद जिग—अश्व यज्ञ । फळै—फल पाता है ।

५ महियल—पृथ्वीपर । घणा—बहुत । भमंत—घूमते हैं ।

६ ढांकण—ढकनेवाले, छिपानेवाले । गिण—गिन-गिनकरके । अैसा अैसे । सुजण—सज्जन । पावंत—मिलते हैं ।

७ जद—जब । जद—तब ।

४—सच्चा मित्र

सगा सनेही ओर नर सुखमें मिलै अनेक ।
विपत पड़्यां दुख वांट लै, सो लाखनमें अेक ॥ २ ॥
मित ज ओगण मितका अनत नहीं भाखंत ।
कूप छाँह ज्यूँ आंपणो हीयेमें राखंत ॥ ३ ॥२८॥

५—संगतिका फल

जैसी संगत बैठिये तैसी इज्जत थाय ।
सिरपर मखमल सेहरे पनही मखमल पांय ॥ १ ॥२९॥

६—सत्संगति

संगत कीजे साधकी, हठ कर कीजे मोह ।
करम कटै, कालू कहै, तिरै काठ सँग लोह ॥ १ ॥
मलयागिर मँझार हर कोइ तरु चंदण हुवै ।
संगत लहै सुधार, रूँखाने ही, राजिया ॥ २ ॥ ३१ ॥

---

२ ओर—और, दूसरे। मिलै—मिलते हैं। पड़्यां—पड़नेपर।

३ मित—मित्र। ज—अवधारणसूचक अव्यय। अनत—अन्यत्र। कूप इ०—जैसे कुँआ अपनी छायाको अपने ही भीतर रखता है वैसे ही सच्चे मित्र मित्रके अवगुणोंको हृदयमें ही रखते हैं, किसीके सामने प्रकाशित नहीं करते।

५—संगतिका फल

१—थाय—होती है। सेहरे इ०—मुकुटमें मखमल लगा होता है तो सिरपर रहता है, जूतीमें लगा होता है तो पैरोंमें।

६—सत्संगति

१—मोह—प्रेम। करम—पूर्व-संचित कर्म। कालू—कविका नाम। तिरै—तर जाता है।

२—मलयागिर—मलयाचल, जहाँ चंदन बहुत होता है। रूँखाने ही—पेड़ोंको भी।

तरवर कदे न फल भखै, नदी न संचै नीर ।
परमारथरे कारणे साधाँ धर्यो सरीर ॥ २ ॥
तखत विराज्या जानरा', संत विराज्या खाट ।
केवलकूबो यूँ कहै, दोनोंमें कुण घाट ॥ ३ ॥
दरसण जाताँ साधके जेता दीजै पाँव ।
पैंड-पैंड असमेद जिग फलै स मनको भाव ॥ ४ ॥
सज्जण थोड़ा हंस ज्यूँ विरला कोइ दीसंत ।
दुरजण काला नाग ज्यूँ महियल घणा भमंत ॥ ५ ॥
निज गुण ढांकण,नेक नित, परगुण गिण गावंत ।
ऐसा जगमें सुजण जण विरला ही पावंत ॥ ६ ॥
दुरजणरी किरपा बुरी, भली सुजणरी त्रास ।
जद सूरज गरमी करै जद बरसणरी आस ॥ ७ ॥२५॥

४—सच्चा मित्र

साँचो मित्र सचेल, कहो,काम न करै किसो ।
हर अरजनरे हेत रथ कर हाँक्यो, राजिया ॥१॥

---

२ भखै—खाते हैं । सचै—जमा रखती हैं । साधाँ—साधुओंने ।

३ तखत—सिंहासनपर । जानराय—भगवान् । केवलकूबो—कवि नाम । दोनोंमें इ०—दोनोंमें कौन घटकर है ।

४ जाताँ—जाते हुए । पैंड-पैंड—पग-पगपर । असमेद जिग—अश्वमेध यज्ञ । फलै—फल पाता है ।

५ महियल—पृथ्वीपर । घणा—बहुत । भमंत—घूमते हैं ।

६ ढांकण—ढकनेवाले, छिपानेवाले । गिण—गिन-गिनकरके । ऐसा—ऐसे । सुजण—सज्जन । पावंत—मिलते हैं ।

७ जद—जब । जद—तब ।

४—सच्चा मित्र

सगा सनेही ओर नर सुखमें मिलै अनेक ।
विपत पड्यां दुख वांट लै, सो लाखनमें अेक ॥ २ ॥
मित ज ओगण मितका अनत नहीं भाखंत ।
कूप छांह ज्यूँ आपणी हीयेमें राखंत ॥ ३ ॥२८॥

५—संगतिका फल

जैसी संगत बैठिये तैसी इज्जत थाय ।
सिरपर मखमल सेहरे पनही मखमल पांय ॥ १ ॥२६॥

६—सत्संगति

संगत कीजे साधकी, हठ कर कीजे मोह ।
करम कटै, कालू कहै, तिरै काठ सँग लोह ॥ १ ॥
मलयागिर मँझार हर कोइ तरु चंदण हुवै ।
संगत लहै सुधार, रूँखाने ही, राजिया ॥ २ ॥ ३१ ॥

---

२ ओर—और, दूसरे। मिलै—मिलते हैं। पड्यां—पड़नेपर।

३ मित—मित्र। ज—अवधारणसूचक अव्यय। अनत—अन्यत्र। कूप इ०—जैसे कुँआ अपनी छायाको अपने ही भीतर रखता है वैसे ही सच्चे मित्र मित्रके अवगुणोंको हृदयमें ही रखते हैं, किसीके सामने प्रकाशित नहीं करते।

५—संगतिका फल

१—थाय—होती है। सेहरे इ०—मुकुटमें मखमल लगा होता है तो सिरपर रहता है, जूतीमें लगा होता है तो पैरोंमें।

६—सत्संगति

१—मोह—प्रेम। करम—पूर्व-संचित कर्म। कालू—कविका नाम। तिरै—तर जाता है।

२—मलयागिर—मलयाचल, जहाँ चंदन बहुत होता है। रूँखाने ही—पेड़ोंको भी।

७—कुसंगति

ओछेको सँग-साथ, अहमद, तजो अँगार ज्यूँ ।
तातो जाळै हाथ सीरो कर काळो करै ॥ १ ॥
पुत्र गया परवार, सज्जन-साथ छुट्या जदै ।
दुरजण-जणरी लार रोता फिरवै, राजिया ॥ २ ॥
कहो, नफो किण काढियो लुच्चो पले लगाय ?
हींग-तणे सँग हालियो म्रगमद मजो गमाय ॥ ३ ॥
सठ-सभामें वैठतां पत पंडितरी जाय ।
अेकण वाड़े क्रिम वड़ै रोम्फ, गधेड़ो, गाय ॥ ४ ॥३५॥

८—दुर्जन

मुख ऊपर मीठास, घट मांही खोटा घड़ै ।
इसड़ांसूँ इखलास राखीजै नहिं, राजिया ॥ १ ॥
मिळियां अत मनवार, वीछड़ियां भाखै वुरी ।
लानत दे ज्यां लार रजी उडावो, राजिया ॥ २ ॥

७—कुसंगति

१—सीरो—ठंढा, बुझा हुआ ।

२—पुत्र इ०—पुण्य नष्ट हो गये । जदै—जब । लार—पीछे । फिरवै—फिरते हैं ।

३—नफो—लाभ । म्रगमद—कस्तूरी, हींगके साथ रहनेसे कस्तूरीकी सुगंध दब जाती है ।

४—पत—प्रतिष्ठा । पंडितरी—पंडितकी । अेकण—अेक ही । वड़ै—भीतर जावें, रहें । रोम्फ—गायकी किस्मका अेक जानवर ।

८—दुर्जन

१—घट इ०—हृदयमें बुरी बातें सोचते रहें । इसड़ांसूँ इ०—अैसोंसे मित्रता का संबंध नहीं रखना चाहिए ।

२—मिळियां—मिलनेपर । अत मनवार—बहुत-सी मनुहार करते हैं । ज्यां लार—उनके पीछे । रजी इ०—धूल उछालो ।

मतलबरा पाजी कर जोड़्यां विनती करै ।
विन मतलब राजी बोलै नहिं वै, बाघजी ॥ ३ ॥
रजब, पारस परसकै मिटगो लोह विकार ।
तीन बात तो ना मिटी बांक, धार अरु मार ॥४॥ ३९ ॥

९—कृतघ्न

कीधोड़ो उपगार नर कृतघण मानै नहीं ।
लानतियां ज्यां लार रजी उडावो, राजिया ॥ १ ॥
खोदा, अन-जल खाय खल तिणरी खोटी करै ।
जड़ां-मूलसूं जाय राम न राखै, रजिया ॥ २ ॥
उणही ठाम अरोग भाजणरी मनमें भणै ।
आ तो बात अजोग राम न भावै, राजिया ॥ ३ ॥४२॥

१०—कुमित्र

गिरसूं पड़ियै धाय, जाय समंदां डूबियै ।
मरियै महुरो खाय, मूरख मित्र न कीजियै ॥ १ ॥

३—कर इ०—हाथ जोड़े हुए ।

४—लोह-लोहा, हथियार । बांक—टेढ़ापन । मार—मारनेकी शक्ति ।

९—कृतघ्न

१—कीधोड़ो—किया हुआ ।

२—खोदा—अे खुदा । अन-जल—अन्न-जल । तिणरी—उसीको । खोटी—बुराई । राखै—रक्षा करता है, बचाता है ।

३—उणही—उसी । ठाम—पात्र, बर्तन । अरोग—भोजन करके । भाजणरी—तोड़ डालनेकी । आ—यह । बात—बात । अजोग—अनुचित । भावै—अच्छी लगती है ।

१०—कुमित्र

१— गिरसूं—पहाड़से । समंदां—समुद्रोंमें । महुरो—जहर ।

संपतमें संसार, हर-कोई हेतू हुवै ।
विपत पड़्यांरी वार नैण न निरखै, नाथिया ॥ २ ॥
सुधरीमें सो वार मदत करै मन-मोडिया ।
विगड़ीमें इक वार कोइ न रैवै, किसनिया ॥ ३ ॥
पल-पलमें करै प्यार, पल-पलमें पलटै परा ।
अै मुतलबरा यार, रहजे अलगो, राजिया ॥ ४ ॥
पल-पलमें करै प्यार, पल-पलमें पलटै परा ।
जानत दे ज्यां लार रजी उडावो, राजिया ॥ ५ ॥
सुखमें प्रीत सवाय दुखमें मुख टाऴा दिवै ।
जे के कहसी जाय राम-कचेड़ी, राजिया ॥ ६ ॥४८॥

११—ओछे पुरुष

मिणधर विख अणमाव, मोटा नह धारै मगज ।
वीछू पूँछ वणाव राखै सिरपर, राजिया ॥ १ ॥
गहवरियो गजराज मद छकियो चालै मते ।
कूकरिया बेकाज रोय भुसै क्यूँ, राजिया ॥ २ ॥

२—हेतू—हितकारी, प्रेमी, मित्र । वार—समय ।

३—मदत—सहायता । रैवै—(साथ) रहता है ।

४—पलटै परा—बदल जाते हैं । मुतलब—स्वार्थ । अळगो—दूर ।

६—सवाय—सवाई, अधिक । मुख इ०—मुख छिपा लेते हैं । जे इ०—ये ईश्वर-की कचहरीमें जाकर क्या जवाब देंगे ।

११—ओछे पुरुष

१—मिणधर-मणिधर, सांप । विख—जहर । अणमाव—अनमाप, बहुत । नह—नहीं । मिणधर इ०—सांपोंके बहुत विष होता है पर तो भी वे उसे मस्तक पर नहीं रखते, उधर तुच्छ विच्छू थोड़े-से विषवाली पूँछको सँवारकर सिरपर रखे रहता है ।

२—गहवरियो—मस्त, गंभीर । मतै—स्वेच्छापूर्वक । चालै—चलता है । बेकाज—व्यर्थ । भुसै—भोंकते हैं ।

मद विद्या धन मान ओछा से उकलै अवस।
आधणरे उनमान रहै क विरला, राजिया ॥ ३ ॥५१॥

१२—अविवेकी पुरुष

कुन्दण पीतल कूँत अेक रीत कर आदरै।
है उण ठाकुर-हूँत भाखर सखरा, भैंरिया ॥ १ ॥
खल गुड़ अणकूँतां अेक भाव कर आदरै।
ते नगरी-हूँतां रोही आछी, राजिया ॥ २ ॥
गुण-ओगण जिण गाँव सुणै न कोई सांभलै।
मच्छ गलागल माँय रहणो मुसकल, राजिया ॥ ३ ॥
सुध-हीणा सिरदार, बुध-हीणा राखै मिनख।
अस आँधो असवार राम रुखाळो, राजिया ॥ ४ ॥
मतहीणा सिरदार मतहीणा राखै मिनख।
अँध घोड़ी असवार राम रुखाळो, राजिया ॥ ५ ॥
नान्हा मिनख नजीक, उमरावाँ आदर नहीं।
ठाकर जिणने ठीक रणमें पड़सी, राजिया ॥ ६ ॥५७॥

३—से—वे। उकलै—उबल पड़ते हैं। आधण इ०—अदहन के अनुसार।

१२—अविवेकी पुरुष

१—कुन्दण इ०—सोने और पीतल (के मोल) को आंककर जो दोनोंकी अेकही-सी कदर करता है उस ठाकुरसे पत्थर ही अच्छे।

२—खल-गुल—खली और गुड़। अणकूंतां—विना जांचे हुअे ही। हूँतां—अपेक्षा। रोही—जंगल।

३—सुणै, सांभलै—सुनता है। मच्छ गलागल—जहाँ बलवान दुर्बलोंको सताते हैं। रहणो—निवास। मुसकल—मुश्किल।

४—हीणा—हीन। मिनख—मनुष्य, सेवक। अस०—अंधे अंधे असवार-का रक्षक राम ही है।

६—नान्हा-छोटे। नजीक-पास (रहते हैं)। उमरावाँ-उमरावोंका, सच्चे सरदारों का। जिणने-उसको। ठीक पड़सी-पता लगेगा, मालूम होगा।

१३—मूर्ख

पाणीमें पाखाण भीजै पर छीजै नहीं।
मूरख आगे ग्यान रीझै पर बूझै नहीं ॥ १ ॥
मूरखकूँ पोथी दिवी वाँचणकूँ गुणगाथ।
जैसें निरमल आरसी दी आँधेके हाथ ॥ २ ॥
मूरखने समझावतां ग्यान गाँठरो जाय।
कोयलो होय न ऊजलो, सो मण सावण लाय ॥ ३ ॥
काग पढायो पींजरे, पढग्यो च्यारूं वेद।
समझायो समझै नहीं, रह्यो ढेढ-रो-ढेढ ॥ ४ ॥
हिये मूढ जो होय, की संगत ज्यांरो करै ?
काले ऊपर कोय रंग न लागै, राजिया ॥ ५ ॥
आवै वुसत अनेक हद नाणो गाँठे हुयाँ।
अकल न आवै अेक क्रोड़ रुपैयाँ, किसनिया॥ ६ ॥
वडा भया तो क्या भया, जे वुध उपजी नाँय।
सुसे सिंघ, कालू कहै, डारया कूवै माँय ॥ ७ ॥६४॥

१३—मूर्ख

१—पाणी—पानी। छीजै—घटता है। बूझै—समझता है।

२—दिवी—दी। आरसी—दर्पण।

३—गांठको—अपना। सो मण इ०—सौ मन साबुन लगानेसे भी।

४—ढेढ—एक जाति जो प्रायः भोलेपन अेवं मूर्खता के लिअे प्रसिद्ध है, अतः मूर्ख।

५—की—क्या। ज्यांरो—उसका।

६—वुसत—वस्तुअँ। नाणो—पैसा, धन। गांठे हुयाँ—पासमें होनेसे। क्रोड़—करोड़।

७—वुध—बुद्धि। ससै—खरगोशने सिंहको भी कुअँमें डाल दिया (हितोपदेश की प्रसिद्ध कथाकी ओर संकेत)।

१४—उदारता

कहा लंकपत ले गयो, करण गयो कहा खोय ?
जस जीवण अपजस मरण कर देखो सब कोय ॥ १ ॥
नाम रहंदा, ठाकरां, नाणा नहीं रहंद ।
कीरत-हंदा कोटड़ा पाड्‌या नांय पड़ंद ॥ २ ॥
दीया वुसत्र अनूप है, दिया करो सब कोय ।
घरमें धरा न पाइये, जे कर दिया न होय ॥ ३ ॥६७॥

१५—कंजूस

बावन आखरमें वडो नन्नो आखर सार ।
दद्दो तो जाणूँ नहीं, लल्ले आखर प्यार ॥ १ ॥
सूमण पूछै सूमसूँ, काहे मुख्ख मलीन ।
का गांठीसें गिर पड्‌या, का काहूको दीन ॥ २ ॥
ना गांठीसें गिर पड्‌या, ना काहूको दीन ।
देवत देख्या औरकूँ, ज्यांसूँ मुख्ख मलीन ॥ ३ ॥

१४—उदारता

१—लंकपत—रावण । करण—प्रसिद्ध दानी कर्ण ।

२—रहंदा—रहता है । ठाकरां—हे ठाकुर साहब । हंदा—के । कोटड़ा—किले । पाड्‌या इ०—गिरानेसे भी नहीं गिरते ।

३—दीया—दिया हुआ, दान । दिया—दान, दीपक ।

१५—कंजूस

१—नन्नो—नकार, याचकको इनकार कर देना । दद्दो—दकार, देना । लल्लो—लकार, लेना ।

२—सूमण—कंजूसकी स्त्री ।

३—देवत इ०—दूसरेको दान करते देखा । ज्यांसूँ—उससे ।

कीड़ी पण पावै नहीं अ-दतारां घर आय।
ओर घरांसूँ आणियो, जिको गमाड़ै जाय ॥ ४ ॥
'दियो' सबद सुणतां दुसह तन-मन लागै लाय।
सूम दियो न करै सदन परब दियाळी पाय ॥ ५ ॥७२॥

१६—परोपकार

घर-कारज सीलावणा, पर-कारज समरथ्थ।
ज्यांने राखै सांइया आडा दे-दे हथ्थ ॥ १ ॥
मर ज्याऊँ, मांगूँ नहीं, निज स्वारथरै काज।
परमारथरै कारणे, मोय न आवै लाज ॥ २ ॥
पंछिनके पीयेनते, कहा घटत है नीर?
खरची लछमी ना घटै, सनमुख जो रुघवीर ॥ ३ ॥७५॥

१७—मधुर भाषण

उपजावै अनुराग, कोयल मन हरखित करै।
कड़वो लागै काग, रसनारा गुण, राजिया ॥ १ ॥

४—अदतारां—कंजूसोंके। ओर—दूसरोंके। आणियो—लाई। जिको—वह। गमाड़ै—खो देती है। जाय—कंजूसके यहाँ जाकर।

५—लाय—ज्वाला, आग। सदन—घरमें। परब—त्यौहार। दियाळी—दिवाली।

१६—परोपकार

१—घर इ०—अपने काममें देर करनेवाले। समरथ्थ—तुरंत करनेवाले।

२—ज्यांने—उनको। सांइया—परमात्मा।

३—पीयेनतें—पीनेसे। लछमी—लक्ष्मी। सनमुख—सानुकूल। रुघवीर—श्रीराम।

१७—मधुर भाषण

१—कड़वो—कटु। काग—कौवा। रसना—जिह्वा, बोली।

सुक-पिक लगै सवाद, भल थोड़ो ही भाखणो।
वृथा करै बकवाद, भेक रवै ज्यूँ भैरिया ॥ २ ॥
कागा किसका धन हरै, कोयल किसकूँ देय ।
मीठो वचन सुणायकर जग अपणो कर लेय ॥ ३ ॥
पाटा पीड़ उपाव तन लागाँ तरवारियाँ।
वहै जीभरा घाव, रती न ओखद,राजिया॥ ४ ॥७६॥

१८—आदर-भाव

आवत मुख विगसै नहीं, जावत नहिं कँमलाइ।
सम्मन, अैसे नीचके नीच हुवै सो जाइ ॥ १ ॥
आवत ही जो हँस मिलै, जावत देवै रोय।
टूटी वाकी झूँपड़ी सम्मनका घर सोय ॥ २ ॥
आव नहीं, आदर नहीं, नहीं भगति, नहिं प्रेम।
हँस कुसला पूछै नहीं, खड़ा न रहिये, खेम ॥ ३ ॥
दादू, आदर-भावका मीठा लागै मोठ।
विण आदर व्यंजन बुरा, जीमणवाला ठोठ ॥ ४ ॥
आदर करै अपार, तो भोजन भाजी भली।
आणै मन अहँकार, कड़वा घेवर,किसनिया॥ ५ ॥

२—सवाद—रुचिकर, स्वादिष्ट। भल—भले ही, चाहे। भेक—मेंढ़क। लवै—बोलते हैं।

४—पाटा इ०—शरीरमें तलवार (का घाव) लगनेपर मलहम पट्टीसे पीड़ाका उपाय हो सकता है, परन्तु वे जो जीभके घाव हैं उनकी रत्तीभर भी दवा नहीं।

१८—आदर-भाव

१—विगसै—खिल जाता है। कँमलाय—कुम्हलाता है।

३—आव—आवभगत। कुसला—कुशलक्षेम। खेम—कविका नाम।

४—मोठ—अेक साधारण अन्न। व्यंजन—पकवान। जीमणवाला इ०—उनके जीमनेवाले मूर्ख हैं।

५—भाजी—मामूली सागपातका भोजन। आणै—मनमें अहंकार लावे तो।

कीड़ी पण पावै नहीं अ-दतारां घर आय।
ओर घरांसूं आणियो, जिको गमाड़ै जाय ॥ ४ ॥
'दियो' सबद सुणतां दुसह तन-मन लागै लाय।
सूम दियो न करै सदन परव दियाळी पाय ॥ ५ ॥७२॥

१६—परोपकार

घर-कारज सींलावणा, पर-कारज समरथ्थ।
ज्यांने राखै सांइया आडा दे-दे हथ्थ ॥ १ ॥
मर ज्याऊँ, मांगूं नहीं, निज स्वारथरै काज।
परमारथरै कारणे, मोय न आवै लाज ॥ २ ॥
पंछिनके पीयेनते, कहा घटत है नीर ?
खरची लछमी ना घटै, सनमुख जो रुघवीर ॥ ३ ॥७५॥

१७—मधुर भाषण

उपजावै अनुराग, कोयल मन हरखित करै।
कड़वो लागै काग, रसनारा गुण, राजिया ॥ १ ॥

४—अदतारां—कंजूसोंके। ओर—दूसरोंके। आणियो—लाई। जिको—वह। गमाड़ै—खो बैठती है। जाय—कंजूसके यहाँ जाकर।

५—लाय—ज्वाला, आग। सदन—घरमें। परव—त्यौहार। दियाळी—दिवाली।

१६—परोपकार

१—घर इ०—अपने काममें देर करनेवाले। समरथ्थ—तुरंत, करनेवाले।

२—ज्यांने—उनको। सांइया—परमात्मा।

३—पीयेनतें—पीनेसे। लछमी—लक्ष्मी। सनमुख—सानुकूल। रुघवीर—श्रीराम।

१७—मधुर भाषण

१—कड़वो—कटु। काग—कौवा। रसना—जिह्वा, बोली।

सुक-पिक लवै सवाद, भल थोड़ो ही भाखणो।
वृथा करै वकवाद, मेक लवै ज्यूँ मेरिया ॥ २ ॥
कागा किसका धन हरै, कोयल किसकूँ देय।
मीठो वचन सुणायकर जग अपणो कर लेय ॥ ३ ॥
पाटा पीड़ उपाव तन लागाँ तरवारियाँ।
वहै जीभरा घाव, रती न ओखद, राजिया ॥ ४ ॥७६॥

१८—आदर-भाव

आवत मुख विगसै नहीं, जावत नहिं कँमलाइ।
सम्मन, अैसे नीचके नीच हुवै सो जाइ ॥ १ ॥
आवत ही जो हँस मिलै, जावत देवै रोय।
टूटी वाकी भूँपड़ी सम्मनका घर सोय ॥ २ ॥
आव नहीं, आदर नहीं, नहीं भगति, नहिं प्रेम।
हँस कुसला पूछै नहीं, खड़ा न रहिये, खेम ॥ ३ ॥
दादू, आदर-भावका मीठा लागै मोठ।
विण आदर व्यंजन बुरा, जीमणवाला ठोठ ॥ ४ ॥
आदर करै अपार, तो भोजन भाजी भली।
आणै मन अहँकार, कड़वा घेवर, किसनिया ॥ ५ ॥

२—सवाद—रुचिकर, स्वादिष्ट। भल—भले ही, चाहे। मेक—मेंढक। लवै—बोलते हैं।

४—पाटा इ०—शरीरमें तलवार (का घाव) लगनेपर मलहम पट्टीसे पीड़ाका उपाय हो सकता है, परन्तु ये जो जीभके घाव हैं उनको रत्तीभर भी दवा नहीं।

१८—आदर-भाव

१—विगसै—खिल जाता है। कँमलाय—कुम्हलाता है।

३—आव—आवभगत। कुसला—कुशलक्षेम। खेम—कविका नाम।

४—मोठ—अेक साधारण अन्न। व्यंजन—पकवान। जीमणवाला इ०—उसके जीमनेवाले मूर्ख हैं।

५—भाजी—मामूली सागपातका भोजन। आणै—मनमें अहंकार लावे तो।

कीड़ी पण पावै नहीं अ-दतारां घर आय।
ओर घरांसूँ आणियो, जिको गमाड़ै जाय ॥ ४ ॥
'दियो' सबद सुणतां दुसह तन-मन लागै लाय।
सूम दियो न करै सदन परब दियाळी पाय ॥ ५ ॥७२॥

१६—परोपकार

घर-कारज सीलावणा, पर-कारज समरथ्थ।
ज्यांने राखै सांइया आडा दे-दे हथ्थ ॥ १ ॥
मर ज्याऊँ, मांगूँ नहीं, निज स्वारथरे काज।
परमारथरे कारणे, मोय न आवै लाज ॥ २ ॥
पंछिनके पीयेनते, कहा घटत है नीर ?
खरची लछमी ना घटै, सनमुख जो रुघवीर ॥ ३ ॥७५॥

१७—मधुर भाषण

उपजावै अनुराग, कोयल मन हरखित करै।
कड़बो लागै काग, रसनारा गुण, राजिया ॥ १ ॥

४—अदतारां—कंजूसोंके। ओर—दूसरोंके। आणियो—लाई। जिको—वह। गमाड़ै—खो बैठती है। जाय—कंजूसके यहाँ जाकर।

५—लाय—ज्वाला, आग। सदन—घरमें। परब—त्यौहार। दियाळी—दिवाली।

१६—परोपकार

१—घर इ०—अपने काममें देर करनेवाले। समरथ्थ—तुरंत करनेवाले।

२—ज्यांने—उनको। सांइया—परमात्मा।

३—पीयेनतें—पीनेसे। लछमी—लक्ष्मी। सनमुख—सानुकूल। रुघवीर—श्रीराम।

१७—मधुर भाषण

१—कड़बो—कटु। काग—कौवा। रसना—जिह्वा, बोली।

घरधारी घबराय ने, भणिया माँगे भीक।
नाणो ले प्रभु-नाँवरो ठरै काळजो ठीक ॥ ७ ॥
विविध वणाय-वणाय जुगत घणी रचियो जगत।
कीधी वुसत न काय रुपिया सरसी, राजिया ॥ ८ ॥
बँध बाँध्या छुडवाय, कारज मनचींता करै।
कहो चीज है काय, रुपिया सरसी, राजिया ॥ ९ ॥
गोडो पूछै, गोडिया, किसो भलेरो देस।
संपत होय तो घर भलो, नहीं भलो परदेस ॥१०॥९६॥

२०—प्रारब्ध

सुण कूँभा, रावण कहै, आण भराणा अंक।
पाँवा पड़ियाँ ना रहै लाखाँ वाताँ लंक ॥ १ ॥
हरी लिखाया वेह लिख्या लिख-लिख घाल्या अंक।
राई घटै न तिल वधै, रह, रे जीव, निसंक ॥ २ ॥
नहचै होय निसंक, चित नह कीजै चल-विचल।
अँ विधनारा अंक राई घटै न, राजिया ॥ ३ ॥

७—घरधारी—घरधारी, गृहस्थी। ने—और। भणिया—पढ़े हुए। भीक—भीख। ठरै—शीतल होता है। काळजो—कलेजा।

८—जुगत—युक्तियां। कीधी—की, बनाई। सरसी—समान।

९—बँध—बंधन। मनचींता—मन द्वारा सोचे हुअे। काय—कोई।

१०—किसो—कौन-सा। भलेरो—भला। संपत—धन। नहीं—नहीं तो।

२०—प्रारब्ध

१—कूँभा—कुंभकर्ण, रावणका छोटा भाई। आण इ०—होनहार आ पहुंची है। पाँवां पड़ियाँ—पैरों पड़नेसे। लाखाँ वाताँ—निश्चयही, लाख उपाय करने से भी।

२—हरी—भगवान। वेह—विधि, विधाता। घाल्या अंक—लेख [illegible]।

३—नहचे—निश्चय। नह—नहीं। चल विचल—विचलित।

हंसा तो तब लग चुगें, जब लग देखै लाग।
लाग-विहूणा जे चुगें, हंस नहीं ते काग ॥ ६ ॥
उठे न आदर-आव, हित चित वात न है हुलस।
परत न दीजे पांव, मन तूटां-घर, मोतिया ॥ ७ ॥

१९—धन-महिमा

धनवाळांरे धाम जाण विना जावै स जन।
निरधणियांरो नाम कोइ न पूछै, किसनिया ॥ १ ॥
कोडी विन कीमत नहीं, सगा न राखै साथ।
हुवै ज नाणो हाथमें, वैरी बूझै वात ॥ २ ॥
दोलतसूँ दोलत वधे, दोलत आवै दोर।
जस होवै सब जगतमें, जोवन आवै जोर ॥ ३ ॥
दाळद घर दोळो हुवै, परणी नावै पास।
रुपिया होवै रोकड़ा, सोरा आवै सांस ॥ ४ ॥
कळजुगमें कळदार विन भायां पड़ियो भेव।
जिण घर माया जोरमें, दरसण आवै देव ॥ ५ ॥
रुपियां विन रागां करै, हाजर जोड़ै हात।
अेक अधेली आडमें, बोळो सुण ले वात ॥ ६ ॥

६—लाग—प्रेम। विहूणा—विना, रहित।

७—हित—प्रेम। हुलस—आनंदित होकर। परत—प्रत्यक्ष, भूलकर भी मनतूटां—जिनके मनमें प्रेम नहीं रह गया है उनके।

१९—धन-महिमा

१—जांण—जान-पहचान। निरधणियांरो—निर्धनोंका।

२—कोडी—धन। सगा—संबंधी, भाईबन्धु। हुवै—यदि हो। नाणो—रुपया

४—दाळद—दारिद्रय। दोळो हुवै—चारों ओरसे घेर लेता है तो परणी—स्त्री। नावै (न आवै)—नहीं आती है। रोकड़ा—नकद। सोरा—सुखपूर्वक

५—कळदार—कलदार, रुपया। भायां—भाइयोंमें। भेव—भेद, फर्क।

६—रागां करै—दूसरों के सामने गीत गाते हैं तो भी कोई नहीं सुनता अधेली—अठन्नी। बोळो—बहरा।

घरधारी घबराय ने, भणिया माँगे भीक।
नाणो ले प्रभु-नाँवरो ठरै कालजो ठीक ॥ ७ ॥

विविध वणाय-वणाय जुगत धणी रचियो जगत।
कीधो वुसत न काय रुपिया सरसी, राजिया॥ ८ ॥

बँध बाँध्या छुडवाय, कारज मनचींता करै।
कहो चीज है काय, रुपिया सरसी, राजिया॥ ९ ॥

गोड़ो पूछै, गोड़िया, किसो भलेरो देस।
संपत होय तो घर भलो, नहीं भलो परदेस ॥१०॥९६॥

२०—प्रारब्ध

सुण कूँभा, रावण कहै, आण भराणा अंक।
पाँवाँ पड़ियाँ ना रहै लाखाँ वाताँ लंक॥ १ ॥

हरी लिखाया वेह लिख्या लिख-लिख घाल्या अंक।
राई घटै न तिल वधै, रह, रे जीव, निसंक॥ २ ॥

नहचै होय निसंक, चित नह कीजै चल-विचल।
अै विधनारा अंक राई घटै न, राजिया॥ ३ ॥

७—घरधारी—घरबारी, गृहस्थी। ने—और। भणिया—पढ़े हुए। भीक—भीख। ठरै—शीतल होता है। कालजो—कलेजा।

८—जुगत—युक्तियाँ। कीधी—की, बनाई। सरसी—समान।

९—बँध—बंधन। मनचींता—मन द्वारा सोचे हुअे। काय—कोई।

१०—किसो—कौन-सा। भलेरो—भला। संपत—धन। नहीं—नहीं तो।

२०—प्रारब्ध

१—कूँभा—कुंभकर्ण, रावणका छोटा भाई। आण इ०—होनहार आ पहुँची है। पाँवाँ पड़ियाँ—पैरों पड़नेसे। लाखाँ वाताँ—निश्चयही, लाख उपाय करने से भी।

२—हरी—भगवान। वेह—विधि, विधाता। घाल्या अंक—लेख डाले।

३—नहचे—निश्चय। नह—नहीं। चल विचल—विचलित। अै—ये।

सम्मन, संपत-विपतमें जे भूरैं ते कूर।
मासा घटै न तिल वधैं जे विध लिख्या अँकूर ॥ ४ ॥
उद्दम करो अनेक, अथवा अण-उद्दम करो।
होसी निहचै हेक राम करै सो, राजिया ॥ ५ ॥
अणहोणी होवै नहीं, होणी हो सो होय।
लाखसैणप अर क्रोड़ बुध कर देखो सब कोय ॥ ६ ॥
सो वैंरी कटवण मिलैं, मस्तक लिख्या सो होय।
लेख लिख्याकूं, वालका, मेट न सकैं कोय ॥ ७ ॥
हिकमत करो हजार, गढपतियाँ जाँचो घणा।
धीरज, मिलसी, धार करम-प्रवाणे, किसनिया ॥ ८ ॥
सोनो घड़ै सुनार, कंदोई खाजा करै।
भोगै भोगण-हार करम-प्रवाणे, किसनिया ॥ ९ ॥
दाख भखे मुख पकत है, होत कागकूँ रोग।
भागहीणकूँ ना मिलैं भली वसतको भोग ॥१०॥
कठैं कासी, कठैं कासमिर, कहाँ जिला गुजरात।
दाणो-पाणी परसरा, बाँह पकड़ ले जात ॥११॥
परालबधका पावणा, देख दईका खेल।
भभ्भीखणने लंक, अर हडूमानने तेल ॥१२॥१०८

४—कूर—नीच। मासा—एक तोलेका बारहवाँ हिस्सा। अँकूर—अंक,लेख
५—उद्दम—पुरुषार्थ। अण-उद्दम इ०—उद्योग न करो। होसी—होगा
हेक—अेक।

६—सैणप—सयानपन, चतुराई। क्रोड़—करोड़। बुध—बुद्धिमानी।
७—सो—सैकड़ों। कटवण—बुरा करनेवाले।

८—हिकमत—युक्ति। घणा—बहुत। धीरज इ०—भाग्यके अनुसार मि
ही जायगा अतः धीरज रखो।

९—कंदोई—हलवाई।

१२—परालबध इ०—प्रारब्धसे प्राप्ति होती है। दई—विधाता
भभ्भीखण—विभीषण। हडूमान इ०—हनुमानजीके तेल-सिंदूर चढ़ाते हैं।

२१—उद्योग

राम कहै सुगरीवने, लंका केती दूर ?
आलसियाँ अलघी घणो, उद्दम हाथ, हजूर ॥ १ ॥
उदैराज, उद्दम कियाँ सब कुछ होवै त्यार ।
गाय-भैंस कुलमें नहीं, दूध पिवै मंजार ॥ २ ॥११०॥

२२—गरज (स्वार्थ)

हुती गरज मन ओर था, मिटी गरज मन ओर ।
उदैराज, मनकी प्रकृति रहै न अेकी ठोर ॥ १ ॥
मतलबरी मनवार, चुपकै लावै चूरमो ।
मतलब विन मनवार राब न पावै, राजिया ॥ २ ॥
गरज-दिवाँणी गूजरी अब आई घर कूद ।
सावण छाछ न घालती, जेठ परोसै दूध ॥ ३ ॥११३॥

२३—अवसर-नाश

समझदार सूजाण नर ओसर चूकै नहीं ।
ओसररो ओसाण रहै घणा दिन, राजिया ॥ १ ॥

२१—उद्योग

१—आलसियाँ इ०—आलसियोंके लिअे बहुत दूर है और उद्यम करनेवालोंके लिअे हाथहीके पास है ।

२—कियाँ—करने से । त्यार—तय्यार । मंजार—मार्जार, बिल्ली ।

२२—गरज

१—हुती इ०—जब गरज थी तब । प्रकृति—स्वभाव । अेकी—अेक ही ।

२—मनवार—मनुहार । चूरमो—अेक मिठाई । चुपकै—चुपचाप । राब—रावड़ी, मट्ठे में आटा डालकर पकाया हुआ अेक भोजन । पावै—पिलाता है ।

३—गरज-दिवाँणी—गरज से दीवानी बनी हुई । गूजरी—अहीरिन, ग्वालिन । छाछ—मठ्ठा । घालती—डालती, देती । परोसै—परोसती है, देती है ।

२३—अवसर-नाश

१—ओसर—अवसर । ओसाण—अहसान । घणा—बहुत ।

बंधु विदेसाँ उठ गया, तरुणी तज्यो सनेह ।
कृषी नास, पसु मर गया, (अब) दूधाँ वरसो मेह ॥ २ ॥
आधो रहग्यो ऊँखली, आधो रहग्यो छाज ।
साँगर-सट्टे धण गई, (अब) मधरो-मधरो गाज ॥३॥
घर छूटा, पंथी मुवा, वाला गया वदेस ।
अब भल वूठा मेहड़ा, वरसत काह करेस ? ॥ ४ ॥११७

२४—नशेकी निंदा

१—तमाखू

हे कंता, काँई करै हाय, तमाखू हेत ।
दिन-ऊगाँई टाटमें दोय टकाँकी देत ॥ १ ॥

२—दारू (शराब)

आम फलैं परवारसूँ, महू फलैं पत खोय ।
ताको रस जे कोई पियै, अकल कठासूँ होय ? ॥ २ ॥

२—तरुणी—स्त्री । अब इ०—जब इतनी बातें हो चुकीं तब फिर चाहे दूधका ही मेह बरसे तो भी क्या लाभ ?

३—ऊँखली—ओखलीमें । छाज—शूर्प । साँगर—शमी पेड़की फलियाँ, साधारण निकृष्ट खाद्य । सट्टे—बदले । साँगर इ०—अकालमें मैंने तो साँगरियोंके लिये पत्नीको बेच दिया अब, हे बादल, चाहे तू मीठे स्वरसे गरज, मुझे क्या लाभ ?

४—मुवा—मर गये । वाला—प्यारे । वदेस—परदेश । वूठा—बरसा काह करेस—क्या करेगा ।

२४—नशेकी निंदा

१—काँई—क्या । ऊगाँई—उगते ही । टाटमें इ०—दो टके व्यर्थ ही नाश कर देते हो ।

२—परवारसूँ—परिवारके साथ । महू—महुआ । पत—पत्ते । ताको रस—महुयेके रससे शराब बनता है । कठासूँ—कहाँसे ।

मद पीताँ मुजरो करै, ईंको कोण विचार ?
अकल कहै, जी ठाकराँ, जाती करूँ जुहार ॥ ३ ॥

बुध्य भ्रष्ट, व्याकुल वचन, तन नहिं पावै पोख ।
इण दारूमें कोण गुण, दाम लगैं अर दोख ? ॥ ४ ॥

तन छीजै, जोवन हटै, घटै वयस, धन, धर्म ।
मदगत पसगत अेक-सी, ज्यौंमें हया न शर्म ॥ ५ ॥

दारू-परदारा दुहूँ है तन-धनरी हाँण ।
नर, सांप्रत देखो नजर नफो ओर नुकसाँण ॥६॥१२३॥

२५—हिंसाकी निंदा

जीव मार हिंसा करै, खाता करै वखाण ।
पीपा, परतक देख ले थालीमें समसाण ॥ १ ॥

खुस खाणा है खीचड़ी, माँहि टुकियक लूँण ।
माँस पराया खायके गला कटावै कूँण ॥२॥१२५॥

२६—परस्याँ विना

नीर-तीर तड़फै पड़्यो, धीर न धारै मीन ।
निकट,तऊ पल है विकट परस्याँ विना, प्रवीण ? ॥ १ ॥

३—पीताँ—पीते समय । मुजरो—जुहार, अभिवादन । ईंको—इसका । जाती—जाती हुई, विदा लेती हुई ।

४—पोख—पोषण, पुष्टि । दारू—शराब । अर—और । दोख—दोष, हानि ।

५—वयस—उम्र । पस-गत—पशुकी हालत । हया—लज्जा ।

६—हाँण—हानि-कारक । सांप्रत—प्रत्यक्ष । नफो—लाभ ।

२५—हिंसाकी निंदा

१—खाता—खाते हुए । पीपा—कविका नाम । परतक—प्रत्यक्ष । समसाण—मसान । २—खुस—सुखका । लूँण—नमक । कूँण—कौन ।

२६—परस्याँ विना

१—निकट जल—पास है तो भी । पल है विकट—क्षणक्षण कठिनतासे बीतता है । परस्याँ विना—बिना छुए ।

ग्रीखम गिर लाग्या जरन, सरवर निकट पुलीन ।
वूझैगो कैसे विपिन परस्यां विना प्रवीण ? ॥ २ ॥
गंगा, जमना, सरसुती लहर त्रिवेणी लीन ।
निकट गया, पातक रया परस्यां विना, प्रवीण ॥ ३ ॥
श्रीमंडल, वीणा, मुरज, धरया सरस रसभीन ।
मधुरे सुर वाजै नहीं परस्यां विना, प्रवीण ॥ ४ ॥
लोह-पुंज इतको धरयो, इत पारसमणि दीन ।
सो कंचन कैसे वणै परस्यां विना प्रवीण ॥ ५ ॥
अमरितको भाजण निकट भरयो धरयो, नहीं पीन ।
यूँ देख्यां अमर न भया परस्यां विना, प्रवीण ॥ ६ ॥
केसर, चंदण, कुमकुमा, भरया कटोरा तीन ।
अंग रंग लागै नहीं परस्यां विना प्रवीण ॥ ७ ॥
भोजन लाया थाल भर, कर पकवान नवीन ।
तऊ छुधा भाजै नहीं परस्यां विना, प्रवीण ॥ ८ ॥
निकट जड़ीमुहरा धरया, काम-भुजँग डस लीन ।
विख व्याप्यो, उतरै नहीं परस्यां विना, प्रवीण ॥ ९ ॥१३४॥

२७—अन्योक्तियाँ

हंसा, सरवर ना तजो, जे जल खारो होय ।
डावर-डावर डोलतां भला न कहसी कोय ॥ १ ॥

२—गिर—पहाड़ । पुलीन—किनारा । विपिन—वन (की अग्नि) ।
३—रया—रह गये ।
५—इतको—इधर । दीन—दी, रखी ।
६—पीन—पिया । यूँ द०—यों केवल देखनेसे ।
७—कुमकुमा—कुंकुम । भरया—भरे । अगइ०—अंग में रंग आप ही नहीं लग जाता ।
९—भुजँग—सांप । व्याप्यो—व्याप्त हुआ ।

२७—अन्योक्तियाँ

१—जे—यदि, यद्यपि । डावर—तलैया । कहसी—कहेगा ।

माली ग्रीखम मांय पोखि घणो, द्रुम पालियो।
जिणरो जस किम जाय अत घण वूठाँ ही, अजा ॥ २ ॥

दूध-नीर मिल दोय अेक जिसी आक्रत हुवै ।
करै न न्यारा कोय राजहंस बिन, राजिया ॥ ३ ॥

हंसा था सो उड गया, कागा भया दिवान ।
जा, बामण, घर आपणे, सिंघ कैरा जजमान ? ॥ ४ ॥

भ्याड़, जोंख, मछ, भेक, वारिजके मेला वसै ।
इसकी भँवरो अेक रसको जाणे, राजिया ॥ ५ ॥

जायो तूँ जिण देस, जल ऊँडा थोथा थला ।
भँवरपणारो भेस रल्यो कठासूँ, राजिया ॥ ६ ॥

कबूतर, तूँ अदभूत, घायल ज्यूँ घूमत फिरै ।
वनमें थोड़ा रूँख क्रिण कारण कूवे पड़ै ॥ ७ ॥

सूवा, सेमल देखके सभी गमाई बुध्ध ।
फूल देखके रम रहा, फलकी रही न सुध्ध ॥ ८ ॥

भूख दूख संकट सहै, सहै विड़ाणा मार ।
हरीदास, मौनी बलद कासूँ करै पुकार ॥ ९ ॥

२—ग्रीखम—ग्रीष्म ऋतु । पोखि इ०—बहुत पुष्ट करके । जिणरो—उसका । जाय—नष्ट हो । अत इ०—बादमें बहुत वर्षा होनेपर भी । आजा—हे अर्जुनसिंह ।

३—जिसी—जैसी, समान । आक्रत—आकृति, रूप ।

४—हंसा—हंस जो पहले दीवान थां । बामण—हे ब्राह्मण । आपणे—अपने । कैरा—किसके ।

५—भ्याड़—भिड़ । जोंख—जोंक । मछ—मछली । इसकी—प्रेमी । अेक—केवल अेक ही । रसको जाणे—रसकी कदर कर सकता है ।

६—जायो इ०—जिस देशमें तू जनमा है वहां तो पानी गहरा और जमीन थोथी है, यह रसिकताका रूप तूने कहांसे प्राप्त किया ।

९—विड़ाणा—पराये । मौनी—चुप रहनेवाला । बलद—बैल । कासूँ—किससे ।

धर आई, निरभै भई, डाव पड़्याँ यूँ होय ।
हरीदास, ता सारकूँ पासा लगै न कोय ॥१०॥

लोहा जलसूँ धोइये, तब लग काँटी खाय ।
हरीदास, पारस मिल्याँ मूँघे मोल विकाय ॥११॥

पय कर मीठो पाक जो अमरित सींचीजिये ।
उर कड़वाई आक रंच न मूकै, राजिया ॥१२॥

अरहट कूप तमाम ऊमर लग न हुवै इतो ।
जलहर अेकी जाम रेलै सब जग, राजिया ॥१३॥

मन मैला, तन ऊजला, बुगला कपटी रंग ।
तोसें तो कागा भला तन-मन अेको रंग ॥१४॥

तन उजला, मन साँवला, बुगला कपटी भेख ।
इणसें तो कागा भला, बाहर भीतर अेक ॥१५॥

दादू, हँस मोती चुगै मानसरोवर न्हाय ।
फिर-फिर बैसे बापड़ा काग करंकाँ आय ॥१६॥

हरिया जाणै रूँखड़ा उस पाणीका नेह ।
सूका काठ न जाणई कबहूँ बूठा मेह ॥१७॥

मान-सरोवर माँय जल, प्यासा पीवै आय ।
दादू दोस न दीजिये घर-घर कहण न जाय ॥१८॥१५२॥

१०—निरभै—निर्भय । डाव—दाँव । सार—चौसरकी गोटी । लगै—पहुँचता है ।

११—काँटी—काट, जंग । मिल्याँ—मिलनेसे । मूँघे—महँगे ।

१२—पय कर—दूधके मीठे पाक बनाकर यदि अमृतसे सींचा जाय तो भी आक भीतरकी कटुता को जरा भी त्याग नहीं करता ।

१३—जलहर—मेघ । अेकी जाम—अेक ही पहरमें । रेलै—बहादेता है ।

१४—साँवला—काला । भेख—वेश, रूप । इणसे—इनसे ।

१६—बापड़ा=बेचारे । करंकाँ —हड्डियों या अस्थिपंजरपर ।

१७—उस—अर्थात् जो बरसता है । जाणई—जानता है (गुण या महत्वको) ।

१८—प्यासा इ०—जिसे प्यास होती है वह स्वयं आकर पानी पी लेता है ।

२८—सामान्य नीति

१

सोई, इण संसारमें भाँत-भाँतका लोग ।
सबसूँ रिल्‌मिल् चालियै नदी नाव संजोग ॥ १ ॥
जुगमें मिलणा अजब है, मिल बिछड़ो मत कोय ।
बिछड्याँ मिलणा दुलभ है राम करै जद होय ॥ २ ॥
दरसण परसण देह लग, सज्जण मिलियै धाय ।
घट छूटाँ, क़ालू कहै, कोण मिलेगो आय ॥ ३ ॥
मिलणा जोग सँजोगका, अपणे वस न वसाय ।
जद गोविंद किरपा करै, जद ही मिलियै धाय ॥ ४ ॥
खाया सोई खरचिया, दीया सो ही सथ्थ ।
जसवंत, धरिया ही रह्या माल बिराणे हथ्थ ॥ ५ ॥
खाणा पीणा खरचणा ऐस कुसी आराम ।
करणा हो सो कर लेवो काळाँ केसाँ काम ॥ ६ ॥

२८—सामान्य नीति

१—इण—इस । रिल्‌मिल्—हिलमिलकर । नदी-नाव-संजोग—संसारमें सारे प्राणियोंका साथ ऐसा है जैसा नदी पार करनेके लिये तटपर एकत्र यात्रियोंका; उनमें कोई कहींसे आता है और कोई कहींसे, थोड़ी देरके लिये नावमें सबका साथ हो जाता है पर पार पहुँचते ही फिर सब अलग-अलग हो जाते हैं ।

२—जुगमें—संसारमें । अजब—अद्‌भुत बात । बिछड्याँ—बिछुड़नेपर । दुलभ—दुर्लभ ।

३—देह लग—जब तक शरीर है तभी तक । सज्जण—सज्जनसे । घट छूटाँ—शरीर छूटनेपर । कोण—कौन ।

४—अपणे इ०—अपने वशकी बात नहीं । जदही—तभी ।

५—धरिया इ०—धरे ही रहे । बिराणे—पराये ।

६—ऐस—ऐशो-आराम । कुसी—खुशी । करणा इ०—जो कुछ करना है सो वृद्धत्व आनेके पूर्व ही कर लो । काळा केसाँ—जब तक केश काले हैं तब तक ।

ऊजड़ खेड़ा फिर वसै, निरधणियाँ धन होय ।
वीत्या दिन नह वावड़ै, मुवा न जीवै कोय ॥ ७ ॥

जलम अकारथ ही गयो, भड़-सिर खग्ग न भग्ग ।
तीखा तुरी न माणिया, गोरी गलै न लग्ग ॥ ८ ॥

इण हिंदवाणे मांयने खाणो-पीणो खूब ।
आखर नह रहणो अठै, मर ज्याणो, महबूब ॥ ९ ॥

धरम घटायाँ धन घटै, धन घट मन घट जाय ।
मन घटियाँ महमा घटै, घटत-घटत घट जाय ॥१०॥

विद्या वाणी हर-भगति हठ कर मिलै न कोय ।
धीरम, सहजे पाइयै जो धरि आगिलि होय ॥११॥

सत मत छोडो, हे नराँ, सत छोड्याँ पत जाय ।
सतकी बाँधी लिच्छमी फेर मिलेली आय ॥१२॥

झूठेकी कुछ पत नहीं, साजन, झूठ न बोल ।
लाखपतीका झूठसैं दो कोडीका मोल ॥१३॥

कहत भली मानत बुरी, यही जगतकी रीत ।
रज्जब, कोठी गारकी ज्यूँ धोवै त्यूँ कीच ॥१४॥

माखी बैठी सहदपर, पंख गया लपटाय ।
पाँख हिलावै सिर धुणै, लालच बुरी बलाय ॥१५॥

७—ऊजड़ इ०—उजड़े गांव । निरधणियाँ—निर्धनोंके । वावड़ै—लौटते हैं। वीत्या—बीते हुअे । मुआ—मरे हुअे ।

८—अकारथ—व्यर्थ । भड़-सिर—योद्धाओंके सिरपर तलवार नहीं तोड़ी । तीखा तुरी—तेज घोड़े । माणिया—भोगे, आनंद उठाया । गोरी—सुन्दरी ।

९—हिंदवाणे—हिंदुस्तानमें । आखर—अंतमें । नह—नहीं ।

१०—घटायाँ—घटानेसे । घटियाँ—घटनेसे । घटत इ०—घटते-घटते सब कुछ घट जाता है ।

११—हठकर—अपने आप । आगिलि—जो पहलेकी रखी हो, यदि पूर्व-संस्कार संचित हों ।

१२—पत—प्रतिष्ठा, विश्वास । लिच्छमी—लक्ष्मी । मिलेली—मिलेगी ।

१४—गार—कीचड़ ।

अवनी रोग अनेक, ज्यांरा विध कीना जतन ।
इण प्रकृतीरी अेक रची न ओखद, राजिया ॥१६॥

समन, पराये बागमें दाख तोड़ खर खाय ।
अपणो कछू न बीगड़ै, असही सही न जाय ॥१७॥

खूब गधेड़ो खाय पैलांरी वाड़ी परे ।
आ अणजुगती आय रड़कै चितमें, राजिया ॥१८॥

चंदण पड़यो चमार-घर, नित उठ कूटैं चाम ।
चंदण विचारो क्या करै, पड़यां नीचसूँ काम ॥१९॥

डूँगर जलती लाय जोवै सारो ही जगत ।
प्राजलती निज पाय रती न सूझै, राजिया ॥२०॥

ऊँचे गिरवर आग जलती सो देखें जगत ।
पण जलती निज पाग रती न सूझै, राजिया ॥२१॥

कलह करयें मत कामणी घोड़ां घी देतांह ।
आडा कदेयक आवसी, वारड़ली वहतांह ॥२२॥

आक वृटूकै, पवन भख, तुरियां आगल जाय ।
हूँ तने पूछूँ, सायवा, हिरण किसा घी खाय ? ॥२३॥

१६—अवनी—पृथ्वीपर । ज्यांरा—उनके । विध—विधाताने । इण इ०—पर इस स्वभावकी अेक भी दवा नहीं बनाई ।

१८—पैलांरी—उनकी, तीसरे लोगोंकी जिनसे हमारा कोई संबंध नहीं । परे—सामने, उस ओर । अणजुगती—अनुचित बात । रड़कै—खटकती है ।

२०—डूंगर—पहाड़पर जलती आगको सारा संसार देखता है पर अपने पैरोंके पास जलती हुई किसीको जरा भी नहीं दिखाई देती ।

२२—हे कामिनी, घोड़ोंको घी देते समय तू कलह मत करना, वार चलते समय ये कभी काम देंगे । वार—चोर-डाकुओंका पीछा करना ।

२३—पत्नी ऊपरके कथनका उत्तर देती है—हे पति, मैं तुमसे पूछती हूँ, हिरन कौन घी खाते हैं ? वे तो आकके पत्तों और हवापर ही गुजारा करते हैं और फिर भी घोड़ोंसे आगे निकल जाते हैं ।

राज, रखै तो च्यार रख, मत राखी चालीस।
अं चीलीसूँ भागणा, अै च्यारूँ चालीस ॥२४॥

वचन न्रपत अविवेक सुण छीजै स्याणा मिनख।
अपत हुवाँ तरु अेक रहै न पंछी, राजिया ॥२५॥

कही न मानै काय जुगती अणजुगती जठै।
स्याणाँने सख पाय रहणो चुपको, राजिया ॥२६॥

नदीनीर अर क्रपणधन, हरकोई हर लेत।
बलियारी न्रप कूपकी, गुण विन बूँद न देत ॥२७॥

हियो हुवै जो हाथ, तो कुसँगी केता मिलो।
चनण भुजंगाँ साथ कलो न लागं, किसनिया ॥२८॥

सीख सरीराँ ऊपजै, दिवी न आवै सीख।
अणमाँग्या मोती मिलै माँगी मिलै न भीख ॥२९॥

धीरे-धीरे, ठाकराँ, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचै सो घड़ा, रुत आयाँ फल होय ॥३०॥

सोच करै सो सूर है, कर सोचै सो कूर।
सोच करयाँ मुख नूर है, कर सोच्याँ मुख धूर ॥३१॥

२४—राज—हे राजा। राखी—रखना। भागणा—भागनेवाले। चालीस—चालीसके बराबर।

२५—वचन—राजाके अविवेक-भरे वचनोंको सुनकर बुद्धिमान् घटने लगते हैं (अविवेकी राजाकी सभाको धीरे-धीरे छोड़ देते हैं) जैसे पेड़के पत्रहीन होनेपर उसपर अेक भी पक्षी नहीं रहता।

२६—काय—कोई भी। जुगती—युक्तिसंगत या उचित बात। जठै—जहाँ। स्याणाँने इ०—समझदारोंको शांति धारण करके चुप रहना चाहिअे।

२७—बलियारी—बलिहारी है। न्रप—राजा। गुण—सद्गुण, रस्सी। बूँद—थोड़ा-सा भी द्रव्य, जलकी बूँद।

२८—हियो इ०—यदि हृदय वशमें हो। केता—कितने ही। चनण—चंदन। कलो—कलंक, दोष।

३१—सोच करै—जो सोच-विचारकर काम करता है। कूर—नीच। नूर—तेज, शोभा।

चंदणरी चुटकी भली गाडो भलो न काठ ।
चातर तो अेक ज भलो, मूरख भला न साठ ॥३२॥

जण-जणरो मुख जोय, नहचै दुख कहणो नहीं ।
काढ न दे वित कोय रीरायाँसूँ, राजिया ॥३३॥

वांका रहज्यो वालमा वांका आदर होय ।
वांका वनका लाकड़ा फाट न सकै कोय ॥३४॥

घणा सरल वणियै नहीं देखो ज्यूँ वणराय ।
सीधा-सीधा फाटतां वांका तरु वच ज्याय ॥३५॥

जबर विरोधी अगन जल लै निज काज लुहार ।
जबर विरोधी मंत्रियां सुपह काज लै सार ॥३६॥

पड़वे पोढंताह करड़ावण सैं कोइ करै ।
धोरामें धँसताह आंसु आवै, ईलिया ॥३७॥

कहणी मीठी खांड-सी, करणी विख-सी होय ।
जे कहणी करणी हुवै, विख ही अमरित होय ॥३८॥

कहणी प्रभु रीझै न कछु, रहणी रीझै राम ।
सपनेरी सो मोहरसूँ कोडी सरै न काम ॥३९॥

३२—गाडो इ०—काठकी भरी हुई गाड़ी भी अच्छी नहीं । चातर—चतुर ।

३३—जण-जणरो इ०—प्रत्येक आदमीकी ओर देखकर निश्चय ही अपना दुख नहीं कहते फिरना चाहिअे । दीनतापूर्वक रोनेसे कोई धन निकालकर नहीं दे देता ।

३४—वांका—टेढ़े । वालमा—हे प्यारे ।

३५—सरल—सीधे । वणराय—वनराजि, जंगल ।

३६—जबर—प्रबल । अगनजल—अग्नि और पानी । लै इ०—अपने काममें लाता है । मंत्रियां—मंत्रियोंसे । सुपह—अच्छा मालिक । लै सार—बना लेता है ।

३७—पड़वे इ०—महलोंमें सोते हुअे तो सभी अभिमान करते हैं पर जब टीबोंमें चलना पड़ता है तो आंसू निकल आते हैं ।

३९—रहणी—रहनेका ढंग । सपनेरी इ०—सपनेमें पाई हुई सैकड़ों मुहरोंसे अेक कौडीका काम भी नहीं निकल सकता

लाज रखे तो जीव रख, लज विन जीव न रक्ख।
साँई, तोसूँ वीनती, दोऊँ भेळी रक्ख ॥४०॥

लार्जां संपत पाइये, लार्जां मोटा मान।
लाज-विहूणा मानवी, ज्याँरा लाँबा कान ॥४१॥

लीह नहीं, लज्जा नहीं, नहीं रंग, नहिं राग।
ते माणस इम छंडियै जिम अंधारे नाग ॥४२॥

कदे न भाजै काय आमाँरी तिस आमल्याँ।
छोकरियाँ घर छाय, नार न आणै, नाथिया ॥४३॥

वड़ा भया तो क्या भया, सबसे वड़ा खजूर।
वैठणकूँ छाँया नहीं, फळ लागे अत दूर ॥४४॥

माया मिली तो क्या भया, हिड़दा भया कठोर।
नो नेजा पाणी चढ्या, तोय न भीजी कोर ॥४५॥

रंदोही होवे मती, मती वसुलो, मित्त।
होवे फरवत सारिसो वांटण-खाटण चित्त ॥४६॥

४०—साँई—हे परमात्मा। भेळी—अेक साथ। दोऊँ—दोनों।

४१—लार्जां—लज्जासे। मानवी—मनुष्य। ज्याँरा इ०—उनके लंबे कान हैं (वे गधे हैं)।

४२—लीह—मर्यादा (का ध्यान)। माणस—मनुष्य। इम—अैसे। अंधारे—अँधेरेमें।

४३—कदे इ०—कोई आमकी प्यास इमलीसे कभी नहीं बुझ सकती, इसी प्रकार यदि अबोध लड़कियोंसे ही घर (का काम) चल सके तो कोई स्त्रीको क्यों लावे ?

४५—हिड़दा—हृदय। नेजा—भाले, लंबाईका अेक नाप। तोय—तो भी। कोर—छोर।

४६—रंदोही—रंदा नामक बढ़ईका औजार जो छिली लकड़ीको दूसरी तर्फ फेंक देता है (केवल परमार्थी)। वसूलो—वसूला नामका बढ़ईका औजार जो छिली लकड़ीको अपनी ओर फेंकता है (स्वार्थी)। होवे मती—मत होना। मित्त—हे मित्र। होवे—होना। करवत—आरा नामका औजार जो छिली लकड़ीको दोनों ओर फेंकता है। सारिसो—समान। वांटण—बांटने और खानेवाला।

टामण-टामण टोटका कर देखो सै कोय।
धंधे चालै पीवरे आपै ही सब होय ॥४७॥

हुन्नर करो हजार स्याणप चतराई सहित।
हेत कपट विवहार रहै न छानो, राजिया ॥४८॥

सुण-सुण मीठी बोलगत बैठ न वैरी पास।
दही भरोसे, वावला, खाये कदे कपास ॥४९॥

सूनेमें मत चीज रख, ले ज्या चोर-चकार।
खाऊ है धन-जीवका सूनो ओर उजाड़ ॥५०॥

टूटा मत रह टोलसँ राव भीड़के बीच।
अेक अकेले मिनखकूँ सूझै ऊँच न नीच ॥५१॥

वाड़ करो छी खेतने, वाड़ खेतने खाय।
राजा डंडै रैतने, कूकै किणपर जाय ? ॥५२॥

स्याणा तो है भोत-सा, सबसूँ स्याणा छोह।
हीणा देख हो चोगणा, ठाढेपै कम होह ॥५३॥

४७—टामण-कामण—वशीकरण जादू। टोटका—टोना। कर देखो इ०—सब कोई करके देखलो, उससे पति वशमें नहीं होता; परन्तु यदि स्त्री पतिके कथनानुसार चले तो सब वशीकरण अपने-आप हो जाते हैं।

४८—हुन्नर—हुनर। स्याणप—सयानप। छानो—छिपा हुआ।

४९—बोलगत—बातें। वावला—हे बावले। खाये कदे इ०—कभी कपास न खा बैठना। दही भरोसे कपास खावणो—धोखा खाना।

५०—लेज्या—ले जाय। खाऊ—खानेवाले।

५१—टूटा—अलग। टोल—टोली, मंडली। राव—हे राव। भीड़—विपत्ति। ऊँच-नीच—भला-बुरा, कर्तव्याकर्तव्य।

५२—वाड़—झरबेरीके कांटोंका घेरा। खेतने—खेत (की रक्षा) के लिअे। खेतने—खेतको। डंडै—दंड देता है। रैतने—प्रजाको। कूकै—पुकार करे। किणपर—किसके आगे।

५३—भोत-सा—बहुत-से। छोह—क्रोध। हीणा—कमजोर। हो—होता है। ठाढे पै—जबर्दस्तपर।

समझूने चिंता घणी, मूरखने नहिं लाज।
भले-बुरे की खबर नांहि, पेट भरणसूँ काज ॥७०॥
तुलसी, तहाँ न जाइये जलम-भोमके गाँव।
गुण-ओगण जाणै नहीं, धरै पाछलो नाँव ॥७१॥
लोग चुगल कानां लग्या, घुघू बोल्यो गेह।
भायांसूँ मेलप नहीं, विपत लिखी विधि तेह ॥७२॥
सम्मन, पूँछ ज स्वानकी सरै न अेकौ काज।
माँखि उडावणकी नहीं, ढकै न तनकी लाज ॥७३॥
मूसा ने मंजार हितकर बैठा हेकठा।
सब जाणै संसार रसनह रहसी, राजिया ॥७४॥
निस-दिन निरभै नींद सपनेमें आवै न सुख।
दुनियामें नर दीन करजेसूँ हुवै, किसनिया ॥७५॥
कहणी जाय निकाम आछोड़ी आणी उगत।
दामां-लोभी दाम, रँजै न वातां, राजिया ॥७६॥

---

७० —समझूने—समझदारको।

७१—जलमभोम—जन्मभूमि। पाछलो नाँव—बचपनका अनादर-सूचक ओछा नाम लेकर पुकारते हैं (स्वामी रामदासजी अपने पुराने गाँवमें पहुँचे तो लोग चिल्ला उठे—अरे रामलो आयो रे रामलो आयो)।

७२—चुगल—चुगलीखोर। कानां लग्या—कान लगेहुए। घुघू—उल्लू। गेह—घरमें। भायांसूँ इ०—भाइयोंसे प्रेम नहीं। तेह—वहाँ, उसके लिये।

७३—स्वान—कुत्ता। अेकौ—अेक भी। सरै—बनता है। माँखि—मक्खियाँ।

७४—चूहा और बिल्ली प्रेम करके अेक-साथ बैठे हैं पर यह बात सारा संसार जानता है कि उनका प्रेम अंत तक नहीं निभेगा।

७५—निरभै—निर्भय। सुख—सुखसे। करजेसूँ—ऋण लेनेसे।

७६—दामोंके लोभीके आगे अच्छी-अच्छी उक्तियाँ लाकर कही हुई बात भी व्यर्थ जाती है। वह तो दामसे ही रीझता है, बातोंसे नहीं।

आवे जहाँ छिपाइयें, साँच न छाँनो होय ।
सेस रसातल, गगन धू, परगट कहिये सोय ॥७७॥

आवै नहीं इलोल बोलण-चालणरी विविध।
टीटोड्यांरी टोल राजहंसरी, राजिया ॥७८॥

जगमें दीठो जोय, हेक प्रगट विवहार म्हे ।
काम न मोटो कोय, रोटी मोटी, राजिया ॥७९॥

लिछमी कर हरि लार, हरने दध दीधो जहर ।
आडंबर इधकार राखे सारा, राजिया ॥८०॥

धोबो मुट्ठी धान माँगे ज्यांने ना मिले ।
पट काढै पकवान ना-ना करतां, नाथिया ॥८१॥

आछा हुवे उमराव, हियाफूट ठाकर हुवे ।
जड़िया लोह जड़ाव रतन न फावै, राजिया॥८२॥

रीझयाँ देय न मोज, चूक्याँ चट चेतो करै ।
ज्यां ठाकररी चोज रती न आवै, राजिया ॥८३॥

गुण विन ठाकर ठीकरो, गुण विन मीत गँवार ।
गुण विन चंदण लाकड़ी, गुण विन नार कुनार ॥८४॥

७७—छाँनो—गुप्त । धू—ध्रुव । परगट इ०—तो भी वे प्रकट रहते हैं ।

७८—आवै इ०—टिटिहरियोंकी मंडलीमें किसीको राजहंसका-सा बोल-चालका ढंग नहीं आ सकता ।

७९—जोय—देखकर । दीठो—देखा । हेक—अेक । म्हे—हमने ।

८०—हरि—विष्णु । लार—पीछे । हरने—शिवको । दध—उदधि, समुद्र । इधकार—खयाल, सम्मान ।

८१—जो माँगता है उसे धोबा या मुट्ठी भर धान भी नहीं मिलता पर ना-ना करनेवालेके लिअे लोग झटपट पकवान निकालकर लाते हैं ।

८२—जड़िया इ०—लोहेमें जड़े हुअे रत्नोंकी तरह शोभा नहीं देते ।

८३—जो रीझनेपर इनाम नहीं देता पर कोई भूल होनेपर तुरंत सावधान हो जाता है, उस ठाकुरके लिअे दिलमें रत्ती भर भी प्रेम नहीं होता ।

८४—ठीकरो—ठिकरा । लाकड़ी—साधारण लकड़ीके बराबर ।

समझूने चिंता घणी, मूरखने नहिं लाज।
भले-बुरे की खबर नांहि, पेट भरणसूँ काज ॥७०॥

तुलसी, तहाँ न जाइये जलम-भोमके गाँव।
गुण-ओगण जाणें नहीं, धरें पाछलो नाँव ॥७१॥

लोग चुगल कानां लग्या, घूघू बोल्यो गेह।
भायांसूँ भेलप नहीं, विपत लिखी विधि तेह ॥७२॥

स्यान, पूँछ ज स्वानकी सरें न अेको कांज।
माँखि उडावणकी नहीं, ढकै न तनकी लाज ॥७३॥

मूसा ने मंजार हितकर बैठा हेकठा।
सब जाणें संसार रसनह रहसी, राजिया ॥७४॥

निस-दिन निरभै नींद सपनेमें आवै न सुख।
दुनियामें नर दीन करजेसूँ हुवै, किसनिया ॥७५॥

कहणी जाय निकाम आछोड़ी आणी उगत।
दामां-लोभी दाम, रँजै न वातां, राजिया ॥७६॥

७०—समझूने—समझदारको।

७१—जलमभोम—जन्मभूमि। पाछलो नाँव—बचपनका अनादर-सूचक ओछा नाम लेकर पुकारते हैं। (स्वामी रामदासजी अपने पुराने गाँवमें पहुँचे तो लोग चिल्ला उठे—अरे रामलो आयो रे रामलो आयो)।

७२—चुगल—चुगलीखोर। कानां लग्या—कान लगेहुए। घूघू—उल्लू। गेह—घरमें। भायांसूँ इ०—भाइयोंसे प्रेम नहीं। तेह—वहाँ, उसके लिअे।

७३—स्वान—कुत्ता। अेको—अेक भी। सरें—बनता है। माँखि—मक्खियाँ।

७४—चूहा और बिल्ली प्रेम करके अेक-साथ बैठे हैं पर यह बात सारा संसार जानता है कि उनका प्रेम अंत तक नहीं निभेगा।

७५—निरभै—निर्भय। सुख—सुखसे। करजेसूँ—ऋण लेनेसे।

७६—दामोंके लोभीके आगे अच्छी-अच्छी उक्तियाँ लाकर कही हुई बात भी व्यर्थ जाती है। वह तो दामसे ही रीझता है, बातोंसे नहीं।

भावे जहाँ छिपाइयें, साँच न छाँनो होय ।
सेस रसातल, गगन धू, परगट कहिये सोय ॥७७॥

आवे नहीं इलोल, बोलण-चालणरी विविध।
टीटोड्याँरी टोल, राजहंसरी, राजिया ॥७८॥

जगमें दीठो जोय, हेक प्रगट विवहार म्हे ।
काम न मोटो कोय, रोटी मोटी, राजिया ॥७९॥

लिछमी कर हरि लार, हरने दध दीधो जहर ।
आडंबर इधकार राखे सारा, राजिया ॥८०॥

धोबो मुट्ठी धान माँगें ज्याँने ना मिले ।
पट काढे पकवान ना-ना करताँ, नाथिया ॥८१॥

आछा हुवे उमराव, हियाफूट ठाकर हुवै ।
जड़िया लोह जड़ाव रतन न फाबै, राजिया ॥८२॥

रीझयाँ देय न मोज, चूक्याँ चट चेतो करै ।
ज्याँ ठाकररी चोज रती न आवै, राजिया ॥८३॥

गुण विन ठाकर ठीकरो, गुण विन मीत गँवार ।
गुण विन चंदण लाकड़ी, गुण विन नार कुनार ॥८४॥

७७—छाँनो—गुप्त । धू—ध्रुव । परगट इ०—तो भी वे प्रकट रहते हैं ।

७८—आवै इ०—टिटिहरियोंकी मंडलीमें किसीको राजहंसका-सा बोल-
ालका ढंग नहीं आ सकता ।

७९—जोय—देखकर । दीठो—देखा । हेक—अेक । म्हे—हमने ।

८०—हरि—विष्णु । लार—पीछे । हरने—शिवको । दध—उदधि, समुद्र ।
धकार—खयाल, सम्मान ।

८१—जो माँगता है उसे धोबा या मुट्ठी भर धान भी नहीं मिलता पर
ा-ना करनेवालेके लिअे लोग झटपट पकवान निकालकर लाते हैं ।

८२—जड़िया इ०—लोहेमें जड़े हुअे रत्नोंकी तरह शोभा नहीं देते ।

८३—जो रीझनेपर इनाम नहीं देता पर कोई भूल होनेपर तुरंत सावधान
ो जाता है, उस ठाकुरके लिअे दिलमें रत्ती भर भी प्रेम नहीं होता ।

८४—ठीकरो—ठिकरा । लाकड़ी—साधारण लकड़ीके बराबर ।

चौंसठ दीवा, हे सखी, बारा रवी तपंत ।
घोर अँधारो तिण घरे, जिण घर सुत न रमंत ॥८५॥

(२)

मिरग न वाज्यो वायरो, अदरा न वूठ्यो मेह ।
जोवन न जायो बेटड़ो, तीनूँ हारी देह ॥८६॥
नींद न आवै तीन जण, कहो सखी, ते क्याह ।
प्रीत-विछोया, बहु-रिणा, खटकै वैर हियाह ॥८७॥
रण चडुण, कंकण बँधण, पुत्र वधाई चाव ।
अे तीनूँ दिन त्यागरा, कहा रंक कहा राव ॥८८॥
ध्रम जातां, धर पलटतां, त्रिया पड़ंतां ताव ।
अे तीनूँ दिन मरणरा, कहा रंक कहा राव ॥८९॥
माँग्या मिलै न च्यार, पूरब पूरा दत्त विन ।
विद्या, अर वर नार, संपत गेह, सरीर सुख ॥९०॥

८५—चौंसठ—चौसठ । दीवा—दीपक । बारा रवी—बारह सूर्य । रमंत—खेलता है ।

८६—मृग-नक्षत्रमें हवा नहीं चली, आर्द्रा-नक्षत्रमें पानी नहीं बरसा और यौवन-अवस्थामें पुत्र उत्पन्न नहीं किया तो ये तीनों व्यर्थ ही हुअे ।

८७—तीन मनुष्योंको निद्रा नहीं आती । हे सखी, कहो वे कौन हैं । एक तो प्रेमका विरही, दूसरा बहुत कर्जवाला, और तीसरा जिसके हृदयमें बैर खटक रहा है ।

८८—क्या रंक और क्या राजा—सबके लिअे ये तीन दिन दान करनेके हैं—(१) जब युद्धके लिअे चढ़ना हो, (२) जब विवाह-कंकन बँधे और (३) जब पुत्रोत्पत्तिकी बधाई तथा उत्सव होते हों ।

८९—क्या रंक और क्या राजा—सबके लिअे ये तीन दिन मरणके हैं—(१) जब धर्म जाता हो, (२) जब अपनी जमीन हाथसे जाती हो, और (३) जब स्त्रीपर विपत्ति पड़ती हो ।

९०—पूरब इ०—पूर्वके पूरे सुकृतोंके बिना । दत्त—दान । वर—अच्छी

नाज पुराणो, घी नयो, आग्याकारी नार ।
पंथ तुरी चढ चालणो, पुन्न-तणा फल च्यार ॥६१॥
साठी चावल, भैंस दुध, घर शिलवंती नार ।
चोथी पीठ तुरंगरी, सुरग-निसाणी च्यार ॥६२॥
लुखो भोजन, भू सुवण, घर कलिहारी नार ।
चोथा फाट्या कापड़ा, नरक-निसाणी च्यार ॥६३॥
कालर खेत, कसूत हल, घर कलखारी नार ।
मैंला जिणरा कापड़ा, नरक-निसाणी च्यार ॥६४॥
मीठा बोलण, नवि चलण, पर ओगण ढकि लीन ।
तीन्यूँ चंगा, नानका, चोथो हत्थाँ दीन ॥६५॥
धन, जोवन, अर ठाकरी, तिण ऊपर अविवेक ।
अै च्यारूँ भेळा हुवें, अनरथ करै अनेक ॥६६॥
सीतल, पातल, मंद गत, अलप अहार, निरोस ।
अै तिरियाँमें पाँच गुण, अै तुरियाँमें दोस ॥६७॥

६१—तुरी—घोड़ा । पुन्न-तणा—पुण्यके ।

६२—दुध—दूध । शिलवंती—शीलवती, सुशीला । पीठ—अर्थात् सवारी। सुरगनिसाणी—स्वर्गके लक्षण ।

६३—लूखो—रूखा । भू इ०—पृथ्वीपर सौना । कलियारी—कलहशीला । फाट्या—फटे हुए ।

६४—कालर—ऊसर । कसूत—सीधा न चलनेवाला । कलखारी—कलह करनेवाली । कपड़ा—कपड़े । निसाणी—चिन्ह ।

६५—नवि चलण—नम्र होकर चलना । पर इ०—दूसरेके दोषोंको छिपा देना । तीन्यूँ इ०—नानक कहते हैं कि तीनों अच्छे हैं । हत्थाँ दीन—हाथसे देना ।

६६—ठाकरी—ठकुराई, प्रभुता । भेळा—अेकत्र ।

६७—सीतल—शीतल स्वभाव । पातल—पतला होना । गत—चाल । निरोस—रोष न आना । अै—ये । तिरियाँ—स्त्रियों । तुरियाँ—घोड़ों ।

(३)

बल़ता तो दीपक भला, टल़ता भला विघन्न ।
गल़ता तो वैंरी भला, वल़ता भला सुदिन्न ॥९८॥

चावल़ तो चढ़ियो भलो, पड़ियो भलो ज मेह ।
भाग्यो तो वैंरी भलो, लाग्यो भलो ज नेह ॥९९॥

रिणतूटा सूरा भला, फाटा भला कपास ।
भागा भला अबोलणा, लागा चंदण-वास ॥१००॥

माता तो मैंगल़ भला, ताता भला तुरंग ।
जाता तो वैंरी भला, राता भला ज रंग ॥१०१॥

वैंगण तो काचा भला, पाकी भली अनार ।
प्रीतम तो पतला भला, जाडा जाट गिँवार ॥१०२॥

काचर, केल़ो, आमफल़, पीव, मित्र, परधान ।
इतरा तो पाका भला, काचा कोइ न काम ॥१०३॥

केल़ो, केरी, कामणी, पीव, मित्र, परधान ।
इतरा तो पाका भला, काचा नावैं काम ॥१०४॥

पाणी, राणी, पगरणी, पासो, पिसण, पलेंव ।
इतरा तो पतला भला, सत भाखै सहदेव ॥१०५॥

९८—बल़ता—जलते हुओ। टल़ता- दूर होते हुओ। गल़ता—नाश होते हुओ। वल़ता—लौटते हुओ। सुदिन्न—अच्छे दिन।

९९—चढ़ियो—चढ़ा हुआ (शुभ अवसरोंपर चावल चढ़ाया जाता है)।

१००—रिणतूटा—युद्धमें हत या आहत। अबोलणा—शत्रु। वास—सुगंध।

१०१—माता—मस्त। मैंगल़—हाथी। ताता—तेज। राता—लाल।

१०२—जाडा—मोटे।

१०३—काचर—कचरी। केल़ो—केला। पीव—पति। परधान—कामदार, दीवान। इतरा—इतने। पाका—पक्के, बड़ी उम्र के, दृढ़-स्नेही, वृद्ध, अनुभवी।

१०४—केरी—कच्चा आम। काचा—कच्चे। नावैं—नहीं आते।

१०५—पाणी—पानी। राणी—रानी। पिसण—दुष्ट, शत्रु

सेल, अरिंगण, पांगरण, पताल भला ज अेह।
इतरा तो जाडा भला, रूँख, कडूँबो, मेह ॥१०६॥
जवड़ो, चूड़ी जायफल, विड़ंग, सुपारी, वैण।
इतरा तो भारी भला, साह, धणी, अर सैण ॥१०७॥
कान, आंख, मोती, करम, गढ़, तड़, ढोल, भँडार।
अै फूटा किण कामरा, ताल, तोप, तरवार ॥१०८॥
खतर खेत खल काकड़ी, दाड़म भरम कपास।
फाटां फूल गुलाबरो, आत सुगंधी वास ॥१०९॥
मोडा, टोडा, चाकरा, चोथी विधवा नार।
इतरा तो भूखा भला, धाया करै खुवार ॥११०॥

(४)

सरवर सारू जल रहै, पिंड सारू परकत्त।
कर सारू कीरत रहै, मन सारू वरकत्त ॥१११॥
सोना वाया न नीपजै, मोती न लागै डाल।
रूप उधारा ना मिलै, भूल्या फिरो, जमाल ॥११२॥
चिंतामें बुध परखिये, टोटे परख त्रियाह।
सगा कुवेलां परखिये, ठाकर गुन्हो कियांह ॥११३॥

१०६—सेल—भाला। जाडा—मोटे, गहरे, घने। कडूँबो—कुटुंब।

१०७—साह—साहूकार। धणी—मालिक। सैण—मित्र।

१०८—करम—भाग्य। किण इ०—किस कामके।

१०९—भरम—भ्रम, अज्ञान।

११०—मोडा—सिर मुँडाये हुअे साधु। टोडा—ऊँट। चाकरा—चाकर। इतरा—इतने। धाया—पेट भरे हुअे। खुवार—खराबी, सत्यानाश।

१११—सारू—प्रमाण, अनुसार। परकत्त—प्रकृति। कर—हाथ, दान। वरकत्त—बरकत।

११२—वाया—बोनेसे।

११३—बुद्ध—बुद्धि। टोटे—धन-नाशके समय। सगा—संबंधी। कुवेलां—आपत्तिके समयमें। ठाकर—मालिक। गुन्हो—अपराध करनेपर।

साध सरावै सो सती, जती जोखता जाण।
रजव, साँचे सूरको, वैरी करै वखाण ॥१३१॥

हंस तरंतो परखियै पाणी नदी वहंत।
सोनो कसी परक्खियै माणस वात कहंत ॥१३२॥

डूम न जाणै देवजस, सूम न जाणै मोज।
मुगल न जाणै गउ-दया, चुगल न जाणै चोज ॥१३३॥

वड़ बुगलेसूँ वीगड़ै, वानरसूँ वण-राय।
गाँव कु-ठाकर वीगड़ै, वंस कपूताँ जाय ॥१३४॥

रोळ विगाड़ै राजने, मोल विगाड़ै माल।
सनै-सनै सरदाररी, चुगल विगाड़ै चाल ॥१३५॥

सूरज-वैरी गहण है, दीपक वैरी पोन।
जीको वैरी काळ है, आताँ रोकै कोण? ॥१३६॥

मितरसूँ अंतर नहीं, वैरीसूँ नहिं नेह।
प्रीतमसूँ पड़दो नहीं, जिण निरखी सब देह ॥१३७॥

चंदह वैरी वादळो, जळ—वैरी सेवाळ।
माणस-वैरी नींदड़ी, माछाँ वैरी जाळ ॥१३८॥

१३१—जोखता—स्त्री। जती इ०—यती वही है जिसे स्त्री सराहे। वखाण—तारीफ।

१३२—तैरता हुआ। कसी—कसौटी।

१३३—डूम—शृंगार रसके गीत गानेवाली अेक नीच जाति। देवजस—भक्तिरसके भजन। मुगल—मुसलमान। चोज—सुभाषित।

१३४—वड़—वड़का पेड़। वणराय—जंगल। जाय—नष्ट होता है।

१३५—रोळ—शासनप्रबंधका अभाव। मोल—मोलभाव।

१३६—गहण—ग्रहण। पोन—पवन। आताँ—आते हुअे।

१३७—अंतर—फर्क, दुराव। पड़दो—पर्दा, छिपाव।

१३८—सेवाळ—सेवार घास। माणस—मनुष्य। माछाँ—मछलियोंका।

ठग कामेती, ठोठ गुर, चुगल न कीजै सेण ।
चोर न कीजै पाहरू, ब्रहसपतीरा वैण ॥१३९॥
घोड़ां दूभर भादवो, भैंसां दूभर जेठ ।
मरदां दूभर पीसणो, नारी दूभर पेट ॥१४०॥
वातां रीझै वाणियो, रागांसू रजपूत ।
बामण रीझै लाडवां, बाळक रीझै भूत ॥१४१॥
रागांरो पति कान्हड़ो, धरतीरो पति इंद ।
तारांरो पति चंद्रमा, संतन पति गोविंद ॥१४२॥

(५)

विद्या,भलपण, समँद-जल, ऊँच तणो-आकास ।
ऊतर-पंथ, र देवगत, पार नहीं प्रिथुदास ॥१४३॥
सरणाई सुहड़ा, केसरि-केस, भुजंगमणि ।
चढसी हाथ मुवाह सती-पयोधर,क्रपण-धन॥१४४॥
साध, सती, अर सूरमा, ग्यानी, अर गजदंत ।
उलट पूठ फेरै नहीं, जो जुग जाय अनंत ॥१४५॥

१३९—कामेती—कामदार, प्रधान, दीवान । ठोठ—मूर्ख । सेण—मित्र । पाहरू—पहरेदार । ब्र.हसपती—बृहस्पति । वैण—कथन ।

१४०—दूभर – असह्य । भादवो—भाद्रपदका महीना । पेट—गर्भ ।

१४१—वाणियो—बनिया । रागांसूँ—गानेसे । बामण—ब्राह्मण । लाडवां—लड्डुओंसे । भूत—भूतों, परियों आदिकी कहानियोंसे ।

१४२—इंद—इंद्र ।

१४३—भलपण—भलाई । समँद—समुद्र । ऊँच इ०—आकाशकी ऊँचाई । ऊतरपंथ—उत्तरदिशाका मार्ग । देवगत—भाग्यकी गति । पार इ०—इनका कोई पार नहीं ।

१४४—वीरोंका शरणग्रहण, सिंहके बाल, सांपकी मणि, पतिव्रताके स्तन और कंजूसका धन—इतनी चीजें इनके मरनेके बाद ही दूसरोंके हाथ चढ़ सकती हैं (दूसरोंको मिल सकती हैं) ।

१४५—उलट इ०—चाहे अनंत युग बीत जायँ तो भी पीछे नहीं हटते ।

(६)

चंगा माढ़ू घर रह्यां अै तिन अवगुण होय।
कपड़ा फाटै, रिण वधै, नांव न जाणै कोय ॥१६१॥
जोबन दरब न खट्टिया ज्यों परदेसां जाय।
गमिया यूँ ही दीहड़ा मिनख-जमारे आय ॥१६२॥
दीयेका गुण तेल है, दीया मोटो वात।
दीया जगमें चानणा, दीया चालै साथ ॥१६३॥
जो मत पाछे संचरै, सो मत पहली होय।
काज न विणसै आपणो, दुरजसा हँसै न कोय ॥१६४॥
भूम परक्खो, हे नरां, कहा परक्खो वींद।
भुंय विन भला न नीपजे कण, तृण, तुरी, नरींद ॥१६५॥३१७॥
॥३३८॥

१६१—स्वस्थ पुरुषके घर पड़े रहनेसे ये तीन हानियां होती हैं—(१) कपड़े फटते हैं, (२) ऋण वढ़ता है, और (३) कोई नाम भी नहीं जानता (इसलिये घर में न पड़े रहकर परदेश जाना चाहिये)।

१६२—जिन्होंने परदेश जाकर युवावस्थामें धन नहीं कमाया उन्होंने मनुष्य-जन्म लेकर दिन योंही (व्यर्थ) गँवा दिये।

१६३—दीया—(१) दीपक (२) दिया हुआ (दान किया हुआ)। चानणा—प्रकाश, उजाला। साथ इ०—मरनेके बाद साथ चलता है।

१६४—जो बुद्धि बादमें जाकर (काम बिगड़ने पर) आती है वह यदि पहले ही आ जाय तो न अपने कार्यका नाश हो और न शत्रु हँसी करें।

१६५—हे मनुष्यों, भूमि (स्त्री) की परीक्षा करो, वरकी क्या परीक्षा करते हो (वरके लिये परीक्षा करके अच्छी कन्या ढूँढ़ो, कन्याके लिये अच्छे वरको ढूँढ़नेकी आवश्यकता नहीं—यदि कन्या अच्छी है तो वर चाहे जैसा हो) ? क्योंकि जबतक भूमि अच्छी नहीं होगी तबतक उससे उत्पन्न अनाज, घास, घोड़ा और मनुष्य भी अच्छे नहीं हो सकते (अच्छे अनाज और घासके लिये अच्छी भूमिकी आवश्यकता है और अच्छे घोड़े और मनुष्यके लिये माताका अच्छा होना आवश्यक है)। भूमि—क्षेत्र, खेत, माता।

१—सामान्य

जननी, जण अहड़ा जणे, कै दाता कै सूर।
नातर रहजे वाँझड़ी, मती गमाजे नूर ॥ १ ॥
इला न देणी आपणी, रणखेतां भिड़ जाय।
पूत सिखावै पालणे, मरण वड़ाई माय ॥ २ ॥
हूं बलिहारी रणियाँ, जाया वंस छतीस।
सेर सलूणो चूण लै, सीस करै वगसीस ॥ ३ ॥
आहव नै आचार वेळ्यां मन आघो वधै।
समझ कीरती सार, रँग छै ज्यांनै, राजिया ॥ ४ ॥
झालर वाज्यां भगतजन, बंब वज्यां रजपूत।
अेतां ऊपर ना उठै, आठूँ गांठ कपूत ॥ ५ ॥
सिंघां देस-विदेस सम, सिंघां किसा वतन्न ?
सिंघ जका वन संचरै, वै सिंघांरा वन्न ॥ ६ ॥

१—सामान्य

१—हे जननी, यदि पुत्र जने तो ऐसा जनना, जो या तो दाता हो या शूरवीर ; नहीं तो बांझ रहना पर निकम्मे पुत्रको जनकर अपने यौवनको नष्ट न करना।

२—अपनी जमीन किसीको न देना और रणक्षेत्रमें भिड़ जाना—इस प्रकार माता पलनेमें ही (झूलते हुअे) पुत्रको मरने की महिमा सिखाती है।

३—मैं राजपूत-रानियों—वीरनारियों—पर बलिहारी जाता हूँ जिन्होंने छत्तीस वंशके राजपूत वीरोंको जन्म दिया जो नमकके साथ सेर चून लेकर अपना सिर मालिकके लिअे दे देते हैं।

४—युद्ध और सदाचार पालनके समय जिनका मन, इन्हींको कीर्त्तिका सार समझकर, आगे बढ़ता है उनको धन्य है।

५—झालरके बजनेपर भक्त-जन और युद्धका नगारा बजनेपर राजपूत उठ बैठते हैं। इतनेपर जो नहीं उठते वे पूरे कपूत हैं।

६—सिंहोंके लिअे देश और विदेश बराबर हैं। सिंहोंके कौन-से स्वदेश होते हैं ? सिंह जिन वनोंमें पहुँच जाते हैं वे ही वन सिंहोंके स्वदेश हो जाते हैं।

केहर कुंभ विदारियो, गज-मोती खिरियाह।
जाणे, काळे जळदसूँ, ओळा ओसरियाह ॥ ७॥
केहर हाथळ घाव कर, कुंजर ढिगलो कीध।
हंसाँ नग, हरनूँ तुचा, दाँत किराताँ दीध ॥ ८॥
सादूळो वन संचरै, करण गयंदाँ नास।
प्रबळ सोच भँवराँ पड़े, हँसाँ होय हुलास ॥ ९॥
घाल घणा घर पातळा, आयो थहमें आप।
सूतो नाहर नींद सुख, पोहरो दियो प्रताप ॥१०॥
गाज इतै, ऊखेल गज, माँमळ दळ तरु-मूळ।
जागे नह थहमें जितै, सजि हाथळ सादूळ ॥११॥

७—सिंहने हाथीका कुंभस्थल फोड़ दिया जिससे गजमोती बिखर पड़े। अैसा जान पड़ता है मानो काले बादलसे ओले बरसने लगे हों।

८—सिंहने अपनी हथेलीसे घाव करके हाथीका ढेर कर दिया और हंसों-को मोती, महादेवजीको गज-चर्म और भीलोंको गजदंत दिये।

९—गजेन्द्रोंका नाश करनेवाला शार्दूल (सिंह) वनमें फिर रहा है। भँवरोंको भारी चिंता होने लगी है और हंसोंको हर्ष हो रहा है (भँवरे मद-जलके लोभसे हाथीके माथेको घेरे रहते हैं—हाथीके मरनेसे उन्हें मद-जल नहीं मिलेगा इसलिअे वे चिंतित हो रहे हैं; और हंसोंको मोती मिलेंगे इसलिअे वे हर्षित हो रहे हैं)।

१०—बहुत-से घरों को पतला बनाकर (अर्थात् बहुत-से जीवों को मारकर) सिंह अपने घरमें आया और सुखपूर्वक निद्रा में सो रहा। उसका पहरा स्वयं उसका प्रताप देने लगा (उसके प्रतापसे भय खाकर कोई शत्रु उसे हानि पहुँचानेके लिअे नहीं आ सकता—सच्चे वीरको पहरेदारोंकी कोई आवश्यकता नहीं होती।)

११—हे उद्धत हाथी, यहाँ पेड़के नीचे पत्तोंके बीचमें तू तब तक गरजता रह जबतक अपनी गुफामें वह सिंह, हथेलीको ऊँचा करता हुआ, नहीं जाग उठता है (उसके जागते ही तेरा गरजना बन्द हो जायगा)

राहव, उठ, कमाणगर, मूँछ मरोड़, म रोय।
मरदाँ मरण हक है, रोणा हक न होय ॥१२॥
कटकाँ तवल खुड़क्रिया, होय मरदाँ हल्ल ।
लाज कहै, मर जीवड़ा, वैस कहै घर चल्ल ॥१३॥
इक कर वैस विलग्गियै, इक कर लग्गिय लाज।
वय कह जोगिणपुर चलहु, लाज कहै भिड़ राज ॥१४॥
अण-विस्वासी जीवड़ा, कायर किम दौड़ंह ।
मरसी कोठे लोहरे, ऊवरसी चौड़ंह ॥१५॥
काची गार किले, साँचा माँही सूरमा ।
भेल्या केम भिले, राजाँ कोप्याँ, राजिया?॥१६॥
कारण कटक न कीध, सखरा चाहीजे सुपह।
लंक विकट गढ लीध, रींछ-वानराँ, राजिया ॥१७॥

१२—हे धनुषधारी राहव, तू उठ और अपनी मोंछमें बल दे, रो मत क्योंकि मर्दोंके लिअे मरना उचित है, रोना उचित नहीं।

१३—सेनामें नगाड़े बज उठे और वीरोंमें हल्ला हो रहा है। इस समय लोक-लज्जा तो यह कहती है कि, अरे जीव, प्राण दे दे पर जीवन (की माया) कहती है कि, अरे, घर चला चल।

१४—अेक ओर जीवनकी आशा लगी है और अेक ओर लोकलज्जा लगी है। जीवनकी आशा कहती है कि दिल्ली वापिस लौट चलो और लज्जा कहती है कि अरे तुम भिड़ जाओ।

१५—हे विश्वास-हीन जीव, अरे कायर, क्यों दौड़ता है? लोहेकी कोठीमें जाकर भी मरना पड़ेगा; और खुलेमें रहकर भी बच सकता है (या, यहाँ युद्धमें यशरूपी देह पाकर—स्पष्ट ही बच जायगा)।

१६—किला चाहे कची गारसे ही बना हो पर यदि भीतर रहनेवाले सच्चे शूरवीर हैं तो, वह राजाओंके कुपित हो (कर चढ़ाई कर) ने पर भी, किस प्रकार विध्वस्त हो सकता है?

१७—सेनाका कुछ कारण नहीं (सेना चाहे जैसी हो), उसके स्वामी शूरवीर होने चाहिअे। देखा लंका जैसे विकट किलेको साधारण रीछ-बन्दरोंने ले लिया।

सूरा सोइ पिछाणियै, लड़ै धरमके हेत।
पुरजा-पुरजा कट पड़ै, कदै न छोडै खेत ॥१८॥
कृपण जतन धनरो करै, कायर जीव-जतन्न।
सूर जतन उणरो करै, जिणरो खाधो अन्न ॥१९॥
नर, जिण सिर गालत्र नहीं दुसमणरा सो दाव।
बे-पढियां ही, बांकला, वे पढियारां राव ॥२०॥
जसवंत गरुड़ न उड्डही तालो त्रिजड़ तणेह।
हांकलियां ढूला हुवै पंछी अवर पुणेह ॥२१॥
भूंडण तो भूंडा जणै, हिरणी जणै सुगट्ठ।
पान खड़क्के उठ चलै, थागड़ चालै थट्ठ ॥२२॥
दस जूता, दस जूतणा, दस पाखती वहंत।
अेकण धवला वायरा खैंचाताण करंत ॥२३॥

१८—उसे ही शूर समझना चाहिअे जो धर्मके लिअे लड़ता है और जो, चाहे पुर्जे-पुर्जे होकर कट पड़े तो भी, युद्धक्षेत्रसे नहीं भागता।

१९—कंजूस अपने धनकी रक्षाका यत्न करता है और कायर अपने जीवकी रक्षाका। पर शूरवीर उसकी रक्षाका यत्न करता है जिसका अन्न उसने खाया है (शूर प्राण देकर भी नमकका बदला चुकाता है)।

२०—बांकीदास कहते हैं कि अैसे मनुष्य, जिनपर शत्रुका दाँव नहीं विजय पाता, बिना पढ़े हुअे ही पढ़े हुओंके राजा हैं।

२१—जसवंतसिंह कहते हैं कि तलवारकी धमक होनेपर भी गरुड़ पक्षी नहीं उड़ता पर दूसरे पक्षी हाँक लगाते ही भयभीत हो जाते हैं।

२२—शूकरी कुरूप पुत्रोंको जनती है और हिरनी सुन्दर संतानको जन्म देती है पर ये (हिरनीके बच्चे) पत्तेका खुड़का होते ही भाग छूटते हैं और वे (शूकरीके बच्चे) बड़ी शानके साथ धीरे-धीरे चलते हैं (सुन्दर किंतु कायर संतानसे कुरूप किंतु वीर संतान कहीं अच्छी)।

२३—दस बैल जुते हुए हैं, दस जोतनेको हैं और दस पासमें खाली चल रहे हैं। इतना होनेपर भी एक धवले बैलके बिना सब खींचातान ही कर रहे हैं (काम ठीकसे नहीं होता)।

गांधारी सो जनमिया, कुंता पाँच जणेह।
वै पाँचूं रण जीतिया, घणचक्क काह करेह ? ॥२४॥
दिन-दिन भोळो दीसतो, सदा गरीबी सूत।
काकी कुंजर काटतां जाणवियो जेठूत ॥२५॥
ढोल सुणंतां मंगळी, मूंछां भूंह चढंत।
चँवरीमें पोछाणियो, कँवरी मरणो कंत ॥२६॥
ग्रीव नमाड़ै देखणो, करणो सत्रु सिरांह।
परणंतां धण परखियो, ओछी ऊमर नाह ॥२७॥
मैं परणंती परखियो, तोरणरी तणियांह।
घर-धण लांबी पहरतां, पहरै घण जणियांह ॥२८॥
मैं परणंती परखियो, मूंछां भिड़ियो मोड़।
जासो सुरग न अेकलो, जासी दळ संजोड़ ॥२९॥

२४—गांधारीने सौ पुत्र जने और कुन्तीने केवल पांच। पर उन पांचोंने ही युद्धमें विजय पाई। व्यर्थ भीड़से क्या लाभ ?

२५—जेठका लड़का अपनी चाचीको प्रतिदिन भोलाभाला और गरीब स्वभावका दिखाई देता था परंतु आज उसे हाथियोंको काटता हुआ देखकर चाचीने उसकी वास्तविकताको जाना।

२६—मांगलिक विवाह-वाद्यको सुनकर वरकी मोंछें भौंहों से जा लगती हैं, ऐसे पतिको देखकर वधूने विवाह-मंडपमें ही जान लिया कि वह मरनेवाला (प्राणोंकी पर्वाह न करनेवाला) है।

२७—वर गर्दन नीची करके देखनेवाला और शत्रुओंको विजय करनेवाला है। ऐसे वरको देखकर वधूने विवाहके समय ही जान लिया कि यह कम आयु-वाला है (युद्धमें पीछे हटनेवाला नहीं अतः शीघ्र ही मारा जायगा)।

२८—मैंने विवाहके समय तोरणकी तणियोंमें ही पतिकी परीक्षा करली कि यदि उसकी घरवाली लांबी नामका शोक-वस्त्र पहनेगी तो पहननेवाली वह अकेली ही नहीं होगी और भी बहुत सी स्त्रियां उसे पहनेंगी (अर्थात् वह अकेला नहीं मरेगा, कइयोंको मारकर मरेगा।

२९—मैंने विवाहके समय देखा कि पतिका मोड़ (विवाहका मौर) मूँछोंसे लगा हुआ है अतः मैंने जान लिया कि वह स्वर्ग जाते समय अकेला नहीं जायगा, दल सजाकर जावेगा (युद्धमें कितनोंको मारकर मरेगा)।

में परणंती परखियो, नाह भरे वळ नाड़।
पड़ै न रणमें अेकलो, पड़सी केता पाड़ ॥३०॥
में परणंती परखियो, साजन साचे मन्न।
खाग-तणे वळ खावसी अधपतियाँरो अन्न ॥३१॥
में परणती परखियो, वागां मांहि सनाह।
लायो साथ लिखायकर ओछी ऊमर नाह ॥३२॥
सखी, हमीणे कंथरी पाई या परतीत।
हारयो घरां न आवसी, आसी ओ रणजीत ॥३३॥
सखी, हमीणे कंथरी पूरी या परतीत।
कै जासो सुर-द्रंगड़े, कै आसी रणजीत ॥३४॥
सखी, हमीणे कंथरी, उरसां खाग अड़ै।
पर दळ ऊभां नह पड़ै, परदळ जीत पड़ै ॥३५॥

३०—मैंने विवाहके समय देखा कि पतिके माथेमें बल पड़े रहे हैं अतः मैंने जान लिया कि (युद्धभूमिमें) वह अकेला नहीं गिरेगा किंतु कितनोंको गिराकर तब गिरेगा।

३१—मैंने विवाहके समय ही पतिकी परीक्षा कर ली कि वह सच्चे मन वाला है और अपनी तलवारके बलसे राजाओंका अन्न खावेगा।

३२—मैंने विवाहके समय पतिकी परीक्षा की। वह वरके जामेके भीतर कवच पहने था। अतः मैंने जान लिया कि पति साथमें थोड़ी आयु लिखाकर लाया है।

३३—हे सखि, मैंने अपने पतिका यह विश्वास पा लिया है कि वह हारा हुआ घर कभी नहीं आवेगा, आवेगा तो युद्धको जीतकर ही आवेगा।

३४—हे सखि, मेरे पति का यह पूरा भरोसा है कि या तो वह स्वर्ग जायगा या युद्धको जीतकर ही घर आवेगा।

३५—हे सखि, मेरे पतिकी तलवार छातीसे भिड़ रही है। जब तक शत्रु-की सेना खड़ी है तब तक वह नहीं गिरेगा, वह शत्रुकी सेनाको जीतकर ही युद्धभूमिमें गिरेगा।

नाह न आणी नींदमें अेडी ठोड़ अँगूठ ।
सो, सजनी, किम देयसी, परदल भिड़ियाँ पूठ ॥३६॥
सखी, तम्हीणा कंथने घेरयो घणाँ जणांह ।
सिर वहुराँ, मुख मंगणाँ, वैंरी चहूँ वलांह ॥३७॥
वित वहुराँ, दत मंगणाँ, वैंरी खाग-झलांह ।
साराँने चूकावसी, जे ऊभो कुशलांह ॥३८॥
भाभी, देवर अेकलो सोचीजै न लगार ।
मूझ भरोसो नाहरो, फौजाँ ढाहणहार ॥३९॥
अह भग्गा पारक्कड़ा, तो, सखि, मूझ पियेण ।
अह भग्गा अम्हे-तणा, तो तिह जूझ पड़ेण ॥४०॥
जो मूवा तो अत भला, जो उबरया तो सार ।
येहुँ प्रकाराँ, हे सखी, मादल घूमैं वार ॥४१॥

३६—पतिने नींदमें भी अँगूठेकी ठौरपर अेड़ी नहीं दी। हे सखी वह, शत्रुकी सेनासे भिड़नेपर, पीठ कैसे देगा ?

३७—हे सखी, तुम्हारे कंतको बहुत लोगोंने घेर लिया है—सिरको महाजनोंने, मुखको याचकोंने, और वैरियोंने चारों ओरसे ।

३८—(ऊपरवाले दूहेका उत्तर) यदि वह कुशलपूर्वक खड़ा रहा तो सबको चुका देगा—महाजनोंको धनसे, याचकोंको दानसे, और शत्रुओंको खड़गकी ज्वालाओंसे ।

३९—(देवरानीका कथन जेठानीके प्रति) हे भाभी, यह मत सोचना कि देवर अकेला है। मुझे अपने पतिका पूरा भरोसा है कि वह सेनाओंका समूल विध्वंस करनेवाला है ।

४०—हे सखी, यदि शत्रुओंके सैनिक भागे हैं तो मेरे पतिके कारण। और यदि हमारे सैनिक भागे हैं तो अवश्य ही वह युद्धमें वीरगतिको प्राप्त हुआ है ।

४१—युद्धमें पति यदि मर गया तो बहुत अच्छा है और यदि बच गया तो फिर क्या कहना । हे सखी, दोनों प्रकार से द्वारपर हाथी घूमेंगे (उत्सव होगा)।

ढोल वजंतां, हे सखी, पति आया मुझ लेण।
वागां ढोलां हूँ चली, पतिरो बदलो देण ॥४२॥

साईंसूँ सांची रहूँ, वाज, वाज, रे ढोल।
पंचनमें मोरी पत रहै, सखियनमें रह बोल ॥४३॥

पंथी, एक सँदेसड़ो, बावलने कहियाह।
जायां थाल न वज्जिया, टामक टहटहियाह ॥४४॥

धीर नगारो राजरो, गह भरियो गाजे।
दोख्यांरा मन औधकै, सोख्यांरा छाजे ॥४५॥

कंता, रिणमें पैसतां तू मत कायर होय।
तुम्हे लज्ज, मुझ मेहणो, भलो न भाखै कोय ॥४६॥

सूरा, रणमें जायकै लोहा करो निसंक।
ना मुझ चढै रँडापणो, ना तुझ चढे कलंक ॥४७॥

४२—हे सखी, विवाहके समय पति ढोल बजाता हुआ मुझे लेने आया था। आज मैं उसका बदला चुकानेके लिअे ढोल बजाती हुई उसके साथ जा रही हूँ (सती होनेके लिअे)।

४३—हे ढोल, तू बारबार बज, मैं अपने स्वामीके प्रति सच्ची रहूँ, पाँच लोगोंमें मेरी प्रतिष्ठा रहे, और सखियोंमें मेरा नाम रह जाय।

४४—हे पथिक, मेरा अेक छोटा-सा संदेशा पितासे जाकर कह देना कि मेरे जन्मके समय तो तुमने थाली भी नहीं बजाई थी पर आज मेरे लिअे मोटे-मोटे ढोल बज रहे हैं (इस प्रकार तुम्हारा नाम भी मैंने समुज्ज्वल किया है)।

४५—पत्नीका कथन वीरके प्रति—तुम्हारा गंभीर नादवाला नगाड़ा गम्भीर स्वरसे गरज रहा है जिसको सुनकर शत्रुओंके मन चौंक उठते हैं और मित्रोंके मन उल्लसित होते हैं।

४६—हे कंत, रणमें प्रवेश करते समय तुम कायर मत हो जाना। इससे तुम्हें लज्जा उठानी पड़ेगी, मुझे ताना मिलेगा, और कोई भी इसे अच्छा नहीं बतावेगा।

४७—हे शूर, रणमें जाकर निःशंक होकर हथियार चलाओ जिससे न तो मुझे वैधव्य भोगना पड़े और न तुम्हें कलंक लगे।

भागे मत तूँ, कंथड़ा, तो भाग्ये मुझ खोड़ ।
मारी संग सहेलड़्यां, ताली दें मुख मोड़ ॥४८॥
अमल कचोलां ऊझलै, होदां केसर रंग ।
पीव, जके घर जांवतां, सीस न लीजै संग ॥४९॥
कंथा, रणमें पैसिकै, कांइ जुवै छै साथ ।
साथी थारे तीन है,—हियो, कटारी, हाथ ॥५०॥

२—वीर क्षत्राणीका उपालंभ

मतवाला हो पोढग्या, सुधबुध दीन्ही भूल ।
पर-हाथांरा हो गया, या हिड़दामें सूल ॥ १ ॥
दुसमण देसां लूँटकर ले ज्यावै परदेस ।
राजन, चुड़ल्यां पहरलो, धरो जनानो भेस ॥ २ ॥
तनपर साड़ी ओढकर, महलां बैठा जाय ।
अन्यायी दिन-दिन अठे जोर जमाता जाय ॥ ३ ॥

४८—हे प्यारे कंत, तुम युद्धभूमिमें जाकर मत भागना । तुम्हारे भागनेसे मुझे कलंक लगेगा—मेरी साथ की सहेलियां मुख फिरा-फिराकर ताली बजावेंगी (मेरा उपहास करेंगी) ।

४९—कटोरेमें अफीम उछल रहा है और हौदोंमें केशरिया रंग; हे प्रियतम, उस घरको (युद्धभूमिको) जाते समय सिरको साथमें नहीं लेना चाहिये ।

५०—हे कंत, रणमें प्रवेश करके अब साथको क्या देखते हो ? तुम्हारे तीन बड़े भारी साथी हैं—वीर हृदय, कटारी और कटारी चलानेवाला हाथ ।

२—वीर क्षत्राणीका उपालम्भ

१—पोढग्या—सो गये । पर-हाथारां—पराधीन । हिड़दा—हृदय । सूल दुःख ।

३—महलां—महलोंमें, जनानेमें । जोर ज०—अपनी प्रबलता और प्रभुता जमाते जाते हैं ।

दूध लजायो मायरो, कीनो देस गुलाम।
कै सलाम खुद झेलता, कर दिया खुद सलाम ॥ ४ ॥
कहाँ गई वा वीरता, कहाँ रजपूती शान।
टुकड़ाँरा मोजात हो, खो बैठ्या अभिमान ॥ ५ ॥
रजपूती सत खो दियो, सतहीणा सरदार।
पतहीणा रजपूत हो, मतहीणा भरतार ॥ ६ ॥
पराधीन भारत हुयो, प्यालाँरी मनुवार।
मात्रभूम परतंत्र हो, वार-वार धिरकार ॥ ७ ॥
तीतर लवा वटेर अर, सुस्सा सूर सिकार।
इणहाँ रजपूती नहीं, नाम सिंघ रखणार ॥ ८ ॥
विष खावो, कै शरण लो सरवरियारी थाह।
कै कंठाँ बिच घाल लो घाघरियारी बाह ॥ ९ ॥
वीरपणो धारण करो या कायरता छोड़।
वैरी लोहो मान ले, मूँडो लेवै मोड़ ॥१०॥
वस्त्र कसूमल पहर लो, कसो कमर तलवार।
बरछी और कटार ले, हुवो तुरँग-असवार ॥११॥

४—मायरो—माताका। का—या तो। झेलता—स्वीकार करते थे। कर इ०—स्वयं सलाम करने लगे।

५—मोजात—मुहताज।

७—हुयो—हुआ। प्यालाँरी—शराबके प्यालोंकी। मनवार—मनुहारसे (शराब पीते-पिलाते हुए)। मात्रभूम—मातृभूमि। धिरकार—धिक्कार।

८—इणहाँ—इनमें। नाम इ०—तुम तो 'सिंह' यह नाम धारण करनेवाले हो (राजपूतोंके नामोंके अंतमें 'सिंह' पद होता है)।

९—सरवरिया इ०—सरोवरकी गहराईमें। कै—अथवा। घाल लो—डाल लो। घाघरिया इ०—लहँगा पहन लो।

१०—लोहो मान लै—लोहा मान लें, पराजय मान लें। मूँडो इ०—मुख मोड़ लें, पीठ दिखा दें।

११—कसूमल—कुसुमी रंगके।

पाछा फिर मत झाँकज्यो, पग मत दीज्यो टार।
कट भल जाज्यो खेतमें, पर मत आज्यो हार ॥१२॥
सीख राजरी होय, तो हूँ भी चालूँ साथ।
दुसमण भी फिर देख ले म्हाँरा दो-दो हाथ ॥१३॥
यो सुवाग खारो लगै, जद कायर भरतार।
रंडापो लागै भलो, होय सूर सिरदार ॥१४॥६४॥

३—विशेष वीर

(क)—उदयपुर (मेवाड़)

१—महाराणा प्रतापसिंह

माई, ओहा पूत जण, जेहा राण प्रताप।
अकबर सूतो ओधकै, जाण सिराणे साँप ॥ १ ॥
धर वाँकी, दिन पाधरा, मरद न मूकै माण।
घणाँ नरिंदाँ घेरियो रहै गिरंदाँ राण ॥ २ ॥
पातल राण, प्रवाड़ मल, वाँकी घड़ा-विभाड़।
खूँदाड़ै कुण है खुराँ तो ऊभाँ मेवाड़ ? ॥ ३ ॥

१२—भल—भले ही, चाहे। खेतमें—रणक्षेत्रमें। आज्यो—आना।

१३—सीख—आज्ञा। राजरी—आपकी। हूँ—मैं। दो-दो हाथ—दो-दो हाथ करना, वीरताका युद्ध।

१४—यो इ०—जब पति कायर हो तो यह सौभाग्य भी बुरा लगता है पर यदि वह शूरवीर हो तो वैधव्य भी अच्छा है।

३—विशेष वीर

१—हे माता, ऐसे पुत्रोंको जन्म दे जैसा राणा प्रताप है जिसके कारण प्रतापी सम्राट अकबर सोता हुआ चौंक पड़ता है मानो सिरहाने साँप आ बैठा हो।

२—उसकी भूमि अत्यन्त विकट है, उसके दिन सानुकूल हैं, वह वीर अपने मानको नहीं छोड़ता, वह राणा अनेक राजाओंसे घिरा हुआ पहाड़ोंमें रहता है।

३—विकट सेनाओंका नाश करनेवाले अद्भुतकर्मा वीर राणा प्रताप, तेरे खड़े हुए मेवाड़को कौन खुरोंसे रौंद सकता है ?

पातल पाघ प्रवांण सांची सांगाहर-तणी ।
रही सदालग, राण, अकबरसूँ ऊभी अणी ॥ ४ ॥
चोथो, चीतोड़ाह, बांटो बाजंती-तणो ।
माथे, मेवाड़ाह, थारे राण, प्रतापसी ॥ ५ ॥
अइहो, अकबरियाह, तेज तुहालो तुरकड़ा ।
नम-नम नीसरियाह, राण बिना सह राजवी ॥ ६ ॥
सह गावड़िये साथ अेकण बाड़े बाड़ियो ।
राण न मानी नाथ, तांडे सांड प्रतापसी ॥ ७ ॥
पहु गोधलिया पास, आ लूधा अकबर अणी ।
राणो खिमे न रास प्रघलो सांड प्रतापसी ॥ ८ ॥

महाराज पृथ्वीराजका पत्र

पातल जो पतसाह बोलै मुख हूँतां वयण ।
मिहर पिछम दिस मांह ऊगे कासपराव-उत ॥ ९ ॥

४—सांगाके वंशज प्रतापकी पगड़ी ही सच्ची और प्रामाणिक है जो अकबर के सामने सदैव सीधी खड़ी रही ।

५—हे चित्तोड़वाले, बजती हुई घड़ियालका चौथा भाग (पावघड़ी अर्थात् पाघड़ी यानी पगड़ी), हे मेवाड़वाले राणा प्रताप, तुम्हारे ही सिरपर है ।

६—अरे तुर्क अकबर, तेरा तेज अद्भुत है जो एक राणाके सिवाय सारे राजा झुक-झुककर तेरे सामनेसे निकले ।

७—अकबरने गायोंके सब साथको अेक ही बाड़ेमें बन्द कर दिया पर राणा रूपी सांड़ने उसकी नाथ (नाकका बंधन) को नहीं स्वीकार की और खड़ा हुआ गर्ज रहा है ।

८—बैलोंके समान राजा लोग अकबरके आदामें बँध गये परन्तु राणा-रूपी जबर्दस्त सांड़ उसकी रस्सीको सहन नहीं करता ।

९—यदि प्रताप मुँहसे अकबरके लिये बादशाह यह शब्द कहे तो राजा कश्यपका पुत्र सूर्य पश्चिम दिशामें उदय हो (जैसे सूर्यका पश्चिममें उगना असंभव है वैसे ही प्रतापका अकबरको बादशाह कहकर पुकारना असंभव है) ।

पटकूँ मूँछाँ पाण, कै पटकूँ निज तन करद ।
दीजे लिख, दीवाण, इण दो महली वात इक ॥१०॥

महाराणा प्रतापका उत्तर

तुरक कहासी मुख पते इण तनसूँ, इकलंग ।
ऊगै ज्यांही ऊगसी प्राची बीच पतंग ॥११॥
खुसी-हूंत, पीथल कमध, पटको मूँछाँ पाण ।
पछटण है जेते पतो कलमाँ सिर कैवाण ॥१२॥
साँग मूँड सहसी स को, सम-जस जहर सवाद ।
भड़ पीथल, जीतो भलाँ बैण तुरकसूँ वाद ॥१३॥

आढा दुरसा कृत—

अकबर घोर अँधार, ऊँवाणा हिंदू अवर ।
जागै जग-दातार पोहरै राण प्रतापसी ॥१४॥
अकबर समँद अथाह, तिहँ डूबा हिंदू-तुरक ।
मेवाड़ो तिण माँह पोयण-फूल प्रतापसी ॥१५॥

१०—हे अेकलिंगके दीवान महाराणा, मैं अपनी मूँछोंपर ताव दूँ अथवा अपने शरीरपर तलवार चला लूँ ? इन दोनोंमें से अेक बात लिख दो ।

११—भगवान् अेकलिंग इस शरीर (अर्थात् जन्म) में प्रतापके मुखसे अकबरके लिअे तुर्क शब्द ही कहलवायेंगे और सूर्य जहां उगता है वहीं, पूर्व दिशामें, उगेगा ।

१२—हे राठोड़ पृथ्वीराज, खुशीसे अपनी मोंछोंपर ताव दो जबतक यवनोंके सिरपर तलवार पछाड़नेके लिअे प्रताप जीवित है ।

१३—यह प्रताप अपने माथेपर साँगका प्रहार सहेगा क्योंकि बराबरवालेका यश मनुष्यके लिअे विष जैसा (असह्य) होता है । हे वीर पृथ्वीराज, तुर्कके साथ वचनोंके विवादमें विजयी होवो ।

१४—अकबर घोर अन्धकार है जिसमें दूसरे सब हिंदू निद्रा-वश हो गये । परन्तु जगतका दातार राणा प्रतापसिंह पहरेपर खड़ा जाग रहा है ।

१५—अकबर गहरा समुद्र है । उसमें हिंदू और मुसलमान सभी डूब गये । परन्तु उस समुद्रमें मेवाड़का राणा प्रतापसिंह कमलके फूलकी भांति ऊपर ही स्थित है ।

अकबरिये इक वार दागल की सारी दुनी।
अणदागल असवार रहियो राण प्रतापसी ॥१६॥

अकबर जासी आप, दिल्ली पासी दूसरा।
पुनरासी परताप, सुजस न जासी, सूरमा ॥१७॥

अकबर गरब न आंण, हींदू सह चाकर हुवा।
दीठो कोई दिवांण करतो लटका कटहड़े ? ॥१८॥

मन अकबर मजबूत, फूट हींदवां बेखबर।
काफर---कोम---कपूत पकड़ूँ राण प्रतापसी ॥१६॥

अकबर कीन्हा आद, हींदू न्रप हाजर हुवा।
मेदपाट मरजाद पग लागो न प्रतापसी ॥२०॥

मेछां आगल माथ निवैं नहीं नर-नाथरो।
सो करतव समराथ, पालै राण प्रतापसी ॥२१॥

१६—अकबरने अेक ही बारमें सारी दुनिया (के घोड़ों) के दाग लगवा दिया परन्तु राणा प्रतापसिंह बिना दागे हुअे घोड़ेपर ही सवार रहा (अकबरने अपने अधीनस्थ सरदारों आदिके घोड़ोंके दाग लगवानेकी प्रथा जारी की थी)।

१७—अकबर स्वयं चला जायगा और दिल्ली भी दूसरोंके हाथोंमें चली जायगी पर हे शूरवीर और पुण्यकी राशि-प्रतापसिंह, तेरा सुयश कभी नहीं जायगा।

१८—हे अकबर, तू यह गर्व मत कर कि सब हिंदू तेरे चाकर बन गये। क्या किसीने दीवांण (महाराणा प्रतापसिंह) को कटहरेके आगे लटके करते देखा है? (कटहड़े—बादशाहके सिंहासनके कटहरा लगा रहता था। लटका—तमाशा, ख्याल, झुक-झुककर सलाम करना)।

१६—असावधान हिन्दुओंमें परस्पर फूट है और अकबरका मन दृढ़ है। यह सोचता है कि काफिरोंकी कौममें केवल प्रतापसिंह ही कपूत रह गया है (बाकी तो सभी सपूतोंकी भांति मेरा कहना मानते हैं)। उसे भी पकड़ लूँ।

२०—अकबरने याद किये तो सभी हिंदू राजा अेक-अेक करके उसके सामने हाजिर हो गये (और अधीनता स्वीकार कर ली) पर मेवाड़का मर्यादास्वरूप राणा प्रतापसिंह उसके पैरों नहीं पड़ा।

२१—'जो नरोंका नाथ है उसका मस्तक म्लेच्छोंके आगे नहीं झुक सकता' इस कर्त्तव्यका पालन केवल समर्थ प्रतापसिंह ही करता है।

वुहा वडेरा वाट, वाट तिकण वहणो विसद।
खाग—त्याग—खत्रवाट पूरो राण प्रतापसी ॥२२॥
कदे न नामे कंध, अकबरढिग आवैन ओ।
सूरज-वंस सँबंध पाले राण प्रतापसी ॥२३॥
अकबर कुटल अनीत, ओर विटल सिर आदरे।
रघुकुल—उत्तम— रीत पाले राण प्रतापसी ॥२४॥
लोपै हींदू लाज, सगपण रोपै तुरकसूँ।
आरज-कुलरी आज पूँजी राण प्रतापसी ॥२५॥
अकबर पथर अनेक कै भूपत मेला किया।
हाथ न लागो हेक पारस राण प्रतापसी ॥२६॥
सांगो धरम-सहाय बाबरसूँ भिड़ियो विहस।
अकबर-कदमां आय पड़े न राण प्रतापसी ॥२७॥
सुख-हित स्याल-समाज हींदू अकबर-वस हुवा।
रोसीलो म्रगराज पजे न राण प्रतापसी ॥२८॥

२२—जिस मार्गपर बड़ेरे चले हैं उसी बड़े मार्गपर चलना चाहिअे। क्षत्रियोंमें इस व्रतका पालन करनेवाला अेक खड्ग (चलाने) और दान (देने) में पूरा महाराणा प्रतापसिंह ही है।

२३—यह राणा न तो कभी अकबरके पास आता है और न मस्तक ही झुकाता है। प्रतापसिंह सूर्यवंशके सम्बन्धका पालन करता है।

२४—दूसरे बिगड़े हुअे राजा अकबरकी कुटिल अनीतिको सिरपर रखकर आदर देते हैं पर राणा प्रतापसिंह रघुके कुलकी उत्तम रीतिका पालन करता है।

२५—हिन्दू लज्जा को लोप करते हैं और मुसलमानके साथ विवाह-सम्बन्ध स्थापित करते हैं। आज आर्य कुलकी पूँजी तो अेकमात्र प्रतापसिंह ही (रह गया) है।

२६—अकबरने अनेक राजारूपी पत्थरोंको इकठ्ठा कर रखा है। पर पारस पत्थरके समान अेक राणा प्रतापसिंह उसके हाथ नहीं लगा।

२७—धरमकी सहायताके लिअे महाराणा सांगा बाबरसे भिड़ा था उसी परंपराके पालनके लिअे राणा प्रतापसिंह अकबरके पैरोंमें आकर नहीं गिरता।

२८—सुख-भोगके लिअे हिन्दू राजा गीदड़ोंकी भांति अकबरके वश हो गये पर रोषवाले सिंहकी भांति राणा प्रताप उसके फंदेमें नहीं आता॥

अकबर कूट अजांण हियांफूट छोडै न हठ ।
पगां न लागण पाण पणधर राण प्रतापसी ॥२९॥
अकबर हिये उचाट रात-दिवस लागी रहै।
रजवट - वट - समराट पाटप राण प्रतापसो ॥३०॥
जग जाडा जूझार अकबर-पग चांपै अधिप।
गउ-राखण गुंजार पिंडमें राण प्रतापसी ॥३१॥
अकबर-कने अनेक नम-नम नीसरिया न्रपत।
अनमी रहियो अेक पुहमी राण प्रतापसी ॥३२॥
थिर न्रप हिंदुस्थान लातरग्या मग लोभ-लग।
माता भूमी मान पूजै राण प्रतापसी ॥३३॥
ढिग अकबर दल ढाण अग-अग झगड़ै, आथड़ै।
मग-मग पाडै माण पग-पग राण प्रतापसी ॥३४॥

२९—नीच और मूर्ख अकबरकी हृदय की (आँखें) फूट गई हैं जो वह अपना हठ नहीं छोड़ता। प्रतिज्ञाका पालन करनेवाला राणा प्रतापसिंह उसके पैरों पड़नेवाला नहीं।

३०—अकबरका हृदय रात-दिन उचटा रहता है। राणा प्रतापसिंह क्षत्रियोंके धर्मके पालन करनेवालोंमें पाटवी सम्राट हैं।

३१—जगतमें जो जबर्दस्त योद्धा हैं अैसे राजा भी अकबरके पैरोंकी सेवा करते हैं परन्तु पृथ्वी और गौका रक्षक प्रतापसिंह अकबरके हृदयमें निवास करता है (प्रतापके कारण अकबरके हृदयमें सदा चिंता बनी रहती है)।

३२—अकबरके पास अनेक राजा झुक-झुककर निकले। पृथ्वीपर अेक प्रतापसिंह ही उसके आगे नहीं झुका।

३३—किसीसे न डिगनेवाले हिन्दुस्तानके राजा लोभके कारण कर्तव्यसे भ्रष्ट होगये। परन्तु राणा प्रताप पृथ्वीको माता मानकर पूजता है।

३४—महाराणा प्रताप अकबरकी सेनाके सामने दौड़ कर (जाता है और पहाड़-पहाड़पर उससे भिड़ता और लड़ता है। प्रत्येक मार्गमें प्रत्येक पैरपर वह उसका मान भंजन करता है।

चीत मरण रण चाय, अकब्बर-आधीनी विना।
पराधीन दुख पाय, पुनि जीवै न प्रतापसी ॥३५॥
गोहिल-कुल—धन-गाढ़ लेवण अकबर लालची।
कोडो दै नह काढ पणधर राण प्रतापसी ॥३ ॥
अकबर मच्छ अयाण पूँछ-उछालन वल प्रवल।
गोहिलवत गहराण पाथोनिधी प्रतापसी ॥३७॥
नित गुधलावण नीर कुंभी सम अकबर क्रमें।
गोहिल राण गँभीर पण गुधलै न प्रतापसी ॥३८॥
उडै रीठ अणपार, पीठ लगा लाखां पिसण।
वेढीगार वकार पैठो उदियाचल पतो ॥३९॥
रोकै अकबर राह ले हींदू कूकर लखां।
वीभरतो वाराह पाड़ै घणा प्रतापसी ॥४०॥

३५—राणा प्रतापके चित्तमें सदा यही चाह रहती है कि अकबरकी धीनता स्वीकार किये विना रणमें मरण हो जाय। पराधीनतामें दुख पाता आ प्रतापसिंह फिर नहीं जीता।

३६—अकबर गुहिलोतवंशके धनको लेनेके लिअे गहरा लालच करता है। रन्तु प्रतिज्ञाका पालन करनेवाला प्रताप अेक कौड़ी भी निकालकर नहीं देता।

३७—अकबर मूर्ख मच्छ है जो प्रबल बलके साथ पूँछ उछालता है परन्तु गुहिलका वंशज प्रतापसिंह गहरा समुद्र है। जो साधारण मच्छके पूँछ उछालनेसे दिला नहीं हो सकता)।

३८—हाथीके समान अकबर जलको गँदला करनेके लिअे सदा फिरता है परन्तु गुहिलका वंशज राणा प्रताप गम्भीर समुद्र है जो हाथीके चलनेसे गँदला नहीं हो सकता। (कुम्भी=मगर या हाथी)।

३९—हथियारोंकी अपार झड़ाफड़ मच रही है, लाखों शत्रु पीछे लगे हैं, फिर भी युद्ध करनेवाला प्रतापसिंह ललकारकर उदयपुरमें प्रविष्ट हुआ।

४०—अकबर लाखों हिन्दू-रूपी कूकरोंको लेकर राणाकी राह रोकता है पर गरजता हुआ वराह प्रतापसिंह उनमेंसे अनेकोंको गिरा देता है और निकल जाता है।

हिरदै ऊणा होत सिर-धूणा अकबर सदा।
दिन दूणा देसोत पूणा हुवै न प्रतापसी ॥४१॥

कल्पै अकबर काय, गुण पूँगीधर गोडिया ?
मिणधर छाबड़ मांय पड़ै न राण प्रतापसी ॥४२॥

भागै सागे भाम, अमरत लागै ऊँमरा।
अकबर-तल आराम पेखै जहर प्रतापसी ॥४३॥

लंघण कर लंकाल सादूलो भूखो सुवै।
कुल-वट छोड क्रपाल पैंड न देत प्रतापसी ॥४४॥

अकबर मैंगल अच्छ, मांझल दल घूमै मसत।
पंचानन पल भच्छ पटकै छड़ा प्रतापसी ॥४५॥

औ जो अकबर-काह सैंधव कुंजर साँवठा।
वांसे तो वहताह पंजर थया, प्रतापसी ॥४६॥

४१—सिर धुननेवाला अकबर हृदयमें सदा ऊना होता है पर राजा प्रतापसिंह प्रतिदिन दूना होता जाता है, कभी पौना नहीं होता। (ऊना—कम, हतोत्साह)।

४२—हे रस्सी और पूँगीवाले सँपेरे अकबर, क्यों कष्ट उठाता है? कितना ही प्रयत्न कर, पर राणा प्रतापरूपी सांप तेरी छबड़ीमें नहीं पड़ेगा।

४३—राणा प्रताप स्त्रीको साथ लिये भागता है और उदुंबर भी उसे अमृतके समान लगते हैं पर अकबरकी अधीनतामें रहकर आरामको वह विषके समान समझता है।

४४—प्रतापी सिंहके समान राणा प्रताप लंघन करके भूखा सो जाता है परन्तु कुलका मार्ग छोड़कर दूसरे मार्गपर पैर नहीं रखता।

४५—अकबर श्रेष्ठ हाथीके समान मस्त होकर दलके अन्दर विचरता है परन्तु मांस खानेवाले सिंहके समान प्रताप अकेला ही उसे हथेली मारकर गिरा देता है।

४६—ये जो अकबरके मजबूत घोड़े और हाथी हैं वे, हे प्रताप, तेरे पीछे भागते-भागते अस्थिपंजर-मात्र रह गये हैं।

वड़ी विपत सह वीर वड़ी कीत खाटी वसू।
धरम-धुरंधर धीर पोरस धिनो प्रतापसी ॥४७॥
जिणरो जस जग मांहि, जिणरो जग धिन जीवणो।
नेड़ो अपजस नांहि, पणधर धिनो प्रतापसी ॥४८॥
अजरामर धन अेह, जस रह ज्यावै जगतमें।
सुख-दुख दोनूँ देह सुपन समान, प्रतापसी ॥४९॥

चारण सूरायच टापरया कृत--

चेला वंस छतीस, गुर घर गहलोतां-तणो।
राजा—राणां, रीस कहतां मत कोई करो ॥५०॥
चंपो चीतोड़ाह पोरस-तणो—प्रतापसी।
सोरभ अकबरसाह अलियल आभड़िया नहीं ॥५१॥
माथे मैंगल खाग तैं वाही, परतापसी।
वांट किया वे भाग गोटी साबू तांत गत ॥५२॥

४७—वीर राजा प्रतापने बड़ी विपत्ति सहकर पृथ्वीपर बड़ी भारी कीर्ति अर्जन की। हे धर्मधुरीको धारण करनेवाले धीर प्रताप, तुम्हारा पुरुषार्थ धन्य है।

४८—उसीका जीवन धन्य है जिसका जगत में यश है। हे प्रणधर प्रताप, तू धन्य है क्योंकि तेरे निकट अपयश नहीं रहता।

४९— जगतमें यश रह जाय—यही अजर और अमर धन है। देहमें सुख और दुख तो सपनेके समान अस्थायी हैं।

५०—छत्तीसों वंशोंके क्षत्रिय गुलाम हैं, केवल गुहिलोतोंका घराना बड़ा है। यह कहते समय कोई राजा या राणा क्रोध न करना (क्योंकि यह कथन वास्तवमें सत्य है)।

५१—चित्तोड़के स्वामी प्रतापसिंहका पराक्रम चंपेका पेड़ है जिसकी सुगंधिपर अकबर-रूपी भौंरा कभी नहीं आया।

५२—हे प्रतापसिंह, तूने हाथीके माथेपर तलवार चलाई सो उसके दो टुकड़े कर दिये जिस तरह तांतसे साबुनकी टिकिया कटकर दो टुकड़े हो जाती है।

सांग ज सोवरणाह त वाही, परतापसी।
ज्यों वादल किरणाह, परां प्रगट्टो कुंजरां ॥५३॥
मांझी मोह मराट पातल राण प्रवाड़ मल।
दुजड़ां किय द्रहवाट, दल मैंगल दाणव-तणा ॥५४॥
सहनक-तणा सुजाण, पारीसा पातल-तणा।
तैं राहविया, राण, अेकण-हूँता, ऊदवत ॥५५॥
अेही भुजे अरीत, तसलीम ज हींदू-तुरक।
माथे निकर मजीत परसाद कै प्रतापसी ॥५६॥
रोहे पातल राण जां तसलीम न आदरे।
हींदू — मुस्सलमाण अेक नहीं तां दोय है ॥५७॥
चोकी चीतोड़ाह पातल पड़वेसां-तणी।
रहचेवा राणाह आयो पण आयो नहीं ॥५८॥
निगम निवाण-तणाह, नागद्रहा नरहर ज्यूँहीं।
रावत-वट राणाह, पिंड अणखूट प्रतापसी ॥५९॥

५३—हे प्रतापसिंह, तूने सुनहरी वरछी चलाई तो वह हाथीके पार जाकर निकली जैसे किरणें बादलको फोड़कर पार निकल जाती हैं।

५४—अनेक युद्धोंको जीतनेवाले और मोहको मारनेवाले प्रतापसिंहने तलवारोंसे यवनोंकी हाथियोंकी सेनाको नष्टभ्रष्ट कर दिया।

५५—अन्य राजा मद्दीके वर्त्तनोंमें परोसा भोजन करनेवाले (मुसलमान) हो गये। पत्तलोंमें परोसा भोजन तो, हे उदयसिंहके पुत्र, अकेले तूने ही रखा है।

५६—पराक्रममें अेसी कुरीति हो गई है कि हिन्दू तुरकोंके आगे झुककर सलाम करने लगे हैं। अेक प्रतापसिंह ही मसजिदोंके ऊपर देवमन्दिर बनवाता है।

५७—घिरा हुआ राणा प्रताप जबतक झुककर सलाम करना स्वीकार नहीं करता तभीतक हिन्दू और मुसलमान अेक न होकर दो हैं (नहीं तो सभी मुसलमान हो जाते)।

५८—प्रतापसिंह शत्रुओंको काटनेके लिअे तो आया पर उनकी चौकी देनेको नहीं आया।

जोधपुर-महाराज मानसिंहजी कृत—

गिर-पुर-देस गमाड़ भमियो पग-पग-भाखराँ।
मह अँजसै मेवाड़, सह अँजसै सीसोदियाँ ॥६०॥

अज्ञात—

वाही राण प्रतापसी वगतरमें वरछीह ।
जाणक झींगर-जालमें मुँह काढ्यो मच्छीह ॥६१॥
वाही राण प्रतापसी वरछी लचपच्चांह ।
जाणक नागण नीसरी, मुँह भरियो बच्चांह ॥६२॥
पातल घड़ पतसाहरी अेम विधूँसी आण ।
जाण चढी कर-वंदराँ, पोथी वेद पुराण ॥६३॥
हींदू हींदूकार राणा जे राखत नहीं।
अकबर तो अेकार पो सो करत प्रतापसी ॥६४॥
हिंदूपत परताप पत राखी हिंदवाणरी ।
सहे विकट संताप सत्य सपथ कर आपणी ॥६५॥

६०—महाराणा प्रताप अपने पहाड़, देश और नगरको गँवाकर पहाड़ोंमें पैर-पैरपर भटकता फिरा, जिससे आज मेवाड़ अत्यन्त गर्व करता है और सारी सीसोदिया जाति घमंड करती है।

६१—राणा प्रतापने कवचमें जो बरछी चलाई तो वह कवचको फाड़कर दूसरी ओर अैसे निकलो मानो झींगुर मच्छीने जालमेंसे मुँह निकाला।

६२—राणा प्रतापने लपकती हुई बरछी चलाई। वह आँतोंके साथ दूसरी ओर इस प्रकार निकली मानो साँपिन, मुँहको बच्चोंसे भरकर, बाहर निकली।

६३—प्रतापसिंहने आकर बादशाहकी सेनाको इस प्रकार विध्वंस कर दिया मानो वेद-पुराणकी पोथी बन्दरोंके हाथ चढ़ गई हो।

६४—यदि राणा हिन्दू जाति और हिन्दू धर्मकी रक्षा न करता तो अकबर सारी दुनियाको अेकाकार कर देता (सबको यवन बना लेता)।

६५—हिन्दूपति प्रतापने हिन्दुओंकी प्रतिष्ठाकी रक्षा की और विकट कष्टोंको सहकर भी अपनी प्रतिज्ञाको सच्ची की।

२—बादल

बादल जूझण जब चल्यो, माता आई ताम ।
रे बादल, तैं क्या किया, रे बालक परवाण ॥६६॥
माता, बालक क्यूँ कहो, रोइ न मांग्यो ग्रास ।
जे खग मारूँ साह-सिर, तो कहियो साबास ॥६७॥
सिंह, सिचाणो, सापुरुस, अे लहुरा न कहाय ।
वडो जिनावर मारिकै छिनमें लेय उटाय ॥६८॥

३—महाराणा अमरसिंह

हाडा, कूरम, राठवड़, गोखां जोख करंत ।
कहज्यो खानाखानने, वनचर हुवा फिरंत ॥६९॥
तँवरांसूँ दिल्ली गई, राठोड़ां कनवज्ज ।
अमर पयँपै खानने, सो दिन दीसै अज्ज ॥७०॥

(रहीमका उत्तर)

ध्रम रहसे, रहसे धरा, खिस जासे खुरसाण ।
अमर विसंभर ऊपरै, राख नहंचो, राण ॥७१॥

६६—बादल जब जूझनेके लिअे चला तब माता आई और बोली—अरे बादल, तूने यह क्या किया ? अरे तू सचमुच ही बालक है !

६७—बादल उत्तर देता है कि हे माता, तुम मुझे बालक क्यों कहती हो मैंने तो कभी रोकर खानेको नहीं मांगा (जैसे बालक मांगते हैं) । मुझे तो, जब मैं बादशाहके सिरपर तलवार मारूँ, तभी शाबाश कहना ।

६८—सिंह, बाज और सुपुरुष—ये (छोटे होनेपर भी) छोटे नहीं कहलाते ये अपनेसे बड़े जानवरको मारकर क्षण ही भरमें उसे उठा भी लेते हैं ।

६९—खानखानासे जाकर कहना कि, हाड़ा, कछवाहे और राठोड़—ये सब र[illegible] आज राजमहलोंमें आनन्द कर रहे हैं परन्तु हम वनचर बने हुअे भटक रहे हैं ।

७०—जिस दिन तँवरोंके हाथसे दिल्ली गई और राठोड़ोंके हाथसे कन्नौ[illegible] छूटा वही दिन, महाराणा अमरसिंह खानखानासे कहते हैं कि, आज हमें दिखाई रहा है (आज हमारे हाथसे मेवाड़ छूटता दिखाई देता है) ।

७१—धर्म रहेगा, तुम्हारी भूमि भी रहेगी, और यवन नष्ट हो जायँगे

४—महाराणा राजसिंह

मालपुरेरो माल, केलपुरे घर-घर कियो ।
सबल दिलीरो साल, ऊभो राणो राजसी ॥७२॥

(ख) मारवाड़

राठोड़ वीरांगनाएँ

राठोड़ांरी कुल-त्रिया सीला गभ न धरंत ।
ज्यां भरतार न भंजणा से भँजणा न जणंत ॥७३॥

राव जगमाल

पग-पग नेजा पाडिया, पग-पग पाडी ढाल ।
बीबी पूछै खानने, जग केता जगमाल? ॥७४॥

राव अमरसिंह राठोड़

उण मुखसूँ गग्गो कह्यो, इण कर लिवी कटार । ✓
वार कहण पायो नहीं, हो गइ जमधर पार ॥७५॥

दुर्गादास राठोड़

जननी,जण ओहड़ा जणे, जेहड़ा दुरगादास ।
मार मँडासो थाँमियो, विन थंभाँ आकास ॥७६॥

हे राणा अमरसिंह, कभी नाश न होनेवाले और संसारका पालन करनेवाले परमात्मापर दृढ़ विश्वास रखो ।

७२—मालपुरेको लूटकर उसका धन केलपुरेके घर-घर में बाँट दिया अैसा दिल्ली-साम्राज्यका शल्यरूप सबल शत्रु महाराणा राजसिंह खड़ा है ।

७३—राठोड़ोंकी कुल-स्त्रियाँ निकम्मे (साधारण) गर्भ धारण नहीं करतीं । जिनके पति भागनेवाले नहीं वे भागनेवाले पुत्रोंको जन्म नहीं देतीं ।

७४—बीबी खानसे पूछती है कि पग-पगपर भाले गिरे हैं और पग-पगपर ढालें पड़ी हैं, भला कहो तो जगतमें कितने जगमाल हैं ?

७५—उस सलाबतखांने अमरसिंहको 'गँवार' कहनेके लिअे मुँहसे 'ग' इतना ही कहा था—वार ये दो अक्षर कहने भी नहीं पाया था—कि अमरसिंहकी कटार उसके शरीरमें पार हो गई ।

७६—हे माता, पुत्र जने तो अैसा जनना जैसा कि दुर्गादास था—जिसने सिरपर मुँडासा रखकर उसपर विना खंभोंके आधारके ही आकाशको थाम लिया ।

जसवँत कहियो जोय, घर रखवाळो गूदड़ा ।
सांचो कीधी सोय आछी आसकरन्न-ग्रत ॥७७॥
बारह मासां बीह पांडव ही रहिया प्रछन ।
दुरगो हेको दीह आछत रह्यो न आसवत ॥७८॥

चलूसिंह चाँपावत

चलू कहै गोपाळरो सतियां हाथ सदेस ।
पतसाही घड़ मोड़कर आवां छां, अमरेस ॥७९॥

केसरीसिंह (खरवा)

केहरिया करनाळ, जो न जुड़त जयसाहसूँ ।
आ मोटी अवगाळ रहती सिर मारू-धरा ॥८०॥

कल्याणसिंह

किलो अणखलो यूँ कहै, आव कला राठोड़ ।
मो सिर उतरै मेहणूँ, तो सिर बंधै मोड़ ॥८१॥

७७—महाराज जसवंतसिंहजीने जो कहा था कि यह दुर्गादास घरके गूदड़ों की रक्षा करनेवाला होगा वह कथन आसकरणके बेटे दुर्गादासने खूब अच्छी तरह सत्य सिद्ध कर दिया ।

७८—पांडव भी बारह महीनों तक भयके मारे छिपे रहे परन्तु आसकरण का बेटा दुर्गादास जब तक जीता रहा तब तक अेक दिन भी छिपकर नहीं रहा (बीह—भय)।

७९—हे महाराज अमरसिंह, गोपाळदासका बेटा चलूसिंह सतियोंके हाथ संदेश कहलाता है कि बादशाही सेनाको पराजित करके मैं आपके पास आ रहा हूँ ।

८०—हे केसरीसिंह, यदि तू जयसिंहसे न भिड़ता तो मारवाड़की भूमि के सिरपर यह मोटा कलंक (सदाके लिअे) रह जाता ।

८१—अणखलो—उदास । कला—कल्याणसिंह । मेहणूँ—व्यंगवचन, कलंक

कीरतसिंह

तन झड़ खागाँ तीख, मार घणा खल पोढियो ।
किरतो नग कोडीक जड़ियो गढ जोधाणरै ॥८२॥

भींवसिंह

गढ साखी गहलोत, कर साखी पातल कमध ।
मुकन-रुघारी मोत भली सुधारी, भींवड़ा ॥८३॥

पहर हेक लग पोल जड़ी रही जोधाणरी ।
गढमें रोलारोल भली मचाई, भींवड़ा ॥८४॥

आजूणी अधरात महल ज रूनी मुकनरी ।
पातलरी परभात भली रुवाड़ी, भींवड़ा ॥८५॥

मुकनूं पूछै वात, को पातल, आयां करां ? ।
सुरगापुरमें साथ भेला मेल्या भींवड़ै ॥८६॥

(ग) बीकानेर

राव कांधल

कमधज राज भतीजरो सज बांध्यो बल सार ।
जिण कांधल भाज्या जवर चौदह भूमी चार ॥८७॥

८२—जिसका शरीर तेज तलवारोंसे निहत हुआ और जो बहुत-से शत्रुओं-को मारकर युद्धभूमिमें सोया असा कीरतसिंह कोटि मूल्यवाले रत्नके समान जोधपुरके किलेमें जड़ा हुआ है ।

८३—मुकन इ०—हे भींवसिंह, तूने मुकनसिंह और रघुनाथसिंहकी मृत्युको खूब सुधारा (खूब अच्छा बदला लिया) !

८४—जोधपुर दुर्गका द्वार अेक घड़ी तक बंद रहा । हे भींवसिंह, तूने दुर्ग-में खूब रेलपेल मचाई ।

८५—आज आधीरातको मुकनसिंहकी पत्नी महलमें रोई । हे भींवसिंह, तूने उसी प्रभातको प्रतापसिंहकी पत्नीको खूब रुलाया ।

८६—मुकनसिंह स्वर्गमें प्रतापसिंहसे बात पूछता है कि हे प्रताप, कहो, तुम कब आ गये ? प्रतापसिंहने उत्तर दिया कि भींवसिंहने हम दोनोंको स्वर्ग में साथ-ही-साथ भेज दिया ।

८७—भतीज—बीकाजी जो कांधलजीके भतीजे थे ।

पद्‌मसिंह

अेक घड़ी आलोच मोहणरे करतो मरण।
सोह जमारो सोच करतां हि जातो, करणवत॥८८॥

कुशलसिंह

कुसलो पूछै कोटने, बिलखो किम, बीकाण ? ।
मो ऊभां तो पालटै, भलै न ऊगै भाण॥८९॥

(घ) जयपुर

महाराजा मानसिंह

जननी, जण, अैसो जणे, जैसो मान मरद।
खांडो समँद पखालियो, कावल बांधी हद॥९०॥

महाराज जयसिंह (बड़े)

घंट न बाजै देहरां, संक न मानै साह।
अेकणहां फिर आवज्यो, माहूरा जयसाह॥९१॥

राव शेखाजी (शेखावाटी)

गोड़ बुलावे घाटवे, चढ आवो सेखा।
थारा लसकर मारणा, देखण अभलेखा॥९२॥

८८—हे करणसिंहके पुत्र, मोहनसिंहकी मृत्युपर यदि तू अेक घड़ी भर ना आगा-पीछा सोचता तो तेरा सारा जीवन सोच करते ही बीतता।

८९—कुशलसिंह दुर्गसे पूछता है कि हे बीकानेर, तू क्यों बिलख रहा है ? मेरे खड़े हुअे तुझे कोई विध्वस्त कर दे तो फिर सूर्य उदय नहीं हो सकता।

९०—हे माता, पुत्र जने तो अैसा जन जैसा कि मर्द मानसिंह था जिसने अपनी तलवार समुद्रमें धोई और काबुल तक राज्यसीमाका विस्तार किया।

९१—मंदिरोंमें घंटे नहीं बजते, मुसलमान शासक भय नहीं खाते, इसलिअे हे माधवसिंहके बेटे जयसिंह, अेक बार फिर यहां आओ।

९२—हे शेखा, तुम्हें गौड़ घाटवेमें बुलाते हैं, तुम चढ़कर आओ तो सही! सुना है कि तुम्हारी सेना मारनेवाली है, हमें भी देखनेकी अभिलाषा है।

राव शिवसिंह (सीकर)

वांस वडा, डेरा वडा, दिनां वडेरा होय।
सेखावत सिवसिंहसूँ करतब वडा न कोय ॥६३॥

सादूलसिंह (खेतड़ी)

सादूलो जगरामरो सिंहल बुरी वलाय।
राम-दुवाई फिर गई, लुकती फिरै खुदाय ॥६४॥

जुझारसिंह (खेतड़ी)

डूँगर वांको है गुढो, रण-वांको जूझार।
अेक ज आगे असर-गण भांग्या पांच हजार ॥६५॥

जोरावरसिंह (खेतड़ी)

वणिया घाव वणाव जोरां मोहरां ऊपरै।
जड़िया नगां जड़ाव सोनेमें सादूलवत ॥६६॥

अभयसिंह (खेतड़ी)

खगां ज वांकी खेतड़ी, भट वांको अभमाल।
गढपत राख्यो गोदमें नवकूँटीरो लाल ॥६७॥

६३—दिनां—दिनोंमें, अवस्थामें। वडेरा—वड़े। करतब इ०—महान कार्य या पराक्रम करनेमें वड़ा कोई नहीं।

६४—जगरामसिंहका बेटा सिंह-सदृश पराक्रमी शार्दूलसिंह बुरी बला है जिसके कारण देशमें रामकी दुहाई फिर गई और खुदाई छिपती फिरती है—हिन्दुओंका राज्य स्थापित हो गया और मुसलमान शासक छिपते फिरते हैं।

६५—डूँगर—पहाड़। गुढो—जहां जुझारसिंहका स्थान था। अेकज—अकेलेने ही। असर—असुर अर्थात् यवन। भांग्या—पराजित किये।

६६—वणिया—वने हैं। सादूलवत—हे सादूलसिंहके पुत्र जोरावरसिंह।

६७—अभमाल—अभयसिंह। राख्यो इ०—जिसने नवकोटी (मारवाड़) के राजा धोंकलसिंहको शरण दी।

सुलतानसिंह

मन-चायो पायो मरण, हुई फतेपुर हल्ल।
रहसी रे सुलतानिया गोड़, घणा दिन गल्ल ॥६८॥

सावँतसिंह

कलि़यो जाम्हा कीचमें रजवट-हंदो रथ्थ।
सांवतिया सुलताणरा, तूँ काढण समरथ्थ ॥६६॥

(ङ) प्रकीर्णक

राठोड़ ऊगो

छाती ऊपर सेलड़ा, माथे ऊपर वाट।
कहज्यो ऊग भाणेजने, कठपींजर कहवाट ॥१००॥
तूँ कहतो ज तिकाय, ताली़ ताला़हर-तणी।
वा़ला़ हिवै वजाय अेकण हाथे, ऊगला ॥१०१॥
मामा मैंगल़ सांभले़, दूजो ना जाणांह।
चोड़ै घूंघट बांधने अणँतराय आणांह ॥१०२॥

६८—हे गौड़ सुलतानसिंह, फतहपुरपर आक्रमण हुआ और तूने मनचाही मृत्यु पाई, संसारमें तेरी कथा बहुत दिनों तक रहेगी।

६६—हे सुलतानसिंहके बेटे सावँतसिंह, राजपूतोंका रथ गहरे कीचड़में फँस गया है, उसे निकालनेमें अब तू ही समर्थ है।

१००—राजा अनँतरायके यहाँ काठके पिंजरेमें कैद किया हुआ राजा कहवाट अपने भाटसे कहता है कि तुम जाकर मेरे भानजे ऊगेको कहना कि तुम्हारा मामा कहवाट काठके पिंजरेमें पड़ा है, उसकी छातीपर भाले हैं और माथेपर राह बनी है जिसपर लोग चलते हैं।

१०१—हे वाला़ जातिके वीर ऊगा, जिसके विषयमें तू कहता था वही अपनी ताली अब तू अेक हाथसे बजा।

१०२—ऊगा उत्तर देता है कि हे मैंगल़ भाट, मामासे कहना कि हम दूसरी बात नहीं जानते किंतु सबके सामने अनन्तरायको पगड़ीसे बांधकर ले आवेंगे।

रूकाँ वागी रीठ, भोठ पड़ै माथा भड़ाँ।
तोड़न मामा-रीठ आयो दीसे ऊगलो ॥१०३॥

तगा, तगाई मत करे, बोले मूँह सँभाल।
नाहरने रजपूतने रेकारेरी गाल ॥१०४॥

रहीम खानखाना

खानाखान नवाबरे खाँडे आग खिवंत।
जलवाला नर प्राजलै, त्रणवाला उबरंत ॥१०५॥१६६॥

४—दानवीर

१—जाम ऊनड़

माई, अेहा पूत जण, जेहा ऊनड़ जाम।
दीधो सातूँ सिंध इम, जिम दीजै एक गाम ॥१॥

२—गोड़ वछराज (अजमेर)

देतौ अड़ब-पसाव नित धिनो गोड़ वछराज।
गढ अजमेर सुमेरसूँ ऊँचो दीसै आज ॥२॥

१०३—ऊगेके युद्धके समय कहवाट अपने-आपसे कहता है—घोर युद्धकी तलवारें बजरही हैं, योद्धाओंके माथोंपर अग्नि बरस रही है, मालूम होता है मामाके कष्टको दूर करनेको ऊगा आ पहुँचा।

१०४—रेकारो—रे, अरे, या तू कहकर पुकारना।

१०५—खानखाना रहीमकी तलवारमें आग चमक रही है जिसमें जलवाले (पानीदार, सामने युद्ध करनेवाले) आदमी जल जाते हैं और तृण-वाले (मुंहमें तृण लेकर शरणमें आनेवाले) बच जाते हैं।

४—दानवीर

१—हे माता, अैसा पुत्र उत्पन्न कर, जैसा कि ऊनड़ जाम था, जिसने सिंधके सातों प्रान्त इस प्रकार दान कर दिये जैसे अेक गाँव दान देता हो।

२—गौड़ वछराज धन्य है जो नित्य अरब-पसावका दान करता था जिसके कारण आज अजमेर गढ़ सुमेरु पर्वतसे भी ऊँचा दिखाई देता है।

३—साँगो

जळ डूबंते जाय साद ज साँगरिये दियो ।
कहज्यो मोरी माय, कविने देवे कामळी ॥३॥

४ जगदेव पँवार

इग्यारह इक्काणवै, चैत तीज, रविवार।
सीस कँकाळी भट्टने जगदे' दियो उतार ॥ ४ ॥

५—करणसिंह राठोड़ लूणकरणोत

सो दूजो संसार माटीसूँ गढियो मँडळ ।
तूँ गढियो करतार कायासूँ ही, करणसी ॥५॥

६—महाराज रायसिंह

कोड़ दरब दीधो करमँ, सवा कोड़ पह सींग ।
बीकाणे दाता वडा उभै हुवा अरडींग ॥६॥

७ रहीम खानखाना

खानाखान नवावरो दीठो अेहो दैण ।
ज्यूँ ज्यूँ कर ऊँचो करै, त्यूँ-त्यूँ नीचा नैण ॥ ७ ॥

३—जलमें डूबते हुअे सांगेने आवाज दी कि मेरी मांको जाकर कह देना कि कविराजाको कंबल बनाकर अवश्य दे दे (सांगेने कविराज ईसरदानजीको कंबल देनेकी प्रतिज्ञा की थी पर प्रतिज्ञा पूरी होनेके पूर्व ही डूबनेसे उसकी मृत्यु हो गई)।

४—संवत् ११९१ की चैत्र-तृतीया रविवारके दिन जगदेव पँवारने अपना सिर उतारकर कंकाली भाटिनीको दानमें दे दिया ।

५—दूसरा सारा संसार मिट्टीके ही द्वारा बना हुआ है परन्तु, हे करणसिंह, तुझे विधाताने शरीरके द्वारा बनाया है (वास्तवमें तू ही सच्चा मानवदेहधारी है)।

६—करमसिंहने अेक करोड़का दान किया और प्रभु रायसिंहने सवा करोड़का। बीकानेरमें ये दो बड़े जबर्दस्त दानी हुअे ।

७—खानखाना रहीमके दान करनेका यह ढंग देखा कि ज्यों-ज्यों हाथ ऊँचा करता है त्यों-त्यों नेत्र नीचे होते जाते हैं (दानवृद्धिके साथ विनयकी भी वृद्धि होती है)।

खानाखान नवाबरो मोहि अचंभो ओह।
केम समाणो मेर मन साढ तिहथ्थी देह ॥ ८ ॥

८ किशनसिंह (खेतड़ो)

मेहां, मोरां, मदफरां, राजा याही रीत।
किसन चढाया करहले, वळे न चढिया भींत ॥ ९ ॥
कवियां भाग पधारजो, कँवर ज मुरधर देस।
फूलाणी लाखे जिसो, सादाणी किसनेस ॥१०॥
थारे जोड़े, किसनसी, जगो कँवर अमेर।
अेकज हूवो करणरे पदमो वीकानेर ॥११॥

९—महाराणा जगतसिंह (बड़े)

सिंधुर दीधा सात सौ, हैवर छपन हजार।
चोरासी सासण दिया, जगपत जगदातार ॥१२॥
करणारे जगपत कियो कीरत काज कुरब्ब।
मन जिण धोखो ले मुवा साह दिलीस सरब्ब ॥१३॥

८—खानखाना नवाबके विषयमें मुझे यह अचंभा होता है कि उनका मेरुके समान बड़ा मन साढ़े तीन हाथकी देहमें कैसे समाया ?

१०—मुरधरदेस—मारवाड़, यहां 'जोधपुर'के विशेष अर्थमें प्रयुक्त न होकर 'राजस्थान' के साधारण अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। लाखो फूलाणी—कच्छका सुप्रसिद्ध दानी और वीर राजा। सादाणी—सादूलसिंहका बेटा।

११—हे किशनसिंह, तुम्हारी जोड़ीका दानी आंबेरका राजकुमार जगतसिंह है या अेक पदमसिंह वीकानेरमें करणसिंहके यहां हुआ था।

१२—जगतके दानी महाराणा जगतसिंहने सात सौ हाथी, छप्पन हजार घोड़े, और चौरासी गांवोंके परवाने (अर्थात् गांव) दानमें दिये।

१३—करणसिंहके बेटे जगतसिंहने कीर्तिके लिअे यह महान् कार्य किया जिसका धोखा मनमें लिये-लिये ही दिल्लीके सारे बादशाह मर गये।

जगतो तो जाण नहीं मात-पितारो नाम।
तात-पिता रटतो रहै निसदिन यो हो काम ॥१४॥
सांइ, करजे पारेवड़ा जगपतरै दरबार।
पीछोलै पाणी पियाँ, कण चुगाँ कोठार ॥१५॥

१०—महाराणा भीमसिंह

राणे भीम न रक्खियो दत विन दीहाड़ोह।
हय-गयंद देतो हथाँ, मुओ न मेवाड़ोह ॥१६॥
भीमा, तूँ भाठो मोटा मगरा मांयलो।
कर राखूँ काटो संकर ज्यूँ सेवा करूँ ॥१७॥

११—ठाकुर खंगारसिंह (खोरा)

लाडाणी जस लूँटियो माडाणी जग मांय।
कीरत हंदा कोरड़ा, जातां जुगां न जाय ॥१८॥१८७॥
॥५२४॥

१४—जगतसिंह माताके पिता यानी 'नाना' का नाम नहीं जानता (अर्थात् वह कभी ना-ना नहीं करता)। वह तो रातदिन पिताके पिता यानी 'दादा' का नाम (अर्थात् देना-देना) रटता रहता है।

१५—हे परमात्मा, हमें जगतसिंहके दरबारके कबूतर बनाना जिससे पीछोलेमें पानी पियें और राजकीय कोठारमें अन्न चुगते रहें। (पीछोला—उदयपुर का सुप्रसिद्ध तालाब)।

१६—महाराणा भीमसिंहने अेक भी दिन बिना दानका (जिस दिन दान न किया हो) नहीं रखा। हाथोंसे हाथी और घोड़े दान करता हुआ वह मेवाड़का अधिपति मानो अभी तक नहीं मरा है।

१७—हे भीमसिंह, तू बड़े मरुस्थलका पत्थर है जिसे मैं अपने पास रखूँगा और शंकरकी भाँति पूजा करूँगा।

१—ऐतिहासिक

सामान्य

हाडा गायड़-वंकड़ा करतव-वंका गोड़ ।
वल-हठ-वंका देवड़ा रण-वंका राठोड़ ॥ १ ॥
उदियापुर चूँडो सिरै, सेखो धर आंवेर ।
दूदो मांझी मेड़ते, वीदो वीकानेर ॥ २ ॥
पातलिये अलवर लिवी, माधो रणथंभोर ।
रामचन्द्र लंका लिवी, वखतावर वाघोर ॥ ३ ॥

नाग

परमारां रूँधाविया, नाग गया पाताल ।
रह्या वापड़ा आसिया, किणरी भूमें चाल ॥ ४ ॥

पँवार

पिरथी वडा पँमार, पिरथी परमारां-तणी ।
अेक उजीणी-धार, वीजो आवू वैसणो ॥ ५ ॥
ज्यां पमांर त्यां धार है, धारा जठे पमांर ।
विन पमांर धारा नहीं, धारा विना पमांर ॥ ६ ॥

१—ऐतिहासिक

१—हाड़े राजपूत घमासान युद्धमें बांके होते हैं, गौड़ करतब करनेमें बांके होते हैं, देवड़ा राजपूत बल और हठमें बांके होते हैं, और राठोड़ युद्धमें बांके होते हैं।

५—पृथ्वीमें पँवार राजपूत बड़े हैं, पृथ्वी ही पँवारोंकी है। उनके दो स्थान हैं—अेक आबूमें और दूसरा उज्जैन अेवं धारानगरीमें।

६—जहां पँवार हैं वहीं धारा है। जहाँ धारा है वहीं पँवार हैं। पँवारोंके बिना धारा नहीं और धाराके बिना पँवार नहीं।

यदुवंशी-चूड़ासमा

तैं गरुवा गिरनार, काँई मन मंछर धरयो ।
मरताँ रा' खेंगार अेको सिखर न ढालियो ॥ ७ ॥

माणेरा, मत रोय, मत कर रत्ती अंखियाँ ।
कुळमें लागै खोय, मरताँ माँ न सँभारजे ॥ ८ ॥

पाँपणने पड़ताँह, कहो तो, कुवा भराविये ।
माणेरा मरताँह सरीरमें सरणाँ वहे ॥ ९ ॥

यदुवंशी-भाटी

रावळ भोजदे

ताड़ाँ घड़ तुरकाणरी, मोड़ाँ खान मजेज ।
दाखे अनमी भोजदे, जादम करै न जेज ॥१०॥

भटियाणी राणी ऊमादे

माण रखै तो पीव तज, पीव रखै तज माण ।
दोय-दोय गयँद न बंधसी अेकै कंबू ठाँण ॥११॥

७—हे गौरवशील गिरनारके पहाड़, तूने मनमें यह क्या मत्सर धारण किया जो राव खेंगारके मरनेपर अेक भी शिखर नहीं गिराया (खेंगार गिरनारका राजा था ।)

८—हे माणेरा, तू रो मत, रोकर आँखोंको लाल मत कर, मरते समय माताको कभी याद नहीं करना चाहिअे, इससे कुलमें कलंक लगता है ।

९—जब पलक पड़ते हैं तब, कहो तो, कुएँ-के-कुएँ भर दूँ, माणेरेके मरनेसे शरीरमें धाराएँ वह चली हैं ।

१०—घड़—घटा, सेना । तुरकाण—यवन-मंडल । दाखे—कहता है । अनमी —जो किसीके आगे नहीं झुकता । जादम—यादव, जेसलमेरके भाटी यादव शाखाके राजपूत हैं । जेज—विलंब ।

११—माण—मान, रूठना । बँधसी—बँधेंगे ।

कछवाहा

महाराज मानसिंह

सबै भोम गोपाळकी, तामें अटक कहा।
जाके मनमें अटक है सोई अटक रहा ॥१२॥

महाराज ईश्वरीसिंह

मंत्री मोटा मारिया खत्री केसोदास।
जद ही छोडी, ईसरा, राज करणकी आस ॥१३॥
ईसर, लेह मिटै नहीं, जुगजुग यह गाया।
प्याला केसोदासने पाया सो पाया ॥१४॥

केसरीसिंह (खंडेला)

बीकानेर सुवस वसो, दिनरैण सवाई।
मरज्यो राजा केहरी वळ जाज्यो बाई ॥१५॥

सीसोदिया

राणा राजसिंह

ओड़ा रतन सँघारिया राजड़ आसकरन्न।
वो हिंदवाणी बादसा, वो बादसा वरन्न ॥१६॥

१२—भोम—भूमि। अटक—पंजाबके आगे अेक प्रसिद्ध नगर, उसके आगेकी भूमि म्लेच्छभूमि मानी जाती थी इसलिअे हिंदू अटक पार नहीं जाते थे।

१४—लेह—लेख। प्याला—विषका प्याला।

१५—सुवस—अच्छी तरह। सवाई—सवाया, अधिकाधिक। केहरी—केसरीसिंह। वळ जाज्यो—जल जाय। बाई—बीकानेरकी राजकुमारी जो केसरीसिंहको ब्याही गई थी (दानसे असंतुष्ट चारणोंका कथन)।

१६—ओड़ा—अेक गांव। सँघारिया इ०—दो रत्न मारे गये। राजड़—राणा राजसिंह। आसकरन्न—चारण आसकरण। वो इ०—वह राजसिंह हिंदुओंका बादशाह था और वह आसकरण चारण-वर्णका बादशाह था।

राणा अड़सी

अड़सीसूं अड़िया जिके पड़िया करै पुकार ।
महापुरसांरी मूंडक्यां गिलगी गांव गैंगार ॥१७॥

मेवाड़के सिरायत

त्रिहुँ झाला, त्रिहुँ पूरब्या, चूँडावत भड़ च्यार ।
दुय सगता, दुय राठवड़, सारंगदेव, पँवार ॥१८॥

राठोड़ (जोधपुर)

इंदांरो उपगार, कमधज, मत भूलो कदे ।
चूँडो चँवरी चाड़ दियो मंडोवर दायजे ॥१९॥

राव सीहोजी

भीनमाल लीधी भड़ै सीहै सेल वजाय ।
दत दीधो, सत संग्रह्यो, ओ जस कदे न जाय ॥२०॥

१७—अड़सी इ०—उदयपुरके राणा अड़सीसे जो अड़े ये पड़े हुओ पुकार ही कर रहे हैं। गैंगार गांव महापुरुषोंके मुंडोंको खा गया। महापुरुष—नागे साधु जो अड़सी से लड़े थे।

१८—भड़—योद्धा। मेवाड़के सोलह सिरायतों (प्रधान सरदारों) में तीन झाला राजपूत, तीन पूरबी राजपूत, चार चूँडावत (चूँडाके वंशज, सीसोदिया), दो शक्तावत (शक्तसिंहके वंशज, सीसोदिया), दो राठोड़, अेक सारंगदेवोत और अेक पँवार राजपूत है।

१९—हे राठोड़, इंदा राजपूतोंके उपकारको कभी मत भूलना जिन्होंने चूँडाको कन्या देकर दहेजमें 'मंडोर' का दुर्ग दिया था (राजस्थानमें राठोड़ोंका महत्त्व यहींसे बढ़ा—राव जोधा तक मंडोर राठोड़ोंकी राजधानी रहा)। वि०—इंदा पड़िहार राजपूतोंकी अेक शाखा है।

२०—भड़ै—योधा। सेल—भाले। दत—दान।

राव चूँडो

चूँडा, तने न चींत काचर कालाऊ-तणो ।
भूप भयो अंभीत मंडोवररे मालिये ॥२१॥

गोगादे

भूखा तिसिया थाकड़ा, गालीजै नेड़ाह ।
ढलिया हाथ न आवसी, गोगादे घोड़ाह ॥२२॥

महाराजा रामसिंह

रामो मन भावै नहीं, उत्तर दीनो देस ।
जोधाणो झाला करै, आव धणी वखतेस ॥२३॥
केहर, देवो, छतरसी, ढालो राजकँवार ।
मरते मोंडे मारिया चोटीआला च्यार ॥२४॥

राठौड़ (बीकानेर)

बीकानेर की स्थापना

पन्रै सै पैंतालवे, सुद वैसाख सुमेर ।
थावर बीज थरप्पियो बीकै बीकानेर ॥२५॥

महाराजा रायसिंह

तूँ सै देसी रूँखड़ो, म्हे परदेसी लोग ।
म्हांने अकबर तेड़िया, तूँ कत आयो, फोग ॥२६॥

२१—हे राव चूँडा, कालाऊ गाँवके काचरे अब तुम्हें याद नहीं हैं अब तो मंडोरके महलमें तुम निर्भय होकर बैठे हो ।

२२—तिसिया—प्यासे । थाकड़ा—थके हुअे । नेड़ाह—पास । ढलियां—आगे चले जानेपर, बढ़ जानेपर ।

२३—रामो—महाराज रामसिंह । उत्तर दीनो—जवाब दे दिया । झाला—आनेके लिअे हाथसे संकेत, हाथसे बुलाना ।

२४—मोंडे—मुंडित, साधु; यहां स्वामी आत्माराम सन्यासी-चोटीआला—चोटीवाले, अमुंडित ।

२६—सै—है। म्हे—हम। म्हांने—हमको। तेड़िया—बुलाये। कत—किसलिअे।

महाराजा जोरावरसिंह

डाढाळी डोकर थई, का तूँ गई विदेस ।
खून विना क्यों खोसजे निज वीकाँरा देस ॥२७॥

अभो ग्राह, वीकाण गज, मारू समँद अथाह ।
गरुड़ छांड गोविंद ज्यूँ साय करो, जयसाह ॥२८॥

वीकाणे जोखो नहीं, जोखो है जोधाण ।
अभो अपूठो जावसी मेले मोटो माण ॥२९॥

पृथ्वीराज

अस लीलो, पिव पीथळो, चंपावती ज नार ।
अै तीनूँ ही अेकठा सिरज्या सिरजणहार ॥३०॥

पृथीराज कल्याणरा, थारो जस गाऊँ ।
तूँ दाता, हूँ मंगतो, इण नाते पाऊँ ॥३१॥

लालादे

तो राँध्यो नहिं खावस्याँ, रे वासदे निसड्ढ ।
मो देखत तूँ वाळिया लाल-रहंदा हड्ड ॥३२॥

२७—डाढाळी—करणीजी । डोकर—बूढ़ी । थई—हुई । का—अथवा । खून—अपराध ।

२८—अभो—जोधपुर-महाराज अभयसिंह । साय—सहायता ।

२९—जोखो—जोखिम । अपूठो—वापिस, पीठ देकर । मेले—त्यागकर ।

३०—अस—अश्व, घोड़ा । पिव—पति । पीथळो—पृथ्वीराज (बीकानेर) अै—ये । अेकठा—अेकत्र ।

३१—कल्याणरा—कल्याणसिंहके पुत्र । पाऊँ—दान पाऊँ । वि०—टिप्पण कहानी देखिये ।

३२—वासदे—वैश्वदेव, अग्नि । वाळिया—जला दिये । लाल-रहंदा—लालादेके ।

बीकानेरकी वंशावली

बीको, नेरो, लूणसी, जेतो, कल्लो, राय।
दलपत, सूरो करणसी, अनुप, सरूप, सुजाय ॥३३॥
जोरो, गज्जो, राजसी, परतापो, सूरत्त।
रतनसिंह, सरदारसिंह, डूंग, गंग महिपत्त ॥३४॥

जयपुर-जोधपुर

जयसिंह और वखतसिंह

पत-जयपुर जोधाण-पत, दोनूँ थाप-उथाप।
कूरम मार‍्या डीकरो, कमधज मार‍्यो बाप ॥३५॥

जेसलमेर—जोधपुर

आधी धरती भींव, आधी लोदरवे धणी।
काक नदी छै सींव राठोड़ां ने भाटियां ॥३६॥

प्रकीर्णक

मुहणोत नैणसी

लाख लखांरां नीपजै वड-पीपलरी साख।
नटियो मूँतो नैणसी तांबो देण तलाक ॥३७॥

३५—पत—पति, राजा। जोधाण—जोधपुर। कूरम—कछवाहा, जयपुरनरेश कछवाहा राजपूत हैं। डीकरो—बेटा। कमधज—कबंधज, राठोड़; जोधपुर-नरेश राठोड़वंशी हैं।

३६—भींव—राठोड़ राजा राव भीम। लोदरवा—जेसलमेर राज्यका प्राचीन नाम। काक—अेक नदीका नाम।

३७—नटियो—इनकार करनेपर। मूँतो नैणसी—महाराज जसवंतसिंहका अेक मंत्री और प्रसिद्ध इतिहास-लेखक। तांबो इ०—तांबा देनेकी भी तलाक है (महाराजाके अेक लाखका जुर्माना करनेपर नैणसीका कथन)।

लेसो पीपल लाख, लाख लखारा लावसी।
तांबो देण तलाक, नटियो सुन्दर नैणसी ॥३८॥

जाडा चारण

धर जाडी, जाडा अँबर, जाडा चारण जोय।
जाडा नाम अलायदा, ओर न जाडा कोय ॥३९॥

बीरबल

पीथ सूँ मजलिस गई, तानसेनसूँ राग।
रीझ बोल हँस खेलबो गयो बीरबर साथ ॥४०॥

उपालंभ

उदयसिंह हत्यारा (मेवाड़)

ऊदा, बाप न मारजे, लिखियो लाभै राज।
देस बसायो रायमल, सरियो अेक न काज ॥४१॥

बखतसिंह (मारवाड़)

बापो मत कह, बखतसी, कांपत है केकाण।
अेकण बापो फिर कह्यां, तुरग तजैलो प्राण ॥४२॥
बखता, बखत-बायरा, तैं मार्‌यो अजमाल।
हिंदवाणीरो बादसा, तुरकाणीरो काल ॥४३॥

३८—लखारा—लाखका काम करनेवाले।

३९—जाडा—मोटा। अलायदा—खुदाका, परमात्माका।

४०—पीथसूँ—पृथ्वीराजके साथ। बीरबर—बीरबल।

४१—ऊदा इ०—हे ऊदा, पिताको नहीं मारना चाहिअे था, राज्य तो भाग्यमें लिखा होता है तो मिलता है। सरियो—पूरा हुआ। रायमल—ऊदाका बड़ा भाई जो राणा हुआ।

४२—बापो—पिता, घोड़ेको पुकारनेका शब्द। केकाण—घोड़ा। अेकण—अेकबार। तजैलो—छोड़ देगा। नोट—बखतसिंहने अपने बापको मारा था।

४३—बखतबायरा—भाग्यहीन। अजमाल—अजीतसिंह। हिंदवाणी—हिन्दू-मंडल।

जगरामसिंह (मारवाड़)

मरज्यो मती महेस ज्यूँ राड़ विचे पग रोप ।
झगड़ामें भागो जगो, उण पाई आसोप ॥४४॥

बीकानेरके सरदार

फिट बीदाँ, फिट कांधलाँ, जंगळधर लेडाँह ।
दलपत हुड ज्यूँ पकड़ियो, भाज गई भेडाँह ॥४५॥

चूरू-ठाकुर

कांदा खाया कमधजाँ, घी खायो गोलाँह ।
चूरू चाली, ठाकराँ, बाजंते ढोलाँह ॥४६॥

राजस्थानके राजा

सिंघाँ सिर नीचा किया, गाडर करै गलार ।
अधपतियाँ सिर ओढणी, तो सिर पाघ, मलार ॥४७॥

४४—राड़—युद्ध । पग रोप—दृढ़ता-पूर्वक । जगो—जगरामसिंह । उण पाई आसोप—उसे 'आसोप' का ठिकाना मिला ।

४५—बीदाके वंशजोंको धिक्कार है, कांधलके वंशजोंको धिक्कार है, जंगलधर बीकाके वंशजोंको धिक्कार है, जो उनके होते हुओ मेंढ़ेकी भांति महाराज दलपतसिंह को शत्रुओंने पकड़ लिया और ये लोग उनको छोड़कर भेड़ोंकी तरह भाग गये ।

४६—राठोड़ोंको प्यांज खानेको मिला और गोलोंने घीके माल उड़ाये । हे ठाकुर साहब, इसीका फल है कि आपका यह किला ढोल बजते हुओ हाथसे निकल रहा है ।

४७—सिंहोंने सिर नीचे कर रखे हैं और भेड़ खुश हो रही है । आज राजाओंके सिरपर ओढ़नी पड़ी हैं और पगड़ी, हे मल्हारराव होल्कर, वास्तवमें तेरे ही सिरपर है ।

२—भौगोलिक

सामान्य

सीयाले खाटू भलो, ऊनाले अजमेर।
नागाणो नित-नित भलो, सावण बीकानेर ॥ १ ॥
स्याले भलो ज मालवो, ऊनाले गुजरात।
चोमासे सोरठ भलो, वड़वो वारह मास ॥ २ ॥

मारवाड़

जल ऊँडा, थल ऊजला, नारी नवले वेस।
पुरख पटाधर नीपजे, अइ हो मुरधर देस ॥ ३ ॥
मारू देस उपन्नियाँ, सर ज्यूँ पाधरियाँह।
कड़वा कदे न बोलही, मीठा बोलणियाँह ॥ ४ ॥
मारू देस उपन्नियाँ, त्याँका दंत सुसेत।
कूँझ बचाँ गोरंगियाँ, खंजर जेहा नेत ॥ ५ ॥
देस सुरंगो, जल सजल, मीठा-बोला लोय।
मारू कामण धर दखण जे हर देय तो होय ॥ ६ ॥

२—भौगोलिक

१—सीयाले—शीतकालमें, जाड़ेमें। खाटू—जोधपुर राज्यमें अेक स्थ
ऊनाले—उष्णकालमें, ग्रीष्ममें। नागाणो—जोधपुर राज्यमें नागोर नामक शा
सावण—श्रावणमें, वर्षाकालमें।

२—सोरठ—काठियावाड़। वड़वो—गुजरातमें अेक स्थान।

३—ऊँडा—गहरा। नवले वेस—नवीन वयकी, नवयुवती, सुन्दरी। पुर
पुरुष। पटाधर—तलवार-धारी। नीपजे—उत्पन्न होते हैं। मुरधर—मरुधरा, मार

४—सर—तीर। पाधरिया—सीधे, लंबे। कदे—कभी। बोलणिया—बो
वाले (होते हैं)।

५—उपन्नियाँ—उत्पन्न हुई। कूँझ इ०—क्रौंचके बच्चोंके समान गौरवर्णवा
खंजर इ०—खंजनकी तरह नेत्र होते हैं।

६—लोय—लोग। मारू इ०—मारवाड़की कामिनी दक्षिणकी भूमिमें, भ
विशेष अनुग्रह करके दें तभी, पत्नीरूपमें मिल सकती है।

देस सुरंगो, जळ सजळ, न दिया दोस थळांह ।
घर-घर चंद-वदन्नियाँ नीर चढै कमळांह ॥ ७ ॥
लाटा काठा लीजिये गेहूँ तीखा खाण ।
भड़ वांका, तीखी तुरी, अइ हो धर जोधाण ॥ ८ ॥

मारवाड़की नदियाँ

रेड़ीयो रणका करै, लूणी लहरां खाय ।
बांडी बपड़ी क्या करै, गुहियासूँ घर जाय ॥ ९ ॥

बीकानेर

ऊँठ, मिठाई, अस्तरी, सोनो-गहणो, साह ।
पांच चीज पिरथी सिरे, वाह वीकाणा वाह ॥१०॥

ढूँढाड़ (जयपुर)

ऊँचा परवत, सेर वन, कारीगर तरवार ।
इतरा वधका नीपजे, रंग देस ढूँढाड़ ॥११॥
वागां-वागां वावड़्यां, फुलवांदां चहुँ फेर ।
कोयल करै टहूकड़ा, अइ हो धर आंबेर ॥१२॥
आम ज उमदा नीपजे, गेहूँ अर गुड़ वाड़ ।
नर नाहर तो नीपजे, सेखा-धर ढूँढाड़ ॥१३॥

८—गेहूँ—खानेके लिये उत्तम काठा गेहूँ उत्पन्न होता है ।

९—रेड़ीयो, लूणी, बांडी, गुहिया—मारवाड़की ४ नदियां । रणका—शोर । बपड़ी—बेचारी । जाय—नष्ट होते हैं क्योंकि यह बहुत जोरसे चढ़ता है ।

१०—अस्तरी—स्त्री । साह—साहूकार । पिरथी सिरे—पृथ्वीमें सबसे बढ़कर । वीकाणा—हे बीकानेर ।

११—इतरा इ०—इतनी चीजें श्रेष्ठ उत्पन्न होती हैं । रंग—धन्य है ।

१२—वागां इ०—बाग-बाग में वापिकाएं हैं, चारों ओर फुलवारियां हैं ।

१३—सेखा धर—शेखाकी भूमि । जयपुरमें शेखा प्रसिद्ध वीर हो चुका है ।

उदयपुर

उदियापुर लंजा सहर, माणस घणमोलाह ।
दे भाला पाणी भरै आया पीछोलाह ॥१४॥
भाटा, तू सम्भागियो, पीछोलारी टग ।
गुललंजा पाणी भरै ऊपर दे-दे पग ॥१५॥
उदियापुररी कामणी गोखाँ काढै गात ।
मन तो देवाँरा डिगै मिनखाँ कितीक बात ॥१६॥

आबू

टूके-टूके केतकी, भिरणे-भिरणे जाय ।
अरबुदकी छवि देखताँ और न सालै दाय ॥१७॥
जाणै जिके सुजाण नर, नहिं जाणै सो थोक ।
जमी ओर असमान विच आबू तीजो लोक ॥१८॥
वनसपती पाखर वणी, वणिया टूक विहद ।
पटा विछूटै नीभरण आयो मद अरबुद ॥१९॥
गह घूमी, लूमी घटा, वीजाँ सहिराँ वद ।
वादल माँय विराजियो आजूणो अरबुद ॥२०॥
चंपा माणो, गिर चढो, आँबा भखो अवल्ल ।
अरबुदसूँ अलगा रहै, जिणरो कोण हवल्ल ॥२१॥

१४—लंजा—सुन्दर। माणस इ०—जहांके मनुष्य बहुमूल्य हैं। पीछोलाह—उदयपुरकी सुप्रसिद्ध झील।

१५—भाटा—हे पत्थर। सम्भागियो—सौभाग्यशाली। टग—सहारा देनेकी चीज। गुललंजा—सुन्दरियां।

१६—उदियापुररी इ०—उदयपुरकी कामिनियां जब झरोखोंके बाहर अपने सुन्दर शरीरको निकालती हैं तो उन्हें देखकर देवोंका भी मन डिग जाता है मनुष्योंकी तो बात ही कितनी।

राड़धड़ा

घर ढांगी, आलम धणी परगल लूणी पास ।
लिखियो जिणने लाभसी राड़धड़ारो वास ॥२२॥

गोढाण

मइ मे आंवलियांह, गुणसागर गोढाणरी ।
फूलां बहु फलियांह, नीका दंतण नीपजै ॥२३॥७०॥
॥५६५॥

१७—सालै दाय—पसंद आता है ।

१८—जिके—वे । बोक—मूढ़ । जमी—पृथ्वी ।

१९—पाखर—प्रखर, प्रचुर, सुन्दर । विहद—बहुत अधिक । नोझरण—
रने । आयो इ०—मानो अर्बुद हाथीको भांति मद-युक्त हो रहा है ।

२०—बीजां—बिजली । सहिरां—शिखरोंपर । आजूणो—आजका ।

२१—अवल्ल—उमदा । हवल्ल—हाल ।

२२—घर इ०—जहां ढांगो नामक रेतके टीबेकी जमीन है, जहां आलमजी
नामक देवता संरक्षक हैं, और जहां प्रचुर जलवाली लूणी नदी पासमें ही है,
ऐसे राड़धड़ाका निवास जिनके भाग्यमें लिखा है उन्हीं को मिलेगा ।

हास्य और व्यंग

रावण

राजा रावण जनमियो, दस मुख, अेक सरीर ।
जननीने सोंसो भयो, किण मुख घालूँ खीर ॥ १ ॥

जनरल प्रतापसिंह

दाढ़ी-मूँछ मुँडायकै सिरपर धरियो टोप ।
प्रतापसी तखतेसरा, (थारे) वाको घटै लँगोट ॥ २ ॥

महाराणा सज्जनसिंह

आगे-आगे वाजता हिंद-इहरा सूर ।
अब देखो मेवाड़पत तारा हुया हजूर ॥ ३ ॥

मारवाड़ी रेल

नहीं तार, नहिं टैम है, नहीं वतीमें तेल ।
आ चालै मनरे मते मारवाड़री रेल ॥ ४ ॥

हास्य और व्यंग

१—जननीने—माताको चिंता हो गई कि किस मुखमें दूध पिलाऊँ ।

२—तखतेसरा—तखतसिंहके बेटे । वाको इ०—फिर डंडी स्वामी बननेमें कोई कसर नहीं ।

३—आगे इ०—सज्जनसिंहजीको सितारे-हिंद (GCSI) की उपाधि मिलनेपर चारण कविका कथन—पहले समयमें तो मेवाड़के राणा हिंदु आ सूरज कहलाते थे पर देखो अब ये हिन्दके तारे बन गये हैं । पाठान्तर—घटत-घटत अैसे घटे तारा भये हजूर ।

४—टैम—टाइम, आने जानेका नियमित समय । वती—बत्ती, रोशनी भी ठीक नहीं । आ इ०—यह मारवाड़की रेल अपने ही मनके अनुसार चलती है ।

मारवाड़

वालूँ, बाबा, देसड़ो पाणी ज्याँ कूवाँह ।
आधीरात कुहक्कड़ा, ज्यूँ माणस मूवाँह ॥ ५ ॥
वालूँ, बाबा, देसड़ो पाणी-संदी तात ।
पाणी-केरे कारणे प्रिव छंडै अधरात ॥ ६ ॥
बाबा, मत देइ मारुवाँ, वर कूँवारि रहेस ।
हाथ कचोलो, सिर घड़ो, सींचंती य मरेस ॥ ७ ॥
बाबा, मत देइ मारुवाँ सूधा गोवालाँह ।
कंध कुहाड़ो, सिर घड़ो, वासो मंझ थलाँह ॥ ८ ॥
जिण भुँय पन्नग पीवणा, केर-कँटाला रूँख ।
आके-फोगे छाँहड़ी, हूँछाँ भाँजै भूख ॥ ९ ॥

५—वालूँ इ०—हे बाबा उस देशको जला दूँ जहाँ पानी कुवोंमें मिलता है और पानी निकालनेवाले आधीरातसे ही अैसा शोर करने लगते हैं मानो कोई मनुष्य मर गया हो ।

६—पाणी इ०—जहाँ पानीका कष्ट है और पानीकी खातिर प्रियतम आधीरातको ही छोड़कर चला जाता है। (पानी निकालेवाले रात रहते ही कुअँपर चले जाते हैं।)

७—बाबा—हे बाबा, मारवाड़के निवासीके साथ मेरा विवाह न करना चाहे मैं कुमारी भले ही रह जाऊँ । हाथमें कटोरा और सिरसर घड़ा इस प्रकार वहाँ मैं दिन-रात पानी ढोती-ढोती ही मर जाऊँगी ।

८—सूधा इ०—मारवाड़के निवासी सीधेसादे गाय चरानेवाले हैं । वहाँ कंधेपर कुल्हाड़ी और सिरपर घड़ा रखना होगा तथा थली (मरुस्थल) के बीच वास करना होगा ।

९—१०—जिण—उस मारवाड़की भूमिमें पी जानेवाले साँप होते हैं, वहाँ करील और ऊँटकटारे ही पेड़ हैं, आक और फोगके नीचे ही छाया मिल सकती है और भुरट घासके बीजोंसे भूख दूर करनी पड़ती है, पहनने-ओढ़नेको केवल कंबल मिलते हैं, साठ पुरसकी (अेक पुरस कोई तीन हाथका होता है) गहराईपर पानी मिलता है, वहाँके लोग अेक स्थानपर टिककर नहीं रहते और वहाँ भेड़ और बकरीका ही दूध मिलता है ।

पहरण-ओढण कामळा, साठे पुरसे नीर ।
आपण लोक उभाँखरा, गाडर-छाळी खीर ॥१०॥
मारवाड़के देसमें अेक न भाजे रिङ्क ।
ऊचाळो, क अवरसणो, कै फाका, कै तिड्ड ॥११॥
पढै गुणै नहिं पेखवै, च्यारूँ वरण निचंत ।
मारवाड़री मूढता मिटसी दोरी, मित ॥१२॥

ढूँढाड़ (जयपुर)

गाजर मेवो, काँस खड़, पुरख ज पूत-उघाड़ ।
ऊँधा ओझर अस्तरी, अइ हो धर ढूँढाड़ ॥१३॥

आवू

धर चंगी, नर चोरटा, वागरियाँरे वेस ।
भालड़ियाँ घिसता फिरै, अइ हो आवू देस ॥१४॥
जव खाणो, भखणो जहर, पाळो चलणो पंथ ।
आवू ऊपर बैसणो भलो सराह्यो, कंथ ॥१५॥

११—भाजै—दूर होता है। रिड्ड—अरिष्ट, कष्ट । ऊचाळो—अकालके समयमें अपने पशुओं सहित दूसरे देशको चला जाना । क, का—या, अथवा । अवरसणो—अवर्षा। फाको—टिड्डियोंके बच्चोंका दल। ऊचाळो इ०—जहाँ ऊचाळा, अवर्षा, टिड्डीदल, या फाकेका आगमन—इनमें से कोई अेक या अधिक उत्पात अवश्य होते हैं ।

१२—पेखवै—देखते हैं । निचंत—निश्चित । दोरी—कठिनतासे । मित—हे मित्र ।

१३—जहाँपर गाजर ही मेवा है, जहाँ खेतोंमें काँस नामक घास पैदा होता है, जहाँके पुरुष चूतड़ोंको ढकते ही नहीं और जहाँ उलटे पेटवाली स्त्रियाँ हैं, हे अैसे ढूँढाड़ देश, तुझे धन्य है ।

१५—हे पति, आबूके निवासको आपने अच्छा सराहा जहाँ खानेको जौ मिलते हैं, जहर-सा पानी पीना पड़ता है, और पैदल मार्ग चलना पड़ता है ।

जेसलमेर

पग पूगल, धड़ कोटड़े, वाहू वाग्रड़मेर ।
फिरतो-घिरतो वीकंपुर, ठावो जेसलमेर ॥१६॥

मालवो

वालूँ, वावा, देसड़ो ज्याँ फीकरिया लोग ।
अेक न दीसै गोरियाँ, घर-घर दीसै सोग ॥१७॥
वालूँ, वावा, देसड़ो ज्याँ पाणी सेवार ।
ना पणियारी भूलरो, ना कूवे लैकार ॥१८॥

विभिन्न देश

पंडितने पूरव भली, ग्यानीने पंजाव ।
मारवाड़ भलि मूरखने, कपटीने गुजरात ॥१९
आतम ध्यानी आगरो, जारे वीकानेर ।
राग-दोख गुजरातमें, निंदक जेसलमेर ॥२०

विभिन्न जातियाँ

चाँपा पालन चारणाँ, ऊदा पालन डूम ।
मेहा पालन वामणाँ, भाटी सदाई सूम ॥२१॥

१६—अकालका कथन—मेरे पैर पूगलमें, धड़ कोटड़ेमें और भुजाएँ वाड़मेरमें रहती हैं; घूमता-घामता वीकानेर भी पहुँचता रहता हूँ पर जेसलमेरमें तो निश्चितरूपसे मिलूँगा ।

१७—ज्याँ—जहाँ । फीकरिया—फीके, नीरस । दीसै—दिखाई देती है गोरियाँ—सुंदरी स्त्री । सोग—शोक, मातम (काले कपड़े पहनेका रिवाज होनेसे)

१८—सेवार—सेवाल । ना इ०—न तो पनिहारियाँ झुंड बनाकर पानी लानेको चलती हैं और न कुओंपर चलानेवालोंका सुरीला शब्द ही होता (जैसा कि मारवाड़में हुआ करता है) ।

२१—चाँपावत चारणोंके पालक हैं, उदावत डूमोंके, और मेहा ब्राह्मणों पर भाटी राजपूत सदा ही कंजूस रहे हैं (वे किसीको नहीं पालते) ।

जाट, जँवाई, भाणजा, रैंवारी, सोनार ।
इतरा करे न आपरा, कर देखो उपगार ॥२२॥
बीजावरगी वाणियो, दूजो गूजर गोड़ ।
तीजो मिलै ज दायमो, करै टापरो चोड़ ॥२३॥
वणी वणावै वाणिया, वणी विगाड़ै जाट ।
मूँडै सीस सरायकर डूम, कवीसर, भाट ॥२४॥
चाकर, चोर, र पारधी भूखा सारै काज ।
धाया काम करै नहीं नाई, गंडक, बाज ॥२५॥
गैला, गंडक, गुलाम, पुचकारयाँ बाथै पड़ै ।
कूट्या देवै काम, रीस न कीजै, राजिया ॥२६॥
जंगल जाट न छेड़िये, हाटाँ बीच किराड़ ।
रंघड़ कदे न छेड़िये, जद-तद करै विगाड़ ॥२७॥
तिरियाँ, तुरकाँ, वाणियाँ, भील भला मत जाण ।
देख गरीब न भूलजे, निपट कपटकी खाण ॥२८॥

२२—रैंवारी—ऊँट चरानेवाली जाति । इतरा—इतने । आपरा—अपने । उपगार—उपकार ।

२३—करै इ०—सत्यानाश कर देते हैं ।

२४—सरायकर—तारीफ करके सिर मूँडते हैं । कवीसर—कवीश्वर ।

२५—पारधी—शिकारी, व्याध । सारै—पूरा करते हैं । धाया—पेट भरे हुए । गंडक—कुत्ता ।

२६—गैला इ०—पागल, कुत्ते और गुलाम जातिके लोग प्रेम करनेसे लड़ने लगते हैं । ये कूटनेसे ही काम देते हैं ।

२७—किराड़—बनिया । रंघड़—मुसलमान । जद-तद—जब कभी, कभी-न कभी ।

२८—देख इ०—इन्हें गरीब, सीधासादा, देखकर धोखा न खाना खाण—खान ।

अग्गमवुद्धी वाणियो, पिच्छमवुद्धी जाट।
तुर्तवुद्धी तुरकड़ो, वामण सप्पमपाट ॥२६॥
अग्गमवुद्धी वाणियो, पिच्छमवुद्धी ब्रह्म।
तुर्तवुद्धी तुरकड़ो, मुक्को मारै धम्म ॥३०॥
सबसूँ बुरो सुनार, वाण्यो उणसूँही बुरो।
दरजी दयानतदार दीठो कोइ न, दानिया ॥३१॥

राजपूत सरदार

वै घोड़ा, वै गाँम, रिजक वही, राजा वही।
रजपूतांरो राम नीसरग्यो क्यूँ, नोपला ॥३२॥
ठाकर गेया, ठग रह्या, रह्या मुलकरा चोर।
वै ठकराण्याँ मर गई ठाकर जिणती ओर ॥३३॥
आजकालरा ठाकराँ, (थाँसूँ) ठकराण्याँ रूड़ी।
फिट है थाँरी पाघड़ी, धिन वाँरी चूड़ी ॥३४॥
घोचो लागाँ घाव घी-गेहूँ भावै घणा।
अहड़ा तो अमराव रोटयाँ मूँघा, राजिया ॥३५॥

२६—अग्गमवुद्धी—आगेसे सोचनेवाला, दीर्घदर्शी। पिच्छमवुद्धी—पीछे सोचने वाला। तुर्तवुद्धी—वक्तपर सोचनेवाला। सप्पमपाट—सफंसफा, बिल्कुल खाली।

३०—ब्रह्म—ब्राह्मण। धम्म—घूँसेकी आवाज।

३१—वाण्यो—बनिया। उणसूँही—उससे भी। दयानतदार—ईमानदार, दीठो—देखा।

३२—वै—वे। राम इ०—सत्त्वहीन कैसे हो गये।

३३—ठाकर—ठाकुर, जागीरदार जिनकी उपाधि ठाकुर होती है। मुलकरा—मुल्क भरके। ठकराण्याँ—ठकुरानियाँ। ओर—दूसरे प्रकारके (सच्चे)।

३४—ठाकराँ—हे ठाकुरों। थाँसूँ—तुमसे। रूड़ी—भली। फिट—धिक्कार धिन—धन्य।

३५—घोचेका (लकड़ीके अेक तिनकेका) घाव लग जानेपर भी जिन्हें घी-गेहूँके तर माल खानेकी आवश्यकता हो जाती है, अैसे सरदार तो रोटियों बदले भी रहें तो भी महँगे हैं।

कविराजा, खेती करो, हलसूँ राखो हेत ।
गीत जमीमें गाड़ दो, ऊपर राळो रेत ॥३६॥

बनिया

जळ नदियाँ मिळियाँ जके, मिळिया समँद मँझार ।
वित कर चढिया वाणियाँ, पूगा समँदाँ पार ॥३७॥

दरसावे जगने दया, पाप उठावे पोट ।
हितमें, चितमें, हाथमें, खतमें, मतमें खोट ॥३८॥

बाण न छोड़े वाणियो, टाणे आई टेव ।
दाव पड़्याँ, विदरो कहे, ठगे सगो गुरदेव ॥३९॥

दी सुरही हाजर हुई, विनय-सुणावे वात ।
गादी-हूँत भगावियो जमराजा इण जात ॥४०॥

वणक-पुत्र कागद लिखै, काना-मात न देत ।
हींग मिरच जीरो लिखै, हूँग मर जर कर देत ॥४१॥

साधु-महंत

चेला लावे माँगकर, बैठा खावे मंथ ।
राम-भजनका नाँव है, पेट भरणका पंथ ॥४२॥

३६—हेत—प्रेम । राळो—डालो । (क्योंकि अब कोई राजपूत सरदार तुम्हारी कविताकी कदर करनेवाला नहीं रहा)

३७—जो जल नदियोंमें मिलगये वे समुद्रमें मिल सकते हैं । पर बनियोंके हाथ जो धन चढ़ गया वह समुद्रके भी पार पहुँच गया । नदीका जल समुद्रमें मिल जाता है पर बनियोंके हाथों चढ़ा हुआ धन फिर नहीं मिलता ।

३८—पाप इ०—और पापका बोझ साथ ही उठाताहै । खोट—कपट ।

३९—बाण—आदत । दाव पड़्याँ—दाव आनेपर । ठगे इ०—सगे गुरुको भी ठग लेताहै ।

४०—दी सुरही—दानकी हुई गाय । गादी हूँत इ०—बनियोंकी इस जातिने यमराजको भी अपने सिंहासनसे भगा दिया (कहानी पीछे टिप्पणीमें देखिये)।

४२—मंथ—महंत ।

मूँड मुँडायाँ तीन गुण,—मिटी टाटकी खाज ।
बाबा बाज्या जगतमें, मिल्या पेटभर नाज ॥४३॥

फूहड़ पति

नर-रिपु-वाहणतास रिपु, ता पति वाहण जोय ।
सखी, हमीणा कंथने, मत बतलावो कोय ॥४४॥
मैं जाण्यो अधसेर है, पिव तो पूरा सेर ।
हेम-सुता--पत--वाहणा, तामें रती न फेर ॥४५॥
मैं परणंती परखियो, मूँछाँ-तणो मरट्ट ।
सायधण फेरै अरटियो, फेरै पीव घरट्ट ॥४६॥
मैं परणंती परखियो, लाँबो घणो लड़ाक ।
आलेड़ाकी भींत ज्यूँ, पड़ै दड़ाक-दड़ाक ॥४७॥
सखी, हमीणा कंथरी दिलमें आई दाय ।
घर रोखालै माँगणा, माल पराया खाय ॥४८॥
सखी, हमीणा कंथरी काँई कहूँ वणाय ।
आटा काढै ओररा, घराँ पराया जाय ॥४९॥

४३—गुण—लाभ । टाट—खोपड़ी । खाज—खुजली । बाज्या—कहलाये ।

४४—नर इ०—मनुष्यका शत्रु यम, उसका वाहन महिष, उसका शत्रु दुर्गा, उसके पति महादेव, उनका वाहन बैल । सखी इ०—हे सखी, देखो, मेरा पति पूरा बैल है । उससे कोई मत बोलो ।

४५—हेम-सुता-पत-वाहणा—हेमसुता अर्थात् पार्वती, उसके पति अर्थात् महादेव, उनका वाहन अर्थात् बैल । फेर—फरक ।

४६—परखियो—देखा । अरटियो—अरहट । घरट्ट—घट्टी, चक्की ।

४७—लाँबो लड़ाक—बहुत लंबा (परिहासात्मक शब्द) । आलेड़ा—गीला । दड़ाक-दड़ाक—तड़ातड़ ।

४८—रोखालै—निगरानी करता है ।

नोट—मिलाओ वीर-रसमें दूहा नं० २७ से ३१ ।

प्रेम-महिमा

पोथा तो थोथा भया, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेमका, पढ़ै स पंडित होय ॥ १ ॥
साजन, वेल सनेहरी, किणसूँ कही न जाय।
जैसें छहियाँ फूलकी, माँहोमाँह समाय ॥ २ ॥
प्रेम-कहाणी कहत हूँ, सुणो सखी री आय।
पिव ढूँढणको हम गईं, आईं आप हिराय ॥ ३ ॥
प्रीत-रीतके काज, पंछी पण बंधण सहैं।
तीतर वहरी बाज, गगन गया क्यूँ वावड़ै ॥ ४ ॥

प्रेम निर्वाहकी कठिनता

सब कोइ प्रीत वटावते, सब कोइ करते भाव।
सम्मन, वै कुण रूँखड़ा, ज्यॉं न झकोलै वाव ॥ ५ ॥
प्रीत-प्रीत सब कोइ कहै, कठिन प्रीतकी रीत।
आद-अंत निबहै नहीं, ज्यों बालूकी भींत ॥ ६ ॥
प्रीत-प्रीत सब कोइ करै, कहा करथेमें जात।
करबो और निभायबो, बड़ी कठिन या बात ॥ ७ ॥

प्रेम महिमा

२—किणसूँ—किसीसे भी। छहियाँ—छाया। माँहोमाँह—भीतर ही भीतर।

३—आप—खुदको ही। हिराय—खोकर।

४—पण—भी। वहरी—अेक पक्षी। वावड़ै—लौट आते हैं। गगन इ०—नहीं तो आकाशमें उड़ जानेके बाद भी फिर क्यों लौट आते हैं?

५—वटावते—लेनदेन करते हैं। भाव इ०—मोलचाल करते हैं। कुण—कौन। ज्यॉं—जिनको। वाव—वायु। झकोलै—झकझोरता है।

७—करथेमें—करनेमें। कहा जात—क्या जाता है।

खड्ग-धारपर काय, चालै तो चलवो सहल।
मुसकल जगरे मांय नेह निभावण, नागजी ॥ ८॥

प्रीत निभावण कठन है, प्रीत करो मत कोय।
भांग भखण है सहज पण, लहरां मुसकल होय ॥ ९॥

जाणै सोई जाणसी, प्रीत-रीतको भेद।
वंध्या पीर प्रसूतको, कहा बतावै खेद ? ॥१०॥

अकथ कहाणी प्रीतकी, कही न मानै कोय।
जाणै सो जाणै, अरे, जिण सिर बीती होय ॥११॥

सच्चा प्रेम

प्रीत करै अैसी करै, करके क्यों छिटकाय।
जैसें रोगी नीमकूं छाण-घोट पी ज्याय ॥१२॥

अैसो नेह लगाइये, जैसो कालो रंग।
मैलो हुवै न मंद पड़ै, धोयो धुपै न अंग ॥१३॥

केसरको रंग जरद है, चूनेको रंग सेत।
दोनूं मिल लाली करै, अैसो राखो हेत ॥१४॥

सज्जन, अैसी प्रीत कर, ज्यों हिन्दूकी जोय।
जीतां-जी तो सँग रहै, मरयां पै सत्ती होय ॥१५॥

साजन, अैसी प्रीत कर, निस अर चंदे हेत।
चंदे विन निस सांवली, निस विन चंदो सेत ॥१६॥

८—काय—कोई, कभी। सहल—सहज।
९—कठन—मुश्किल। लहरां—भंगकी तरंगें।
१०—जाणसी—जानेगा। वंध्या—वंध्या स्त्री प्रसूतिकी पीड़ाके कष्ट क्या बता सकती है।
१२—छिटकाय—छोड़ें। नीमकूं—खारा होनेपर भी।
१३—मँद—मंद, कम। धुपै—धुलता है।
१५—जोय—स्त्री। जीतां जी—जीते हुए। मरयां पै—मरनेपर।
१६—निस इ०—जैसा प्रेम रात्रि और चन्द्रमामें है। सांवली—काली, दुखी। सेत—श्वेत, कांतिहीन, मलिन।

बड़ोंका प्रेम

प्रीत भली पारै वडा, रूपँ रूड़ा मोर ।
प्रीत करै नै परहरै, माणस नहिं वै चोर ॥१७॥
पहली परत न कीजिये, ऊँच-नीचसूँ प्रीत ।
कर पीछे कहिये नहीं, रहिये अेकहि रीत ॥१८॥
सदा ज नवलो नेह, जिण-तिणसूँ करणो नहीं ।
आगलड़ारै छेह, आप-तणो दीजै नहीं ॥१९॥
सम्मन, प्रीत न जोड़िये, जोड़ न तोड़ो कोय ।
तोड़्यां पीछे जोड़ियें, गाँठ-गँठीली होय ॥२०॥
सठ-सनेह, जीरण वसन, जतन करंतां जाय ।
चतर-प्रीत, रेसम-लछा, घुलत-घुलत घुल जाय ॥२१॥
प्रीत पुराणी ना पड़े, जो उत्तमसूँ लग्ग ।
सो जुग जो जलमें रहै, पथरी तजै न अग्ग ॥२२॥
संत प्रीत जासों करै, अवस निभावै अंत ।
बोल वचन पलटै नहीं, गिरा रेख गजदंत ॥२३॥

१७—पारै—पालते हैं, निभाते हैं । वडा—बड़े लोग । नै—और । परहरै—छोड़ देते हैं । माणस—मनुष्य । वै—वे । पाठांतर, पारेवड़ा—कबूतरोंकी ।

१८—परत—भूलकर भी ।

१९—सदा इ०—नित्य नया प्रेम जिस किसीसे बिना सोचेविचारे नहीं करना चाहिअे, और सामनेवालेके (दूसरेके) छेह देनेपर स्वयं अपना छेह नहीं देना चाहिअे । छेह देना—अंत देना, क्रुद्ध होना ।

२०—गाँठगँठीली—अनेक गाँठोंवाली ।

२१—जीरण वसन—पुराना वस्त्र । जतन इ०—यत्न करते हुअे भी । रेसम-लछा—रेशमके लच्छे । घुलनो—गहरा हो जाना ।

२२—लग्ग—लगती है । पथरी—चकमक पत्थर । अग्ग—आग ।

२३—जासों—जिससे । अवस—अवश्य । गिरा इ०—उनके वचन हाथी-दाँतपरकी लकीर है जो कभी नहीं मिटती ।

गरवा आदर ना करै, करै प्रीत पालंत ।
शंकर विख,सायर वहनि, कोर मधर धारंत ॥२४॥
जल न डुबोवत काठकूँ, कहो काहेकी प्रीत ।
अपणा सींच्या जाणकर, यही वडोंकी रीत ॥२५॥

आदर्श प्रेमी

डीघी पाल तलावरी, हंसा बैठ्या आय ।
प्रीत पुराणी कारणे, चुग-चुग कांकर खाय ॥२६॥
ताल सूख परपट भयो, हंसा कहूँ न जाय ।
प्रीत पुराणी कारणे, चुग-चुग कांकर खाय ॥२७॥
हाय दई, कैसी भई, अणचाहतको संग ।
दीपकके भावै नहीं, जल-जल मरै पतंग ॥२८॥
आव, पतंग, निसंक जल, जलत न मोड़ो अंग ।
पहली तो दीपक जलै, पीछे जलै पतंग ॥२९॥

२४—गरवा—बड़े । करै—यदि आदर करते हैं, अपनाते हैं । शंकर—जैसे शंकर विषको और समुद्र अग्निको हृदयके भीतर रखते हैं ।

२५—डबोवत—डुबोता है । अपणा इ०—यह जानकर कि मैंने ही इसे सींचकर बड़ा किया है ।

२६—तालावकी ऊँची पारपर हंस आकर बैठ गये हैं और पुरानी प्रीतिके कारण चुग-चुगकर कंकर खाते हैं (पानीके सूख जानेपर भी हंस पुराने प्रेमको नहीं भूलते) ।

२८—हाय विधाता ! यह कैसी बात हो गई जो नहीं चाहनेवालेका संग हुआ । बेचारा पतिंगा तो जल-जलकर मरता है पर दीपकके लिये कुछ भी नहीं ।

२९—ऊपरके दोहेका उत्तर—हे पतिंगे, तू आ और निश्शंक होकर जल, (याद रख) पहले दीपक स्वयं जलता है तब कहीं तेरे जलनेकी बारी आती है ।

पय-पाणीकी प्रीतड़ी, किस विध वांध्यो नेह।
नंदनरहरिया, आपजरि, वाकी राखी देह ॥३०॥

पय उबरयो, पाणी जरयो, तब दुध चल्यो रिसाय।
नंदनरहरिया, तो रहै, पाणी राखै आय ॥३१॥

आग लगी वनखंडमें, दाझ्या चंदण-वंस।
हम तो दाझ्या पंख विन, तूँ क्यों दाझै, हंस ॥३२॥

पान मरोड़या, रस पिया, बैठ्या अेकण डाल।
तूम जलो, हम उठ चलें, जीणो कितोक काल ? ॥३३॥

ओछोंका प्रेम

डूँगर-केरा वांहला, ओछां-केरा नेह।
वहता वहै उँतावला, छिटक दिखावै छेह ॥३४॥

सींच्या हा गुण जाणके, इण न करी कुल-कांण।
छातीपर पैंडा किया, ओछेकी पहचांण ॥३५॥

३०—पय-पाणी—दूध और पानी। नन्द नरहरिया—कविका नाम। आप [ज]रि—पानीने स्वयं जलकर। वाकी—दूधकी। नोट—दूधको गर्म करते हैं तो [प]हले उसमें जो पानी होता है वह जलता है और उसके जलनेके बाद दूध जलने [ल]गता है।

३१—पाणी राखै इ०—यदि फिर पानी आकर रोके (उफनते दूधमें पानी [ड]ाल दिया जाय तो वह बैठ जाता है)।

३२—दाझ्या—जल गये। चन्दण वंस—चन्दन और बांसके पेड़। हम [त]ो इ०—पेड़ोंका कथन वहीं रहनेवाले हंसके प्रति। दाझै—जलता है।

३३—मरोड़या—मरोड़े। बैठ्या इ०—अेक ही डालपर बैठे। तूम इ०—[भ]ला तुम जलो और हम तुम्हें छोड़कर चले जायँ! जीणो इ०—जीना कितने [दि]नोंका जो इसके लिअे मित्रको छोड़कर चल दें।

३४—पहाड़के नाले और ओछोंका प्रेम चलते समय (आरम्भमें) तो खूब [ते]जीसे चलते हैं पर तुरन्त ही अपना अन्त दिखा देते हैं। (तुरन्त ही उनका अन्त [आ] पहुँचता है)

३५—सींच्या हा—सींचे थे। इण० इ०—इन्होंने कुलकी कानका ध्यान [भ]ी न रखा, छातीपर रास्ता बनाया।

सींच्या हा गुण जाणकै, निकस्या निहचै काट।
देखो प्रीत अजाणकी, सिरपर वाही वाट ॥३६॥

प्रीत करी छी नीचसूं, पले ज बँधियो कीच।
सीस काट आगे धर्‌यो, रह्यो नीच-को-नीच ॥३७॥

प्रेमका नाश

पय-पाणीकी प्रीतड़ी, पड़्यो ज कपटी लूँण।
खंड-खंड करि मन गयो, बहुरि मिलावै कूँण ॥३८॥

अगन सोर, गज केहरी, पाव-पदम सिर-मोड़।
उदैराज, कैसें वणै, प्रीत-कपट अेक ठोड़ ॥३९॥

काच-कटोरो, नैण-जल, मोती, दूध, र मन्न।
इतरा फाट्या ना मिलै, लाखूँ करो जतन्न ॥४०॥

मन, मोती, चख, मेर, पाको घट, गूँगो, मुकुर।
फूटा अेता फेर मेळ्या मिलै न, मोतिया ॥४१॥

मोती फाट्यो वींधता, मन फाट्यो अेक बोल।
मोती फेर मँगाय लो, मन तो मिलै न मोल ॥४२॥

मन फाट्या, कण-कण हुआ, फेर घड़ै तो राम।
हरीदास जन यूँ कहै, नहीं ओरका काम ॥४३॥

३६—निकस्या—निकले। निहचै—निश्चय ही। सिरपर इ०—सि[illegible]
रास्ता बनाया। पले इ०—पल्लेमें बँधा, हाथ आया।

३७—छी—थी।

३८—पय—दूध। लूँण—नमक। बहुरि—फिर। कूँण—कौन।

३९—अग्नि और शोरा, हाथी और सिंह, चरण और माथेका मुकुट, प्रेम और कपट—ये अेक ठौर कैसे रह सकते हैं।

४०—र—और। इतरा इ०—इतने फटनेके बाद नहीं मिल सकते।

४१—चख—आँख। पाको घट—पक्का घड़ा। गूँगो—गूँगिया। मुकु[illegible] काच। अेता—इतने। फेर—फिर। मेळ्या इ०—मिलाये जानेपर नहीं मिल स[illegible]

४२—वींधतां—बेधते हुअे। अेक बोल—अेक कटु-वचनसे।

४३—कण-कण—कन-कन, टुकड़े-टुकड़े। फेर—फिर ज्योंका-त्यों ब[illegible] अैसा तो अेक ईश्वर ही है।

१—प्रियतम

साजन-साजन हूँ करूँ, साजन जीव-जड़ी ।
साजन फूल गुलाबरो, निरखूँ घड़ी-घड़ी ॥ १ ॥
साजन-साजन हूँ करूँ, साजन जीव-जड़ी ।
सजन लिखा लूँ चूड़ले, बाँचूँ घड़ी-घड़ी ॥ २ ॥
साजन, तुम-मुख जोय जग सारो ही जोइयो ।
अैसो मिल्यो न कोय, ज्यों देख्याँ तुम्ह वीसरूँ ॥३॥
सज्जन, चूड़ी काचकी कोडी-कोडी देख ।
जब गल लागी पीवके, लाख टकाँकी अेक ॥ ४ ॥
साजन खारा खाँड-सा, केसर जिसा कुरंग ।
मैला मोती सारसा, ओछा जाँण समंद ॥ ५ ॥
साजन अैसा कीजिये, जामें लखण बतीस ।
भीड़ पड़्याँ विरचै नहीं, सीस करै बगसीस ॥ ६ ॥
साजन अैसा कीजिये, जैसा रेसम रंग ।
सिर सूली, धड़ कांगरे, तोड़ न छूटै संग ॥ ७ ॥

१—प्रियतम

१—साँजन—प्रियतम । जीव-जड़ी—प्राणोंके लिअे संजीवनी बूटी ।

२—चूड़लें—चूड़ेपर । सजन—साजन यह शब्द ।

३—जोय—देखकर । जोइयो—देखा । ज्यों इ०—जिसे देखनेसे तुम्हें भूल जाऊँ ।

४—कोडी इ०—कौड़ीके मूल्यमें बिकती देख पड़ती है वही ।

५—प्रियतम खाँड जैसे खारे हैं, केशरके समान कुरंग (बुरे रंग के) हैं, मोतीके समान मैले हैं, और समुद्रकी तरह ओछे हैं (आकर्षण और वर्णन-वैचित्र्यके लिअे विरोधात्मक कथन) ।

६—लखण—लक्षण, सामुद्रिकमें बत्तीस लक्षण प्रसिद्ध हैं । भीड़—कष्ट । विरचै—छोड़े । बगसीस—बख्शीश, त्याग ।

गति गयंद, जँघ केळभ्रभ, केहर जिम कटि वंक।
हीर दसन, विद्रुम अधर, मारू भ्रकुटि मयंक ॥२॥

मारू-घूँघट दिट्ठ में, अेता सहित पुणिंद ।
कीर, भमर, कोकिल, कमल, चन्द, मयंद, गयंद ॥३॥

कीर, कँवल, अर कोकिला, अहि, गज, सिंह, मराल ।
उदैराज, देख्या इता लूँब्या अेकण डाल ॥४॥

मृगनयणी, मृगपतिमुखी, मृगमद-तिलक निलाट ।
मृगरिपु कटि सुन्दर वणी, मारू अैहै घाट ॥५॥

कद थे नाग विसासिया, नैण लिया मृग-मल्ल ।
मान-सरोवर कद गया हंसाँ सीखण हल्ल ? ॥६॥

थल भूरा, वन भंखरा, नहीं स चाँपो जाय ।
गुणे सुगन्धी मारुवी महकी सहु, वणराय ॥७॥

२—गति इ०—मारुवणीकी गति हाथी जैसी, जंघा केलेके भीतरी भाग [illegible]ी कोमल, कमर सिंहकी-सी बाँकी, दाँत हीरों जैसे, अधर मूँगे जैसे और [illegible]ड़ी द्वितीयाके चंद्रमा जैसी है।

३—मारू इ०—मारुवणीके घूँघटके भीतर मैंने इतने पदार्थ देखे। [illegible]णिंद—साँप अर्थात् वेणी। कीर—सुग्गा अर्थात् नासिका। भमर—भ्रमर अर्थात् [illegible]ल। कोकिला—अर्थात् कोयल जैसी वाणी। कमल—अर्थात् मुख या नेत्र। [illegible]द—ललाट। मयंद—सिंह अर्थात् कमर। गयंद—हाथीकी-सी चाल। रूपका-[illegible]शयोक्ति अलंकार।

४—कीर—नासिका। कँवल—मुख, या नेत्र। कोकिला—वाणी। [illegible]हि—वेणी। गज—चाल या जंघा। सिंह—कटि। मराल—चाल। लूँब्या—[illegible]टकते हुअे। उदैराज - कविका नाम।

५—मृगपति—चंद्रमा। मृगमद—कस्तूरी। निलाट—ललाटपर। [illegible]ृगरिपु—सिंह। अैहै घाट—अैसे गठनकी।

६—कद थे—तुमने नागोंको कब अपना विश्वासपात्र बना लिया कि वे [illegible]आकर तुम्हारे केश बन गये, तुमने मृगोंके कब नेत्र छीन लिये, और हंसोंसे [illegible]चाल सीखनेके लिअे तुम कब मानसरोवर गई थी।

७—भूरा—वालुका-मय। भंखरा—भंखाड़। चाँपो—चंपक। जाय—[illegible]पैदा होता है। गुणे—नायिकाके गुणोंकी सुगंधिमें।

साजन अैसा कीजिये, जैसा कूवे कोस।
पग दे पाछा ठेल दे, रती न मानें रोस ॥८॥
साजन इसा न चाहिअे, जैसा झाड़ी-बोर।
ऊपर लाली प्रेमकी, हिरदा मांय कठोर ॥९॥
हूँ बलिहारी सज्जणां, सज्जण मो बलिहार।
हूँ सज्जण पग-पानहीं, सज्जण मो गल-हार ॥१०॥
जलहर वसे कमोदणी, चंदो वसे अकास।
जो ज्यांहीके मन वसे, सो त्यांहीके पास ॥११॥
ससनेही समदां-परे, वसत हिया मंझार।
कुसनेही घर आंगणे, जांण समंदां पार ॥१२॥

२—नायिका

गति गंगा, मति सरसुती, सीता सील-सुभाइ।
महिलां सरहर मारुवी कलिमें अवर न काइ ॥१॥

८—कूवे कोस—कुअेसे पानी निकालनेका चमड़ेका पात्र (चरस), जिसको पानी उँडेल लेनेके बाद निकालनेवाला पैर मारकर फिर कुअेमें डाल देता है। रती—थोड़ा भी। रोस—रीस।

९—इसा—अैसे। बोर—बेर।

१०—मैं प्रियतमपर बलिहारी हूँ और प्रियतम मुझपर बलिहारी हैं। मैं प्रियतमके पैरोंकी पगरखी हूँ और प्रियतम मेरे गलेके हार हैं।

११—जलहर—जलाशय।

१२—सच्चे प्रेमी समुद्रके पार भी रहते हों तो भी हृदयमें ही रहते हैं। और जो प्रेमी सच्चे नहीं हैं वे घरके आंगनमें रहते हुअे भी मानो समुद्रके पार रहते हैं।

२—नायिका

१—गति गंगा—गतिमें गंगाके समान। सरसुती—सरस्वती। महिला—इस कलियुगमें मारुवणीकी बराबरी करनेवाली महिला दूसरी कोई नहीं है।

नोज किणांसूँ लागज्यो वैरी-छोणो नेह ।
धुकै न धूँवो नीसरै, जलै सुरंगी देह ॥ ३ ॥
नैण, पटक दूँ तालमें, छींट-छींट हुय जाय ।
मैं तने, नैणा, कद कह्यो मन पहली मिल जाय ॥ ४ ॥
नैण लगै तो लगण दे, तूँ मत लगियो चित्त ।
वै छूटेंगे रोय, तूँ बँध्यो रहैगो नित्त ॥ ५ ॥२६॥

४—विरह

और रंग सब उतरै ज्यूँ दिन बीत्या जाय ।
विरह प्रेम-बूटा रचै दिन-दिन वधै सवाय ॥ १ ॥
मन, प्रवीण, कुंदन मुहर, प्रेम प्रगासे जोत ।
विरह-अगिनज्यूँ-ज्यूँ तपै त्यूँ-त्यूँ कीमत होत ॥ २ ॥३१॥

५—प्रियका प्रवास

सजन सिपाही, हे सखी, किस विध बाँधूँ नेह ।
रात रहै, दिन उठ चलै, आंधी गिणै न मेह ॥ १ ॥
सीयालै तो सी पड़ै, ऊनालै लू वाय ।
वरसालै भुँय चीकणी, चालण रुत्त न काय ॥ २ ॥

३—नोज—मत । किणांसूँ—किसीसे भी । धुकै—सुलगती है ।
४—छींट-छींट—टुकड़े-टुकड़े । तने—तुझे । कद कह्यो—कब कहा कि मनके मिलनेके पूर्व ही तू प्रियतमसे मिल जाना ।

४—विरह

१—ज्यूँ—जैसे-जैसे । वधै—सवाया बढ़ता है ।
२—मन इ०—प्रवीण कहता है कि मन सोनेकी मुहर है जो प्रेमकी ज्योतिसे प्रकाशमान् है । यह विरहकी अग्निमें ज्यों-ज्यों तपता है त्यों-त्यों मूल्यवान् होता जाता है ।

५—प्रियका प्रवास

१—आंधी इ०—न आंधीकी पर्वाह करता है न मेहकी ।
२—जाड़ेमें शीत पड़ता है, गर्मीमें लू चलती है, बरसातमें पृथ्वी कीचड़से भरी होती है अतः हे प्यारे, प्रवास करनेके योग्य ऋतु कोई नहीं है ।

उर चवड़ी, कड़ पातली, झीणी पाँसलियाँह ।
कै मिलसी हर पूजियाँ, हीमाळे गलियाँह ॥८॥
उर चवड़ी, कड़ पातली, ठावो-ठावो मंस ।
ढोला, थारी मारुवी पावासररो हंस ॥९॥
मारू देस उपन्नियाँ सर ज्यूँ पध्धरियाँह ।
कड़वा बोल न जाणही, मीठा बोलणियाँह ॥१०॥
मारू देस उपन्नियाँ, ताँका दन्त सुसेत ।
कूंझ-बचाँ गोरंगियाँ, खंजन जेहा नेत ॥११॥
देस सुहावो, जळ सजळ, मीठाबोला लोय ।
मारू-कामण भुइँ दिखण जे हर देय तो होय ॥१२॥२

३—प्रेम-पीड़ा

प्रीत करी सुख कारणे, जोको जलन भयो ।
आस मिटी न तृखा बुझी, उलटो भरम गयो ॥ १ ॥
त्रिणको हो तो तोड़ लूँ, प्रीत न तोड़ी जाय ।
प्रीत लगी छूटै नहीं, ज्याँ लग जीव न जाय ॥ २ ॥

८—कड़—कमर। झीणी—कोमल। कै—या तो। हीमाळे—या हिमालय-में गलनेसे।

९—ठावो—उचित स्थानोंपर। पावासर—मानसरोवर।

१०—उपन्निया—उत्पन्न हुई। सर—बाणकी तरह सीधी।

११—कूँझ—क्रौंचके बच्चोंकी तरह गौरांगियाँ होती हैं। नेत—नेत्र।

१२—मारू इ०—मारवाड़की जैसी सुंदरी स्त्री दक्षिणकी भूमिमें भगवान ही दे तो मिल सकती है।

३—प्रेम-पीड़ा

१—कारणे—वास्ते। तृखा—तृषा, लालसा। भरम—प्रतिष्ठा।

२—तिणको—तिनका, तृण। ज्याँ लग—जब तक।

नोज किणांसूँ लागज्यो वैरी-छोणो नेह ।
धुकै न धूँवो नीसरै, जलैं सुरंगी देह ॥ ३ ॥

नैण, पटक दूँ तालमें, छींट-छींट हुय जाय ।
मैं तने, नैणां, कद कह्यो मन पहली मिल जाय ॥ ४ ॥

नैण लगै तो लगण दे, तूँ मत लगियो चित्त ।
वै छूटेंगे रोय, तूँ बँध्यो रहैगो नित्त ॥ ५ ॥२६॥

४—विरह

और रंग सब उतरै ज्यूँ दिन बीत्या जाय ।
विरह प्रेम-वूटा रचै दिन-दिन वधै सवाय ॥ १ ॥

मन, प्रवीण, कुंदन मुहर, प्रेम प्रगासै जोत ।
विरह-अगिनज्यूँ-ज्यूँ तपै त्यूँ-त्यूँ कीमत होत ॥ २ ॥३१॥

५—प्रियका प्रवास

सजन सिपाही, हे सखी, किस विध बाँधूँ नेह ।
रात रहै, दिन उठ चलै, आंधी गिणै न मेह ॥ १ ॥

सीयालै तो सी पड़ै, ऊनालै लू वाय ।
वरसालै भुँय चीकणी, चालण रुत न काय ॥ २ ॥

३—नोज—मत । किणांसूं—किसीसे भी । धुकै—सुलगती है ।

४—छींट-छींट—टुकड़े-टुकड़े । तने—तुझे । कद कह्यो—कब कहा कि मनके मिलनेके पूर्व ही तू प्रियतमसे मिल जाना ।

४—विरह

१—ज्यूँ—जैसे-जैसे । वधै—सवाया बढ़ता है ।

२—मन इ०—प्रवीण कहता है कि मन सोनेकी मुहर है जो प्रेमकी ज्योतिसे प्रकाशमान् है । वह विरहकी अग्निमें ज्यों-ज्यों तपता है त्यों-त्यों मूल्यवान् होता जाता है ।

५—प्रियका प्रवास

१—आंधी इ०—न आंधीकी पर्वाह करता है न मेहकी ।

२—जाड़ेमें शीत पड़ता है, गर्मीमें लू चलती है, बरसातमें पृथ्वी कीचड़से भरी होती है अतः हे प्यारे, प्रवास करनेके योग्य ऋतु कोई नहीं है ।

थल तत्ता, लू सामुही, दाझोला, पहियाह ।
म्हांको कहियो जो करो, घर बैठा रहियाह ॥ ३ ॥

वर्षा

कप्पड़, जीण,कमाण-गुण भीजे सब हथियार ।
इण रुत साहब ना चलै, चालै तिका गँवार ॥ ४ ॥
डूँगरिया हरिया हुवा, वने झिंगोरया मोर ।
इण रित तीने नीसरै, जाचक, चाकर, चोर ॥ ५ ॥
नदियाँ, नाला, नीझरण, पावस चढिया पूर ।
करहो कादम तिलकस्यै, पंथी, पूगल दूर ॥ ६ ॥
अत घण ऊनम आवियो, झाझी रिठ, झड़, वाय ।
बग ही भला ज बापड़ा, धरण न मेल्हइ पाय ॥ ७ ॥
मेहा वूठा, अन वहल, थल ताढा जल-रेस ।
करसण पाका, कण खिरा, तद को वलण करेस ? ॥ ८ ॥

३—भूमि गर्म है, लू सामने है, हे पथिक, तुम जल जाओगे । यदि हमारा कहा करो तो घर ही बैठे रहो ।

४—जीण—जीन । गुण—धनुपकी डोरी । साहब—प्रियतम, सच्चे प्रेमी तिका—वे ।

५—झिगोरया—बोले । रित—ऋतु । तीने—तीन ही । नीसरै—निकलते हैं ।

६—नीझरण—झरने । करहो—ऊँट (जिसपर चढ़कर प्रियतम जाना चाहता है) । कादम—कीचड़में । तिलकस्यै—फिसलेगा । पूगल—अेक स्थान, जहाँ प्रियतम जा रहा है ।

७—घण—बादलोंकी घटा । ऊनम आवियउ—उमड़ आया । झाझी रिठ—बड़ा भारी शीत । वाय—हवा । बग इ०—बेचारे बगुले ही अच्छे । धरण न मेल्हइ पाय—(१) पृथ्वीपर पैर नहीं रखते । (२) चलनेके लिअे पृथ्वीपर पैर नहीं देते ।

८—वूठा—बरसा । अन—अन्न । वहल—बहुल, बहुत । ताढा—ठंढा जल रेस—जलके कारण । करसण—कृषि । कण खिरा—अन्नकण गिरने लगे तद इ०—तब कौन प्रस्थान करता है ?

धनस चढावै सो धरा इंद्र कढावै आण ।
करै न सावण मासमें, पंथी, पंथ पयाण ॥ ९ ॥
तीज रमै छे तीजण्यां, साजण ले-ले लार ।
चढो कियां छो चाकरी, साईनां सरदार ॥१०॥
सावण लागां, सायबा, गाणा-माणा, रंग ।
आणा घर, जाणा नहीं, ठाणां बांध तुरंग ॥११॥
गह घूमी, लूमी घटा, पावस उलट्या पूर ।
...महिने, सायबा, कदे न राखूँ दूर ॥१२॥

शीत

जिण रित मोती नीपजे सीप समंदां मांय ।
तिण रित ढोलो ऊमह्यो, इम को माणस जाय ॥१३॥
जिण रुत नाग न नीसरै, दाझै वनखँड दाह ।
जिण रुत, हे साहब कहो, कुण परदेसां जाह ॥१४॥
प्रीतम, प्यारा प्राणकूँ, मत होवो न्याराह ।
थां विन पलक न आलगै, तन तूटै म्हाराह ॥१५॥
साजन, गहरा समँद-सा, गुण-जल भरियो गात ।
ओछा नाडा ज्यूँ इयां कियां करो छो वात ॥१६॥

१०—धनस—इंद्रधनुष । आण—आन, शपथ । पयाण—प्रस्थान ।

११—तीजण्यां—तीजका त्यौहार मनानेवाली स्त्रियां । लार—पीछे, साथ । साईनां—वयस्य, अेक उम्रके साथी, साथी । चढो इ०—हे प्रियतम, आप नौकरीके लिये प्रवास करनेको क्यों सवार हो रहे हैं ।

१२—लूमी—झुकी, घिरी । पावस इ०—वर्षाजलसे नाले उमड़ पड़े ।

१३—रित—ॠतु । ढोलो—प्रियतम, नायक । ऊमह्यो—उमड़ा, चलनेको तय्यार हुआ ।

१४—साहब—प्रियतम । जाह—जाता है ।

१५—आलगै—लगते हैं । म्हाराह—मेरे ।

१६—गुण-जल—शरीरमें गुण-रूपी जल भरा है । ओछा नाडा इ०—छिछले तालावकी तरह अब कैसे बातें करते हो ।

थल तत्ता, लू सामुही, दाभोला, पहियाह।
म्हाँको कहियो जो करो, घर बैठा रहियाह ॥ ३ ॥

वर्षा

कप्पड़, जीण, कमाण-गुण भीजै सब हथियार।
इण रुत साहब ना चलै, चालै तिका गँवार ॥ ४ ॥
डूँगरिया हरिया हुवा, वनै भिँगोरया मोर।
इण रित तीने नीसरै, जाचक, चाकर, चोर ॥ ५ ॥
नदियाँ, नाला, नीभरण, पावस चढिया पूर।
करहो कादम तिलकस्यै, पंथी, पूगल दूर ॥ ६ ॥
अत घण ऊनम आवियो, भाभी रिठ, भड़, वाय।
वग ही भला ज वापड़ा, धरण न मेल्हइ पाय ॥ ७ ॥
मेहा वूठा, अन वहल, थल ताढा जल-रेस।
करसण पाका, कण खिरा, तद को वलण करेस ? ॥ ८ ॥

३—भूमि गर्म है, लू सामने है, हे पथिक, तुम जल जाओगे। यदि हमारा कहा करो तो घर ही बैठे रहो।

४—जीण—जीन। गुण—धनुषकी डोरी। साहब—प्रियतम, सच्चे प्रेमी। तिका—वे।

५—भिंगोरया—बोले। रित—ऋतु। तीने—तीन ही। नीसरै—निकलते हैं।

६—नीभरण—भरने। करहो—ऊँट (जिसपर चढ़कर प्रियतम जाना चाहता है)। कादम—कीचड़में। तिलकस्यै—फिसलेगा। पूगल—अेक स्थान, जहाँ प्रियतम जा रहा है।

७—घण—बादलोंकी घटा। ऊनम आवियउ—उमड़ आया। भाभी रिठ—बड़ा भारी शीत। वाय—हवा। वग इ०—बेचारे बगुले ही अच्छे। धरण न मेल्हइ पाय—(१) पृथ्वीपर पैर नहीं रखते। (२) चलनेके लिअे पृथ्वीपर पैर नहीं देते।

८—वूठा—बरसा। अन—अन्न। वहल—बहुल, बहुत। ताढा—ठंढा। जल रेस—जलके कारण। करसण—कृषि। कण खिरा—अन्नकण गिरने लगे। तद इ०—तब कौन प्रस्थान करता है ?

धनस चढावै सो धरा इंद्र कढावै आण ।
करै न सावण मासमें, पंथी, पंथ पयाण ॥ ९ ॥
तीज रमै छै तीजण्यां, साजण ले-ले लार ।
चढो कियां छो चाकरी, साईनां सरदार ॥१०॥
सावण लागो, सायबा, गाणा-माणा, रंग ।
आणा घर, जाणा नहीं, ठाणां बांध तुरंग ॥११॥
गह घूमी, लूमी घटा, पावस उलट्या पूर ।
...महिने, सायबा, कदे न राखूँ दूर ॥१२॥

॥ शीत

जिण रित मोती नीपजै सीप समंदां मांय ।
तिण रित ढोलो ऊमह्यो, इम को माणस जाय ॥१३॥
जिण रुत नाग न नीसरै, दाझै वनखँड दाह ।
जिण रुत, हे साहब कहो, कुण परदेसां जाह ॥१४॥
प्रीतम, प्यारा प्राणकूँ, मत होवो न्याराह ।
थां विन पलक न आलगो, तन तूटै म्हाराह ॥१५॥
साजन, गहरा समँद-सा, गुण-जल भरियो गात ।
ओछा नाडा ज्यूँ इयां कियां करो छो वात ॥१६॥

१०—धनस—इंद्रधनुष । आण—आन, शपथ । पयाण—प्रस्थान ।

११—तीजण्यां—तीजका त्यौहार मनानेवाली स्त्रियां । लार—पीछे, साथ । साईनां—वयस्य, अेक उम्रके साथी, साथी । चढो इ०—हे प्रियतम, आप नौकरीके लिअे प्रवास करनेको क्यों सवार हो रहे हैं ।

१२—लूमी—झुकी, घिरी । पावस इ०—वर्षाजलसे नाले उमड़ पड़े ।

१३—रित—ऋतु । ढोलो—प्रियतम, नायक । ऊमह्यो—उमड़ा, चलनेको तय्यार हुआ ।

१४—साहब—प्रियतम । जाह—जाता है ।

१५—आलगै—लगते हैं । म्हाराह—मेरे ।

१६—गुण-जल—शरीरमें गुण-रूपी जल भरा है । ओछा नाडा इ०—छिछले तालाबकी तरह अब कैसे बातें करते हो ।

थल तत्ता, लू सामुही, दाझोला, पहियाह ।
म्हांको कहियो जो करो, घर बैठा रहियाह ॥ ३ ॥

वर्षा

कप्पड़, जीण,कमाण-गुण भीजे सब हथियार ।
इण रुत साहब ना चलै, चालै तिका गँवार ॥ ४ ॥
डूँगरिया हरिया हुवा, वने झिंगोरया मोर ।
इण रित तीने नीसरै, जाचक, चाकर, चोर ॥ ५ ॥
नदियाँ, नाला, नीझरण, पावस चढिया पूर ।
करहो कादम तिलकस्यै, पंथी, पूगल दूर ॥ ६ ॥
अत घण ऊनम आवियो, झाझी रिठ, झड़, वाय ।
वग ही भला ज बापड़ा, धरण न मेल्हइ पाय ॥ ७ ॥
मेहा वूठा, अन वहल, थल ताढा जल-रेस ।
करसण पाका, कण खिरा, तद को वलण करेस ? ॥ ८ ॥

३—भूमि गर्म है, लू सामने है, हे पथिक, तुम जल जाओगे । यदि हमारा कहा करो तो घर ही बैठे रहो ।

४—जीण—जीन । गुण—धनुषकी डोरी । साहब—प्रियतम, सच्चे प्रेमी । तिका—वे ।

५—झिंगोरया—बोले । रित—ऋतु । तीने—तीन ही । नीसरै—निकलते हैं ।

६—नीझरण—झरने । करहो—ऊँट (जिसपर चढ़कर प्रियतम जाना चाहता है) । कादम—कीचड़में । तिलकस्यै—फिसलेगा । पूगल—अेक स्थान, जहाँ प्रियतम जा रहा है ।

७—घण—बादलोंकी घटा । ऊनम आवियउ—उमड़ आया । झाझी रिठ—बड़ा भारी शीत । वाय—हवा । वग इ०—बेचारे बगुले ही अच्छे । धरण न मेल्हइ पाय—(१) पृथ्वीपर पैर नहीं रखते । (२) चलनेके लिअे पृथ्वीपर पैर नहीं देते ।

८—वूठा—बरसा । अन—अन्न । वहल—बहुल, बहुत । ताढा—ठंढा । जल रेस—जलके कारण । करसण—कृषि । कण खिरा—अन्नकण गिरने लगे । तद इ०—तब कौन प्रस्थान करता है ?

धनस चढावै सो धरा इंद्र कढावै आण ।
करै न सावण मासमें, पंथी, पंथ पयाण ॥ ९ ॥
तीज रमै छै तीजण्यां, साजण ले-ले लार ।
चढो कियां छो चाकरी, साईनां सरदार ॥१०॥
सावण लागां, सायबा, गाणा-माणा, रंग ।
आणा घर, जाणा नहीं, ठाणां बांध तुरंग ॥११॥
गहं घूमी, लूमी घटा, पावस उलट्या पूर ।
…महिने, सायबा, कदे न राखूँ दूर ॥१२॥

शीत

जिण रित मोती नीपजे सीप समंदां मांय ।
तिण रित ढोलो ऊमह्यो, इम को माणस जाय ॥१३॥
जिण रुत नाग न नीसरै, दाझै वनखँड दाह ।
जिण रुत, हे साहब कहो, कुण परदेसां जाह ॥१४॥
प्रीतम, प्यारा प्राणकूँ, मत होवो न्याराह ।
थां विन पलक न आलगै, तन तूटै म्हाराह ॥१५॥
साजन, गहरा समँद-सा, गुण-जल भरियो गात ।
ओछा नाडा ज्यूँ इयां कियां करो छो वात ॥१६॥

१०—धनस—इंद्रधनुष । आण—आन, शपथ । पयाण—प्रस्थान ।

११—तीजणयां—तीजका त्यौहार मनानेवाली स्त्रियां । लार--पीछे, साथ । साईनां—वयस्य, अेक उम्रके साथी, साथी । चढो इ०—हे प्रियतम, आप नौकरीके लिअे प्रवास करनेको क्यों सवार हो रहे हैं ।

१२—लूमी—झुकी, घिरी । पावस इ०—वर्षाजलसे नाले उमड़ पड़े ।

१३—रित—ऋतु । ढोलो—प्रियतम, नायक । ऊमह्यो—उमड़ा, चलनेको तय्यार हुआ ।

१४—साहब—प्रियतम । जाह—जाता है ।

१५—आलगै—लगते हैं । म्हाराह—मेरे ।

१६—गुण-जल—शरीरमें गुण-रूपी जल भरा है । ओछा नाडा इ०—पिछले तालायकी तरह अब कैसे बातें करते हो ।

थल तत्ता, लू सामुही, दाम्फोला, पहियाह ।
म्हांको कहियो जो करो, घर बैठा रहियाह ॥ ३ ॥

वर्षा

कप्पड़, जीण, कमाण-गुण भीजै सब हथियार ।
इण रुत साहब ना चलै, चालै तिका गँवार ॥ ४ ॥
डूँगरिया हरिया हुवा, वनै भिँगोरया मोर ।
इण रित तीने नीसरैं, जाचक, चाकर, चोर ॥ ५ ॥
नदियाँ, नाला, नीभरण, पावस चढिया पूर ।
करहो फादम तिलकस्यै, पंथी, पूगल दूर ॥ ६ ॥
अत घण ऊनम आवियो, झाभी रिठ, झड़, वाय ।
बग ही भला ज बापड़ा, धरण न मेल्हइ पाय ॥ ७ ॥
मेहा वूठा, अन बहल, थल ताढा जल-रेस ।
करसण पाका, कण खिरा, तद को वलण करेस ? ॥ ८ ॥

३—भूमि गर्म है, लू सामने है, हे पथिक, तुम जल जाओगे । यदि हमारा कहा करो तो घर ही बैठे रहो ।

४—जीण—जीन । गुण—धनुषकी डोरी । साहब—प्रियतम, सच्चे प्रेमी । तिका—वे ।

५—भिँगोरया—बोले । रित—ऋतु । तीने—तीन ही । नीसरैं—निकलते हैं ।

६—नीभरण—झरने । करहो—ऊँट (जिसपर चढ़कर प्रियतम जाना चाहता है) । फादम—कीचड़में । तिलकस्यै—फिसलेगा । पूगल—अेक स्थान, जहाँ प्रियतम जा रहा है ।

७—घण—बादलोंकी घटा । ऊनम आवियउ—उमड़ आया । झाभी रिठ—बड़ा भारी शीत । वाय—हवा । बग इ०—बेचारे बगुले ही अच्छे । धरण न मेल्हइ पाय—(१) पृथ्वीपर पैर नहीं रखते । (२) चलनेके लिअे पृथ्वीपर पैर नहीं देते ।

८—वूठा—बरसा । अन—अन्न । वहल—बहुल, बहुत । ताढा—ठंढा । जल रेस—जलके कारण । करसण—कृषि । कण खिरा—अन्नकण गिरने लगे । तद इ०—तब कौन प्रस्थान करता है ?

धनस चढावै सो धरा इंद्र कढावै आण ।
करै न सावण मासमें, पंथी, पंथ पयाण ॥ ९ ॥

तीज रमै छै तीजण्यां, साजण ले-ले लार ।
चढो कियां छो चाकरी, साईनां सरदार ॥१०॥

सावण लागां, सायबा, गाणा-माणा, रंग ।
आणा घर, जाणा नहीं, ठाणां बांध तुरंग ॥११॥

गह घूमी, लूमी घटा, पावस उलट्या पूर ।
...महिने, सायबा, कदे न राखूँ दूर ॥१२॥

॥ शीत

जिण रित मोती नीपजै सीप समंदां मांय ।
तिण रित ढोलो ऊमह्यो, इम को माणस जाय ॥१३॥

जिण रुत नाग न नीसरै, दाझै वनखँड दाह ।
जिण रुत, हे साहब कहो, कुण परदेसां जाह ॥१४॥

प्रीतम, प्यारा प्राणकूँ, मत होवो न्याराह ।
थां बिन पलक न आलगै, तन तूटै म्हाराह ॥१५॥

सांजन, गहरा समँद-सा, गुण-जल भरियो गात ।
ओछा नाडा ज्यूँ इयां कियां करो छो वात ॥१६॥

१०—धनस—इंद्रधनुष । आण—आन, शपथ । पयाण—प्रस्थान ।

११—तीजण्यां—तीजका त्यौहार मनानेवाली स्त्रियां । लार—पीछे, साथ । साईनां—वयस्य, अेक उम्रके साथी, साथी । चढो इ०—हे प्रियतम, आप नौकरीके लिअे प्रवास करनेको क्यों सवार हो रहे हैं ।

१२—लूमी—झुकी, घिरी । पावस इ०—वर्षाजलसे नाले उमड़ पड़े ।

१३—रित—ऋतु । ढोलो—प्रियतम, नायक । ऊमह्यो—उमगा, चलनेको तय्यार हुआ ।

१४—साहब—प्रियतम । जाह—जाता है ।

१५—आलगै—लगते हैं । म्हाराह—मेरे ।

१६—गुण-जल—शरीरमें गुण-रूपी जल भरा है । ओछा नाडा इ०—छिछले तालाबकी तरह अब कैसे बातें करते हो ।

सम्मन प्रीत लगाइकै दूर देस मंत जाव ।
वसो हमारी नागरी, हम माँगें, तुम खाव ॥१७॥

(२)

थे सिध्धावो, सिधकरो, वहु-गुणवंता नाह ।
सा जीहा सतखंड हुय, जेण कहीजे जाह ॥१८॥
सिधो, सिधावो, सिधकरो, रहो त थाँरी दाय ।
इण लाखीणीं जीभसूँ कींकर कहूँ, सिधाय ॥१६॥
थे सिध्धावो, सिध करो, पूजो थाँकी आस ।
मत वीसारो मन-थकी हूं छूँ थाँकी दास ॥ २० ॥

(३)

सजन सिकारां जावसी, नैणा मरसी रोय ।
विधना, अैसी रैण कर, भोर कदे ना होय ॥२१॥
सजन सिधासी, हे सखी, प्रात उगंते भाण ।
वधज्ये, म्हारी रातड़ी, कदे न होय विहाण ॥२२॥
आज, सखी, हम यूँ सुण्यो, पो फाटत पिय-गोण ।
पो अर हिवड़े होड है, पहली फाटै कोण ॥२३॥

१७—नागरी—नगरी ।

(२)

१८—सिध्धावो—सिधाओ, पधारो। सिधकरो—सिद्धि करो, प्रस्थान करो। नाह—नाथ । सा जीहा इ०—वह जीभ सौ टुकड़े होय जो यह कहे कि 'जाओ' ।

१६—सिधो—पधारो । दाय—इच्छा । लाखीणी—लाख मोलवाली । कींकर—कैसे । सिधाय—'सिधाइये' यह शब्द ।

२०—पूजो—पूरी होवे । आस—आशा । थकी—से ।

(३)

२१—विधना—हे विधाता । कदे—कभी ।

२२—भाण—सूर्य । वधज्ये—बढ़ना । विहाण—प्रात ।

२३—पो फाटत—पौ फटते ही । गोण—गमन, प्रस्थान । हिवड़े—हृदयमें । पहली—पहले ।

(४)

ढोलो हल्लाणो करै, धण हल्लवा न देय।
झब-झब झूँबै पागड़े, डब-डब नयण भरेय ॥२४॥
सायधण हल्लण सांभलै, ऊभी आँगण-छेह।
काजल-जल भेळा करी, नाँखी-नाँख भरेह ॥२५॥
जोड़े ज्यूँही जोड़, विणजारारा व्याज ज्यूँ।
तनक जोड़ मत तोड़, नातो-तांतो, नागजी ॥२६॥
डूँगर-केरा वाहला, ओछाँ-केरा नेह।
वहता वहै उँतावला, छिटक दिखावै छेह ॥२७॥
पिव खोटाँरा ओहवा, जेहा काती मेह।
आडंबर अत दाखवै, आस न पूरै तेह ॥२८॥
वाजण लाग्यो वायरो, ऊडण लागी खेह।
चढणे लाग्या साजना, टूटण लाग्यो नेह ॥२९॥

हियो, फा...

(४)

२४—ढोलो ह०—पति जानेको करता है पर प्रिया जाने नहीं देती। वह घोड़ेकी रिकाबको पकड़कर झब-झब झूमती है और डब-डबाकर आँखें भर लेती है।

२५—प्रिया आँगनके कोनेमें खड़ी हुई प्रस्थानकी बात सुन रही है और नेत्रोंका काजल और आंसू इकट्ठे कर-करके बार-बार गिरा रही है और फिर नेत्र भर रही है।

२६—विणजारा—अेक जाति विशेष, जो व्यापारकी वस्तुअें बैलोंपर लिये हुअे देश-विदेश घूमती है। अब इनका महत्व बिल्कुल नष्ट हो गया है। नागजी—हे प्रियतम।

२७—वाहला—नाले, झरने। उँतावला—तेजीसे : वहता वहै—चलते हुअे (अर्थात् आरंभमें) तेजीसे चलते हैं। छिटक—छिटककर थोड़ीही देरमें अपना अंत दिखा देते हैं।

२८—खोटाँरा—भाग्यहीनोंके (या खोटे)। कातीमेह—शरद् ऋतुके मेघ। दाखवै—दिखाते हैं। तेह—वे।

२९—वायरो—हवा। खेह—धूलि। चढण—प्रस्थानके लिअे घोड़ेपर चढ़ने।

फिट, हीया, फाट्यो नहीं, किस विध बांध्यो नेह।
विछड़त ही सारो रह्यो, ताँबे-जड़ियो लोह ॥३०॥

धावो, धावो, हे सखी, कोइ दावण, कोइ लाज।
साहब म्हांको ऊमह्यो, जे कोइ राखै आज ॥३१॥

सजण सिधाया, हे सखी, वाज्या विरह-निसाण।
हाथां चूड़ो खिस पड़ी, ढीला हुआ सँधाण ॥३२॥

सजण सिधाया, हे सखी, ऊभी आंगण वीच।
नैणां चाल्या चोसरा, काजल माच्यो कीच ॥३३॥

सजण सिधाया हे सखी, वै घुड़ले-असवार।
वैणां हुयो न बोलणो, नैणां चाली धार ॥३४॥

सजण सिधाया, हे सखी, पाछा फिर-फिर झांख।
जोय-जोय ऊठी जावतां, रोय-रोय फूटी आंख ॥३५॥

सजण सिधाया, हे सखी, आडा देग्या पहाड़।
नव कोटी नगरी वसै, म्हारे भांव [illegible]

सजण सिधाया, हे सखी, पाछे पीली पज्ज।
नव पाडा नगर वसै, मो मन सूनो अज्ज ॥३७॥

सजण सिधाया, हे सखी, सूना करे अवास।
गले न पाणी ऊतरै, हिये न मावै सांस ॥३८॥

३०—फिट—धिक्कार है। सारो—ज्यों-का-त्यों।

३१—दावण—लगाम (या दामन)। लाज—लगाम (कोई दामन पकड़ो, कोई लगाम पकड़ो)।

३२—निसाण—नगारे। सँधाण इ०—शरीरकी संधियाँ शिथिल हो गईं।

३३—चोसरा—नाले। काजल इ०—काजलका कीचड़ मच गया।

३५—झांख—देखते हैं। ऊठी—आंखें उठ आईं।

३६—म्हारे भांव—हमारी तरफ से, हमारे लिये।

३७—पज्ज—पाल (तालाबका ऊँचा किनारा)। पाडा—मुहल्ले। अज्ज—आज।

३८—करे—करके। अवास—महल।

सजण सिधाया, हे सखी, वाजै वाजा रंग।
जिण वाटे सज्जण गया, सा वाटड़ी सुरंग॥३९॥
सजण सिधाया, हे सखी, झीणी ऊडै खेह।
हियड़ो वादल छाइयो, नैण टबूकै मेह॥४०॥
सजण सिधाया, हे सखी, नयणे कीयो सोग।
सिर साड़ो, गल कांचुवो, हुवा निचोवण जोग॥४१॥
साल्ह चलंता, हे सखी, गोखं चढ मैं दीठ।
हियड़ो वाँहीसूँ गयो, नैण वहोड़्या नीठ॥४२॥
सज्जणिया वलाइ कैं गोखं चढी लहक्क।
भरिया नैण कटोर ज्यूँ, मूँधा हुई डहक्क॥४३॥
साजणिया ववलाइकै मंदर बैठी आय।
मंदर कालो नाग ज्यूँ हेला दे-दे खाय॥४४॥
ढोलो चाल्यो, हे सखी, वडरी डाहल मोड़।
हियो, कलेजो, कालजो, तीनूँ ले गयो तोड़॥४५॥
साल्ह चलंते परठियाँ आँगण वीखड़ियाँह।
सो मैं हिये लगाड़ियाँ भर-भर मूठड़ियाँह॥४६॥

३९—रंग—रंगके साथ, धूमधामसे। वाटे—रास्ता।

४०—टबूकै—टपटप बरसते हैं।

४१—नयणे—नेत्रोंने शोक किया (रोये)। गल इ०—गलेकी चोली। निचोवण जोग—निचोड़ने योग्य (रोते-रोते सब वस्त्र भी भीग गये।)

४२—साल्ह—प्रियतमका नाम। दीठ—देखा। गयो—उनके साथ गया। वहोड़्या—लौटा पाये। नीठ—कठिनतासे।

४३—ववलाइकै—भेजकर, विदा करके। कटोर—पानीका कटोरा। मूँधा—मुग्धा, प्रिया। डहक—डबडबाई हुई आँखोंवाली।

४४—मंदर—महल, मकान। हेला दे दे—पुकार-पुकार कर।

४५—डाहल इ०—डालीको मोड़कर।

४६—परठिया—बनाये। वीखड़ियाँ—पैरोंके चिह्न। मूठड़ियाँ—मुट्ठियाँ।

सालह चलंते परठियाँ आंगण वीखड़ियांह ।
कूत्रा-केरी कुह्‌ड़ ज्यूँ हिवड़े होइ रहियांह ॥४७॥
खूँटे जीण न मोजड़ी, कड़्याँ नहीं कंकांण ।
साजनिया सालै नहीं, सालै आही ठाँण ॥४८॥
भूली सारस-सद्दड़े, जाँणे करहो थाय ।
धाई-धाई थल चढ़ी, पग्गे दाधी, माय ॥४९॥
बाबा, बाळूँ देसड़ो, जिहाँ डूँगर नहिं कोय ।
तिण चढ मूकूँ धाहड़ी, हीयो उरलो होय ॥५०॥
सज्जण देसंतर हुवा, जे दीसंता नित्त ।
नयणाँ तो वीसारिया, तूँ मत विसरे, चित्त ॥५१॥
सज्जण अलगा ताँ लगे, जाँ लग नयणे दिट्ठ ।
जब नयणाँसूँ वीछड़्या, तब उर मांझ पइट्ठ ॥५२॥
चाल, सखी, तिण मंदराँ, सज्जण रहिया जेण ।
कोइक मीठो बोलड़ो लाग्यो होसी तेण ॥५३॥
रे मंदर, रे मालिया, हिव तुझ डग न भरेस ।
जिण कारण हम आवता, सो चाल्या परदेस ॥५४॥

४७—कुह्‌ड़—कुहरा । होइ रहियाह—छा गये ।

४८—मोजड़ी—जूती । कड़्याँ—घोड़ेके बांधनेका स्थान । कंकाण—घोड़ा । ठाण—घोड़ेके घास चरनेकी जगह ।

४९—भूली इ०—सारसका शब्द सुनकर मुझे भ्रम हुआ कि मेरे प्रियतमका ऊँट होगा । प्रियतमको आया समझ मैं नंगे पैर ही बाहर दौड़ पड़ी और देखनेके लिये ऊपर चढ़ने लगी तो मेरे पैर जल गये ।

५०—बाळूँ—उस देशको जला दूँ जहां कोई पहाड़ तक नहीं । मूकूँ इ०—धाह मारूँ । उरलो—हलका ।

५१—देसंतर—प्रवास । दीसंता—दीखते थे ।

५२—दिठ—आँखोंसे दीखते रहते हैं । पइट्ठ—प्रवेश कर जाते हैं ।

५३—जेण—जहां, जिसमें । तेण—उसमें शायद अभी तक लगा मिलेगा ।

५४—मालिया—ऊपरका महल । डग इ०—तेरे पास नहीं आऊँगी ।

सांवल काय न सिरजिया, अंबर लाग रहंत ।
वाट चलंता साल्ह पिव ऊपर छाँह करंत ॥५५॥
बांवल कांइ न सिरजिया मारू मंझ थलांह ।
प्रीतम वाढत कांवड़ी, फल सेवंत करांह ॥५६॥ ॥८७॥

६—विरहिणी-विप्रलाप

(१)

कूक करूँ तो जग हँसै, चुपके लागै लाय
अैसे कठन सनेहको किण विध करूँ उपाय ? ॥ १ ॥
आह करूं तो जग जलै, जंगल भी जल जाय ।
पापी जिवड़ो ना जलै, यामें आह समाय ॥ २ ॥
घटमें रही न घाटमें, घरमें रही न व्हार ।
वन-वन तन भटक्यो फिरै मनमोहनकी लार ॥ ३ ॥
जेठा, घड़ी न जाय, जम्मारो किम जावसी ।
बिलखतड़ी रह जाय, जोगण करगो, जेठवा ॥ ४ ॥
थैं दीसै असवार घुड़लांरी घूमर कियाँ ।
अमलांरो आधार, जको न दीसै, जेठवा ॥ ५ ॥
ताला सजड़ जड़ेह, कूँची ले कीने थयो ।
खुलसी तो आयेह, जड़िया रहसी, जेठवा ॥ ६ ॥

५५—सांवल—काली बदली । कांय न—क्यों नहीं ।
५६—बांवल—कीकरका पेड़ । मारू इ०—मारवाड़की थलीके बीच । [वाढ]त—काटते । कामड़ी—छड़ी । करांह—हाथोंका, हाथोंमें रहनेका ।

६—विरहिणी-विप्रलाप

१—कूक—रुदन । लाय—चुप रहनेसे आग-सी लगती है । कठन—असह्य ।
२—आह—निःश्वास ।
४—जाय—बीतती है । जम्मारो इ०—सारा जीवन कैसे बीतेगा ।
५—घुड़लांरी इ०—घोड़ोंको घुमाते हुअे । जको—जो, वह ।
६—सजड़—सुदृढ़ । जड़ेह—बंद हैं । कूँची—कुंजी । कीने थयो—कहां [गया]? तो आयेह—तेरे आनेपर ही ।

साहिब, संख समुद्दको मैं सुणियो वाजंत।
नीर मितके कारणे घर-घर धाह दियंत ॥७॥

आडा डूँगर वन घणा, जहाँ महारा मित्त।
देय विधाता, पाँखड़ी मिल-मिल आऊँ नित्त ॥८॥

आडा डूँगर, दूर घर, वणै न जाणे भत्त।
सज्जण-संदे कारणे हियो हिलूसे नित्त ॥९॥

जिम-जिम साजन साँभरै, तिम-तिम लागे तीर।
पंख हुवै तो जाय मिल मनाँ बँधाँड़ाँ धीर ॥१०॥

आडा डूँगर, भुँय घणी, सज्जण रहै विदेस।
माँगी-ताँगी पाँखड़ी केती वार लहेस ॥११॥

पाँखड़ियाँ ही किउँ नहीं, देव अवाडू ज्याँह।
चकवीके है पाँखड़ी, रैण न मेले त्याँह ॥१२॥

आडा डूँगर, भुँय घणी, तियाँ मिलीजे अेम।
मनहूँ खिणय न मेल्हियै, चकवी दिणयर जेम ॥१३॥

ज्यूँ अै डूँगर सम्मुहा, त्यूँ जे सज्जण हुंत।
चंपावाड़ी भमर ज्यूँ नैण लगाइ रहंत ॥१४॥

७—समुद्दको—समुद्रसे उत्पन्न। सुणियो—सुना। वाजंत—बजता हुआ। नीर मित—मित्र पानी, जिससे वह बिछुड़ गया है। धाह इ०—धाड़ मारकर विलाप करता है।

९—वणै—आनेका उपाय नहीं बनता। संदे—के। हिलूसे—व्याकुल होता है।

१०—साँभरे—याद आते हैं। मनाँ इ०—मनको धीरज बँधावें।

११—भुँय—फासला। सज्जण—प्रियतम। केती वार—कितनी बार।

१२—किउँ नहीं—कुछ नहीं। अवाडू—बाधक, प्रतिकूल। रैण इ०— ... भी रात्रिके समय प्रियसे उसका मिलाप नहीं होता।

१३—तियाँ इ०—उनसे अैसे मिलना चाहिअे। मनहूँ—मनसे। मेल्हियै—दूर कीजिये, विसारिये। दिणयर—सूर्य, जैसे चकवी दूर रहती हुई भी सूर्य नहीं भूलती।

१४—डूंगर—पहाड़। सम्मुहा—आँखोंके सामने। जे—यदि। हुंत—हो... भमर—भँवरा। नैण इ०—अेकटक देखती रहती।

जिण देसे सज्जण वसइ, तिण दिस वज्जउ वाव ।
उवाँ लगे मो लगसी, ऊ ही लाख-पसाव ॥१५॥
सो कोसाँ वीजल खिवै, ज्यासूँ किसो सनेह ।
किसना, तिसना जद मिटै, आँगण वरसै मेह ॥१६॥
कउवा, दिऊँ वधाइयाँ, प्रीतम मिल्वै मुझ ।
काढ कलेजो आपणो भोजन दिउँली तूझ ॥१७॥
कागा, नैण निकास दूँ, पीव पास ले जाय ।
पहली दरस दिखायके पीछे लीजो खाय ॥१८॥
हे सखिअे, परदेस प्री, तनह न जावै ताप ।
बाबहियो आसाढ जिम, विरहिण करै विलाप ॥१९॥
बाबहियो ने विरहणी, दोनूँ अेक सुभाव ।
जब ही वरसै घन घणो, तबही कहै प्रियाव ॥२०॥
बाबहिया, तूँ चोर, थारी चाँच कटावसूँ ।
रात ज दीनी लोर, मैं जाण्यो प्रिव आवियो ॥२१॥
बाबहिया, पिउ पिउ न कहि, पिउको नाँम न लेय ।
काइक जाणै विरहणी, तड़फ-तड़फ जिउ देह ॥२२॥

१५—वज्जउ—चलो। वाव—वायु, हवा। उवाँ इ०—हवा उनके लगकर फिर मुझे लगेगी। ऊही—वही (प्रियका स्पर्श की हुई हवाका स्पर्श)। लाख-पसाव—लाख रुपयोंका दान (लाख पसाव अेक प्रकारका दान होता है जो राजा लोग प्रसन्न होकर कविजनोंको दिया करते थे। इसमें या तो नकद लाख रुपये दिये जाते थे या लाख रुपयेकी जागीर या संपत्ति। आरंभमें वस्तुतः लाखका धन दिया जाता था पर पीछे लाखका नाम-ही-नाम रह गया।

१६—किसना—कविका नाम। तिसना—तृष्णा, प्यास, लालसा।

१७—मिल्वै—मिलावे। दिउँली—दूँगी। तूझ—तुझे।

१९—तनह—शरीरका। बाबहियो इ०—पपीहा जैसे आषाढमें बादलको देखकर पुकारता है।

२०—प्रियाव—१ प्रिय+आव २ पपीहेकी पी आ, पी आ अैसी बोली।

२१—चोर—दुष्ट, कपटी। चांच—चोंच। कटावसूँ—कटाऊँगी। लोर इ०—शब्द किया तो मुझे भ्रम हुआ कि प्रियतम आ गये।

बावहिया, निल-पंखिया, वाढत दे-दे लूण।
पिउ मेरो, मैं पीउकी, तूँ पिउ कहै स कूण ॥२३॥

पीहू-पीहू करणरी बुरी, पपीहा, बाण।
थारो सहज-सुभाव ओ, म्हांरै लागै बाण ॥२४॥

अरे पपैया बावरा, आधीरात न कूक।
होलै-होलै सुलगती, सो तैं डारी फूँक ॥२५॥

सिर काटूँ, रे मोरिया, काटूँ सिररो फूल।
ढलती रात ज गहकियो, हिवड़ै पाड़यो सूल ॥२६॥

मोरा, मैं तनै वरजियो, मत चढ बोल खजूर।
थारा जलहर टहूकड़ै, म्हारा साजन दूर ॥२७॥

म्हे मगरेरा मोरिया, चक्क चढ चूँण करांह।
रुत आये ना बोलस्यां, तो हिय फूट मरांह ॥२८॥

रात, सखी, इण तालमें कांइज कुरली पंखि।
वा सर, हूँ घर आपणे, वेहुँ न मेली अंखि ॥२९॥

२३—निलपंखिया—नीली पाँखोंवाला। वाढत इ०—नमक लगा-लगाकर घाव करता है। तू इ०—तू 'पी' यों कहनेवाला कौन?

२५—होलै इ०—जो विरहाग्नि धीरे-धीरे सुलग रही थी सो तूने फूँककर अेकदम प्रज्वलित कर दी। फूल—मोरके सिरकी कलँगी। ढलती—ढलती हुई, आधीरातके पीछेकी रात। गहकियो—बोला। पाड़्यो—पैदा किया। वरजियो—मना किया।

२७—तनै—तुझे। जलहर—मेघ। टहूकड़ै—बोलते हैं।

२८—मगरेरा—मगरेके, मगरा स्थान विशेष, ऊसरको भी मगरा कहते हैं (अतः मरुस्थल)। चूँण करां—दाना खाते हैं। रुत इ०—बोलनेकी ऋतु आनेपर यदि नहीं बोलेंगे तो।

२९—कांइज—कोई। कुरली—करुण स्वरसे बोली। पंखि—पक्षी। सर—सरोवरमें। वेहुँ न इ०—दोनोंकी ही आँख नहीं लगी।

रात ज सारस कुरलिया, गूँजि रहे सब ताल ।
ज्यांरी जोड़ी वीछड़ी ज्यांरा कवण हवाल ॥३०॥
कुरजड़ियाँ कुरला रही देख विरंगा ताल ।
जिणकी जोड़ी वीछड़ी, जिणका कवण हवाल ॥३१॥
कूँमड़िया करलव कियो घर पाछले वनांह ।
सूती साजन सांभरया, द्रह भरिया नैणांह ॥३२॥
कूँजां, द्यो ने पांखड़ी, थांको विनो वहेस ।
सायर लंघी पिव मिलूँ, पिव मिल पाछी देस ॥३३॥
म्हे कुरजां सरवर-तणी, पांखां किणहि न देस ।
भरिया सर देखी रहां, उड आघेरि वहेस ॥३४॥
उत्तर दिस उपराठियां, दक्षिण सामुहियांह ।
कुरम्मां, अेक सँदेसड़ो ढोलाने कहियाह ॥३५॥
माणस हवां, त मुख चवां, म्हे छां कूँमड़ियांह ।
पिउ सँदेसो पाठविस, लिख दे पंखड़ियांह ॥३६॥

३०—ताल—सरोवर । ज्यांरी—जिनकी । ज्यांरा—उनके ।

३१—कुरजड़ियाँ—क्रौंच या कराँकुल पक्षी । हवाल—हाल ।

३२—करलव—कलरव, मीठा करुण शब्द । वनांह—वनमें । सांभरया—याद किये । द्रह—हौद । नयणांह—आंखोंमें ।

३३—कूजां—हे क्रौंच पक्षियों । विनो इ०—वेश बनाऊँगी । सायर इ०—सागर पार करके प्रियसे मिलूँगी और प्रियसे मिलकर तुम्हारी पांखें वापिस दे दूँगी ।

३४—किणहि इ०—किसीको नहीं देंगी । भरिया इ०—पानीसे भरे हुओ तालाब देखकर ठहर जाती हैं और फिर उड़कर दूर चली जाती हैं ।

३५—उपराठियां—पीठ पीछे देकर । ढोला—प्रियतम ।

३६—माणस इ०—मनुष्य होवें तो मुखसे कहें पर हम तो कुरजें हैं । पाठविस—यदि भेजती है तो ।

पांखे पागी थाहरे जल काजल गहिल्याइ ।
सयणां-तणां सँसड़ा मुख-वचने कहिवाइ ॥३७॥

या तन की जूती करूँ, काढ रंगाऊँ खाल ।
पांयनसूँ लिपटी रहूँ आठूँ पहोर, जमाल ॥३८॥

जे जलमूँ उण देसमें, करियो यूँ करतार ।
पिउ-पिउ करतां नीसरै जिउ-जिउ मरती वार ॥३९॥

कागा, सब तन खाइयो, खइयो चुण चुण मांस ।
दो नैणां मत खाइयो, पीव मिलणरी आस ॥४०॥

बाबल, ताल फुड़ाय दे, कुंजां दे मरवाय ।
मिंदर कालो नाग ज्यूँ झाला दे दे खाय ॥४१॥

(२)

प्रीतम दुखिया कर गया, सुखकूँ लेग्या साथ ।
रैण-विछावा कर गया, मलतां रह गइ हाथ ॥४२॥

छाती मांहे साल खण-खणमें खटकै घणा ।
करसां कवण हवाल, मिलियां विन मिटसी नहीं ॥४३॥

मालण लाई चोसरा फूल अनोखा पोय ।
मन मुरझायो देखतां, ऊतर दीनो रोय ॥४४॥

३७—थाहरे—ठहरता है, या तेरे । काजल—स्याही । जल इ०—जल लगनेसे स्याही बह जायगी । सयणां—प्रेमियोंके । मुख—मौखिक ही कहे जाते हैं ।

३८—पहोर—पहर ।

३९—जलमूं—जन्म लूं । उण—उस (जहां प्रियतम है) । नीसरै—निकले ।

४१—मिंदर—महल, घर । झाला देदे—डुला-बुलाकर ।

४२—विछोवा—विछोह, वियोग । लेग्या—ले गये ।

४३—साल—शल्य । करसां—करेंगे ।

४४—मालण—मालिन । चोसरा—चार लड़ोंकी माला । पोय—पोकर गूँथकर । ऊतर दीनो—जवाब दिया, मना किया ।

मालण, थारा चोसरा क्योंकर आवै दाय।
पीव विनासूँ पापणी जीव अमूम्यो जाय ॥४५॥
वैरण, प्रीतमके विना, सालै देखत शूल।
पहर रिझाऊँ कूँणने, अै ले, मालण, फूल ॥४६॥
ऊपर आंबा मोरिया, तल नीझरण झरंत।
साजण पाखे दीहड़ा ताढा तोय तपंत ॥४७॥
आंखड़ियां डंबर हुई, नयण गमाया रोय।
सो साजण परदेसमें, रह्या विडाणा होय ॥४८॥
गया सनेही दूर, कुसनेही मंडल घणा।
रहु रहु, हिया, न झूर, कर कायर काठो हियो ॥४९॥
ऊभी थी रायंगणे, सायव सांभरियाह।
च्यारुंई पल्ला चूनड़ी आंसू-जल भरियाह ॥५०॥
रानि ज रुनी निसह भर, सुणी महाजन लोय।
हाथाली छाला पड़या चीर निचोय-निचोय ॥५१॥
सज्जण वल्ले, गुण रहे, गुण भी वल्लणहार।
सूकण लागी वेलड़ी, गया ज सींचणहार ॥५२॥
सज्जण, गुणे-समुद्द तूँ, तर-तर थकी तेण।
अवगुण अेक न सांभरै, रहूँ विलूंबी जेण ॥५३॥

४७—मोरिया—मुकुलित हुअे। तल—नीचे। नीझरण—झरने। पाखे—बिना। दीहड़ा—दिन। ताढा—ठंडे हैं तो भी।

४८—डंबर—लाल (संध्याकालीन बादलों जैसी)। विडाणा—पराये।

४९—काठो हियो—हृदय मजबूत कर।

५०—रायंगणे—राजांगणमें, आंगनमें। सायव इ०—प्रियतम याद आगये।

५१—रुनी—रोई। महाजन—गुरुजन। लोय—लोग।

५२—वल्ले—चले। वल्लणहार—जानेवाले हैं।

५३—सज्जण इ०—हे प्रियतम, तुम गुणोंके समुद्र हो, उस समुद्रको तैर-तैर करके मैं थक गई पर उसका अंत नहीं मिला। सांभरै—याद आता है। विलूंबी इ०—जिसका सहारा लूँ।

पिव कारण सब अरपियो, तन, मन, जोबन, लाल।
पिया पीड़ जाणे नहीं, किणसूँ कहूँ जमाल ? ॥५४॥

साजण विसराया भला, सुमरयाँ करै बेहाल।
देखो, चतर, विचारके, साची कहै जमाल ॥५५॥

सारमड़ो मोती चुणं, चुणं त कुरलै कांय।
सगुण पिय.रा साजना मिलै त विछड़ै कांय ॥५६॥

हित विण, प्यारा सज्जणा, छल कर छेतरियाह।
पहली लाड लडायकै पाछै परहरियाह ॥५७॥

(३)

ढोला, ढीली हर कियाँ मूक्या मनह विसार।
संदेसोय न पाठवै, जीवाँ किसे अधार ? ॥५८॥

कहो कनक कागद भया, मसि भई माणक मोल ?।
लाख टका लेखण भई ?, नहीं लिख्या दो बोल ॥५९॥

कागल नहीं, क मस नहीं, नहीं क लेखणहार।
सँदेसा हो नावियो, जीवूँ किस आधार ? ॥६०॥

कागल नहीं क मस नहीं, लिखताँ आलस थाय।
कै उण देस सँदेसड़ा, मूँघे मोल विकाय ? ॥६१॥

वायस बीजो नाम, ते आगल लखो ठवै।
जे तूँ हुवै सुजाण, तो तूँ वहिलो मोकलै ॥६२॥

५६—चुणे—चुगती है। कांय—किस लिये।

५७—हित—प्रेम। छेतरियाह—ठगा, धोखा दिया। परहरियाह—छोड़ दिया।

५८—ढीली इ०—प्रेमको शिथिल करके। मूक्या—मनसे भुलाकर छोड़ दिया। संदेसो य—संदेशा भी। पाठवै—भेजता है।

५९—कनक इ०—क्या कागद सोनेके मोलका महँगा हो गया। टका—रुपया।

६०—कागल—कागज। मस—स्याही।

६१—थाय—होता है। मूँघे—महँगे।

६२—वायस—वायसका जो दूसरा नाम है (अर्थात् काग) उसके आगे ल कार लगाकर (अर्थात् कागल यानी पत्र) शीघ्र भेजना।

संदेसा जिन पाठवै, मरिस्यूँ हीया फूट।
पारेवाका झूल ज्यूँ, पड़नै आँगण त्रूट ॥६३॥
संदेसा मति मोकलो, प्रीतम, तूँ आवेस।
आंगलड़ी ही गल गई, नैण न वांचण देस ॥६४॥
कागदिया मत मोकलो मूँघा मोल ज लेह।
आखर भीना आंसुवां, नयण न वांचण देह ॥६५॥
फागण मास, वसंत रुत, आयो जे न सुणेस।
चाचरके मिस खेलती, होली झंपावेस ॥६६॥
जो तूँ, साहब, नावियो, मेहाँ पहले पूर।
विचे वहेसी वाहला, दूर स दूरे दूर ॥६७॥
वीजुलियाँ जालो मिल्याँ, ढोला, हूँ न सहेस।
जो आसाढ न आवियो, सावण समक मरेस ॥६८॥
जे तूँ, साहब, नावियो सावण पहली तीज।
वीजल तणे झबूकड़े मूँध मरेसी खीज ॥६९॥
जे तूँ ढोला नावियो काजलियारी तीज।
चमक मरेसी मारवी देख खिवंतां वीज ॥७०॥

६३—जिन—मत। पारेवा—कबूतर। झूल—घोंसला। त्रूट—टूटकर।

६४—मोकले—भेजना। आवेस—आना। देस—देंगे।

६६—सुणेस—सुनूँगी कि तू आ गया। चाचर—नाच विशेष (सं० चर्चरी)। होली इ०—होलीकी आगमें कूद पड़ूंगी।

६७—विचे इ०—बीचमें नाले बहने लगेंगे और जो दूर है वह और भी दूर हो जायगा।

६८—जालो मिल्याँ—जालमें मिली हुई, बहुतसी अेक साथ होकर चमकती हुई। समक—चौंककर।

६९—वीजल—बिजलीके चमकते ही यह मुग्धा खिजकर मर जायगी।

७०—काजलियारी—कजलीकी। मारवी—नायिका (अक्षरार्थ—मारू देश की स्त्री)। मारू, मरवण, मारवण, मारवणी, मारवी, मारुवी, सायधण, धण ये नायिका या स्त्रीके पर्याय शब्द हैं। खिवंता—चमकती हुई। वीज—बिजली।

घरघर चंगी गोरड़ी, गावै मंगलचार।
कंथा, मती चुकावजो, तीजाँ—तणो तिवार ॥७१॥

(४)

वर्षा

ऊनमियो उत्तर दिसाँ, गाज्यो गहर गँभीर।
मारवणी प्रिव संभरयो, नैणाँ वूठो नीर ॥७२॥
ऊनमियो उत्तर दिसाँ, मेड़ी ऊपर मेह।
हूँ भीजूँ घर आँगणे, पिव भीजे परदेह ॥७३॥
आज धरा दिस ऊनम्यो, महलाँ वरसै मेह।
बाहर था जे ऊवरे, भीजाँ माँझ घरेह ॥७४॥
ऊनम आई वद्दली, ढोलो आयो चित्त।
यो वरसै रितु आपणी, नैण महारा नित्त ॥७५॥
वीजलियाँ पारोकियाँ नीठ ज नोगमियाँह।
अजे न सज्जण वाहुड़े, वलि पाछी वलियाँह ॥७६॥
जलथलथल जलहुय रह्यो, बोलै मोर किंगार।
सावण दूभर, हे सखी, कहाँ मुझ प्राण-अधार ॥७७॥

७१—तीजाँ-तणो—सावण मासकी तृतीयाका; यह राजस्थानका अेक जा[illegible] त्योहार है।

७२—ऊनमियो—मेह उमड़ा। वूठो—बरसा।

७४—मेड़ी—अटारी। परदेह—परदेशमें।

७५—धरा-दिस—ध्रुवकी दिशा, उत्तर। भीजाँ—घरके भीतर [illegible] रही हैं (आंसुओंको वर्षासे)।

७६—पारोकिया—परकीया (गाली)। नीठ ज इ०—बड़ी कठिन[illegible] गई थीं। वाहुड़े—लौटे। वलि इ०—पर ये फिर लौट आईं (दूसरी वर्षा अ[illegible] पर प्रियतम नहीं आये)।

७७—किंगार—कंगूरोंपर। दूभर—असह्य।

चहुँदिस दामण, सघन घण, पीव तजी तिण वार।
मारू मर चातग भये, पिव-पिव करत पुकार ॥७८॥

सावण आयो, साहबा, हरिया-हरिया वन्न।
हरियो हुयो न अेकलो, प्यारी धणरो मन्न ॥७९॥

प्रीतम, कामणगारियाँ, थल-थल वादलियाँह।
घण वरसंते सूकियाँ, लू-सूँ पाँगुरियाँह ॥८०॥

भादरवेकी रुत भली, भलो घटा वरसंत।
मेरा साजन है नहीं, मेरा तन तरसंत ॥८१॥

वड़कत-तड़कत वीजली, घड़कत-तड़कत गाज।
कोप करो आवै घटा आ कुण ऊपर आज? ॥८२॥

गाज नगारो, चमक खग, वरसत बाण तड़ाक।
घटा नहीं, या कामकी आवै फोज लड़ाक ॥८३॥

वीज नहीं अै खागवल, वूँद नहीं अै बाण।
घटा नहीं, या काम की आई फोज अचाँण ॥८४॥

हरियारी भूमी भई, भरिया सायर खाल।
आ कुँणने आछी लगै, विन प्रीतम वरसाल ॥८५॥

७८—मारू इ०—ये चातक पी-पी करते हुअे पुकार करते हैं। पूर्व-जन्ममें मारू थे को प्रिय के वियोगमें पी-पी रटती हुई मर गई और मरकर फिर चातक बनी और अब भी पी-पी पुकार रही है।

७९—हरियो —(१) हरा (२) प्रफुल्लित। धण—प्रियतमा।

८०—कामणगारियाँ—जादू करनेवाली। घण इ०—ये पानी बरसनेसे सूख जाती हैं और लू-से जी उठती हैं (गर्मीसे बादल बनता है और बरसनेपर नष्ट हो जाता है।

८२—गाज—मेघकी गर्जना।

८३—खग, खाग—तलवार। अचाँण—अचानक, सहसा।

८४—सायर—सागर। खाळ—खड्डे, गड्ढे। कुणने—किसे। वरसाळ—वर्षा ऋतु।

घन गाजै, विजली खिवै, वरसं वादलवार।
साजन विन लागै, सखी, अँगपर बूँद अंगार ॥८६॥

फोज घटा, खग दामणी, बूँद लगै सर जेम।
पावस पिव विन, वल्हा, कहि, जीवीजै केम ? ॥८७॥

तीज नवेली तीजण्याँ, तीज नवेली वीज।
तीज नवेली वादली, मोपर वरसत वीज ॥८८॥

नाला नदियाँसूँ मिलै, नदियाँ सरवर जाय।
विरछाँसूँ वेलाँ मिलै, अैसी सही न जाय ॥८९॥

काली-पीली वादली, वरस भीजियो गात।
ताजनिया लागा तिका साजनिया विन सात ॥९०॥

मोर सोर कर-कर मसत तरवर बैठ्या जाय।
घन वूठै, छूटै घटा, मो तन ऊठै हाय ॥९१॥

पड़-पड़ बूँद पलंगपर, कड़-कड़ वीज कड़क।
आज पिया विन अेकली, धड़-धड़ जीव धड़क ॥९२॥

नैणाँ वरसै सेजपर, आँगण वरसै मेह।
होडा-होडी झड़ लगी, उत सावण इत नेह ॥९३॥

पावस आयो, साहवा, वोलण लागा मोर।
कंता, तु घर आव नवि जोवन कीधो जोर ॥९४॥

मेह वूठा, हरिया हुवा, सब वन पाँगरियाह।
वाकरिया माता हुवा, आवो ठाकरियाह ॥९५॥

८७—वल्हा—हे प्यारे। जीवीजै—जिया जाय। केम—कैसे।
८८—तीजण्याँ—तीज मनानेवाली स्त्रियाँ। बीज—द्वितीया। वीज—बिजली।
९०—ताजनिया—चाबुककी चोट। तिका—वे। साजनिया—प्रियतम।
९१—मसत—मस्त। वूठै—बरसता है। हाय—हाहाकार।
९३—होडाहोडी—होड़ लगाकर बरस रहे हैं। सावण—सावनकी वर्षा।
९४—आव नवि—आ न।
९५—पाँगरियाह—अंकुरित हुवे। वाकरिया—बकरे-बकरियाँ। ठाकरियाह—हे ठाकुर, हे प्रियतम।

सावण आयो, सायबा, सब वन पौंगरियाह।
आव, विदेसी पावणा, अै दिन दूभरियाह ॥९६॥

ऊँचो मंदर अति घणो, आव, सुहावा कंत।
बीजल लियै भबूकड़ा, सिखरां गळ लागंत ॥९७॥

बीजुळियां नीलज्जियां, जलहर, तू ही लज्ज।
सूनी सेज, विदेश प्रिय, मधुरो-मधुरो गज्ज ॥९८॥

सावण आयो, सायबा, पगां विलूँबो गार।
तरां विलूंबी वेलड़यां, नरां विलूँबो नार ॥९९॥

सावण आवण कह गया, कर गया कोल अनेक।
गिणतां-गिणतां घिस गई, आंगळियांरी रेख ॥१००॥

घर-घर चंगी गोरड़ी, गावै मंगळचार।
कंथा, मती चुकावज्यो तीज्यां-तणो तिवार ॥१०१॥

आज धराऊ धूँधला, मोटी छांटां मेह।
भीजी पाग पधारस्यो, जद जाणूँली नेह ॥१०२॥

९६—पावणा—पाहुने। दूभरियाह—असह्य।

९७—बीजळ इ०—बिजली चमक-चमककर पर्वत-सिखरोंके गले लगती है।

९८—बीजुळियां इ०—हे मेघ, ये बिजलियां तो निर्लज्ज हैं जो मुझे [...]गाकुल देखकर भी चमक रही हैं और मेरी व्यथा बढ़ा रही हैं, पर तू तो [...]ज्ज हो। मेरी शय्या सूनी है, प्रियतम विदेशमें हैं, इसलिअे धीरे-धीरे [...]।

९९—विलूँबी—लग गई, लिपट गई। गार—कीचड़।

१००—कोल—कौल, प्रतिज्ञा।

१०२—धराऊ—ध्रुवकी दिशा, उत्तर। धूँधला—धूम-मय, बरसते हुए [...]ल धुवें जैसे ज्ञात होते हैं। भीजी इ०—भीगी हुई पगड़ोके साथ आवोगे तो [...]झूँगी कि तुम मुझे प्रेम करते हो। जाणूँली—जानूँगी कि आप प्रेम [...]ते हैं।

(५)

वसंत

तरत झरत, सुकत सरत, दादर मरत दुरंत।
प्रीतम घर नन पेखतां वैरण वणी वसंत ॥१०३॥
वन जरिया हरिया हुवा, आंवे-आंवे मोर।
कूक-कूककर कोयली करत पिया विन सोर ॥१०४॥

(६)

ग्रीष्म

कहो, लूवां, कित जावस्यो पावस धर पड़ियांह।
हिये नवोढा नाररे वालम वीछड़ियांह ॥१०५॥
सर-सरिता जल खूटिया, मरिया दादर जीव।
तन जरिया, लागी तपत, अब घर आवो, पीव ॥१०६॥

(७)

पग परसणकूँ कर तपे, श्रवण सुणनकूँ वैण।
हिदो तपे तुम मिलणकूँ, मुख देखणकूँ नैण ॥१०७॥

१०३—तरत इ०—तरुओंके पत्ते झड़ते हैं, तालाब सूखते हैं। दादर—मेंढ़क। दुरंत—बहुत। नन पेखतां—न देखकर।

१०४—जरिया—जले हुए। मोर—मंजरी।

१०५—कहो इ०—हे लुओं, जब पृथ्वीपर वर्षा ऋतु आ जायगी तो तुम कहां जाओगी (तुम्हें कहां शरण मिलेगी)? लुएं उत्तर देती हैं कि उस समय हम उस नवविवाहिता नववधूके हृदयमें जाकर रहेंगी जिसका पति बिछुड़ गया है (उसका हृदय घोर संतापसे जलता होगा, सैकड़ों वर्षाऋतु आकर भी हमारा नाश नहीं कर सकतीं)।

१०६—खूटिया—सूख गया। दांदर—मेंढ़क। तपत—गर्मी, संताप।

१०७—परसणकूँ—छूनेके लिये। हिदो—हृदय।

साजन थाँ किसड़ी करी, किणसूँ कहूँ सुणाय ।
नहीं मिटणारी या फदे हिवड़े लागी लाय ॥१०८॥
तन तरवर, मन माछलो, पड़ी विरहके जाल ।
तलफ-तलफ जिव जात है, वेगा मिलो, जमाल ॥१०९॥
प्यारा वैं दिन खूब था, विच न समातो हार ।
अब तो मिलबो कठन है, बीच रहे बहु पहार ॥११०॥
मन सींचाणो जे हुवै, पाँखाँ हुवै त प्राण ।
जाय मिलीजै साजणाँ, डोहीजै महराण ॥१११॥
सज्जण, कागद मोकले, मत कछु लिखो बणाय ।
जे-जे सुख हम-तुम किये, ते-ते सालत आय ॥११२॥
मो मन लागो तो मनाँ, तो मन मो मन लग्ग ।
दूध विलग्गा पाणियाँ, पाणी दूध विलग्ग ॥११३॥
साजन, दुर्जनके कहे तुम मत विरचो मोय ।
ज्यों मस लागी कागदाँ, त्यों हित लाग्यो तोय ॥११४॥
साजन, तुम मत जाणियो, विछड्याँ प्रीत घटाय ।
व्यापारीके ब्याज ज्यूँ, वधत-वधत वध जाय ॥११५॥
धूँध न चूकै डूँगराँ, कड़वातण नींबाह ।
प्रीत न चूकै सज्जणा देस-विदेस गयाँह ॥११६॥

१०८—लाय—अग्नि । थाँ—आपने । किसड़ी—कैसी ।

१०१०—विच इ०—मिलाओ—

हारो नारोपितो कंठे मया विश्लेषभीरुणा ।
इदानीमावयोर् मध्ये सरित्-सागर-भूधराः ॥

१११—सींचाणो—बाज । साजणाँ—प्रियतमसे । डोहीजै—पार किया जाय । महराण—समुद्र ।

११२—मोकलो—भेजो । सालत—याद आकर संताप देते हैं ।

११३—विरचो—छोड़ो । हित—प्रेम । तोय—तुमसे ।

११४—चूकै—भूलकर भी अलग होता है । डूँगराँ—पहाड़ोंसे । कड़वातण—कड़ुआपन ।

चलतां-हलतां, चींत, सूतां-बैठां सारखो ।
पड़ै न जूनी प्रीत नैणं लग्योड़ी, नागजी ॥११७॥
नागा, नागरवेल पसरै फूलै नहीं ।
बाळपणेरी प्रीत, विछड़ै तो भूलै नहीं ॥११८॥
मन-माणक गरहण कियो, मित, तुम्हारे पास ।
नेह-ब्याज अत मंडियो, नहिं छूटणरी आस ॥११९॥
हंसा तो सरवर रटैं, घनकूँ रटै ज मोर ।
हम तुमसें मिलणा रटैं, जैसे चंद चकोर ॥१२०॥
दीधी अपणी बांह, चंवरी चढ, कर मेळतां ।
पण जिम तनरी छांह, तिम नवि राखी तो कने ॥१२१॥
साजन, तुम मत जाणियो, तोय विछड़त मोय चैन ।
जैसें धुईं अतीतकी, सुलगत है दिन-रैन ॥१२२॥
साजन तुम जत जाणज्यो, दूर देसका वास ।
खोड़ हमारी यां पड़ी, प्राण तुम्हारे पास ॥१२३॥
जेती जे मन मांय, पंजर जे तेतो पुळै ।
मन वैराग न थाप, वालम वीछड़ियां-तणी ॥१२४॥
साजन, तुम दरियाव हो, मैं ओगणकी जहाज ।
अबकी पार लँघाय दे कर पकड़ेकी लाज ॥१२५॥

११९— गरहण कियो—लिया। मंडियो—चढ़ गया। छूटणरी—उऋण होनेकी।

१२१—दीधी इ०—विवाह-मंडपमें हाथ मिलाते समय अपना हाथ तुम्हें दिया। नवि इ०—तुमने अपने पास नहीं रखी। कने—पास।

१२२—धुँईं—आग, जो संन्यासी तापा करते हैं। अतीत—संन्यासी।

१२३—खोड़—देह। यां—यहाँ।

१२४—जेती—मन जितना चलता है, उतना शरीर भी यदि चले तो प्यारोंके बिछुड़नेकी अरुचि मनमें न हो।

१२५—दरियाव—समुद्र। कर पकड़ेकी—विवाहके समय जो हाथ पकड़ा था उसकी।

सर सूक्यो, वेलू हिलो, कहुँ न रह्यो विसराम ।
अब सुध लो, घन, मीन की, फिर वरस्यां के काम ॥१२६॥२१३॥

७—संदेश

ढाढी जे प्रीतम मिलैं, यूँ कहि दाखवियाह ।
पंजर नहिं छै प्राणियो, थां दिस झल रहियाह ॥ १ ॥
पंथी, अेक सँदेसड़ो भल माणसने भक्ख ।
आतम तुझ पासे अछै, ओलग रूड़ा रक्ख ॥ २ ॥
ढाढी, अेक सँदेसड़ो प्रीतम कहिया जाय ।
सायधण वल कोयला हुई, भसम ढंढोले आय ॥ ३ ॥
ढाढी, अेक सँदेसड़ो ढोले लग पहुँचाय ।
तन-मन उत्तर वालियो, दिक्खण वाजो आय ॥ ४ ॥
ढाढी, अेक सँदेसड़ो ढोले लग पहुँचाय ।
जोवन जावै प्राहुणो, वेगेरो घर आय ॥ ५ ॥
ढाढी, अेक सँदेसड़ो ढोले लग पहुँचाय ।
जोवन खीर-समुद्र हुय, रतन ज काढो आय ॥ ६ ॥

१२६—वेळू—वेला, तट । वरस्यां इ०—बरसनेसे क्या लाभ ?

७—संदेश

१—ढाढी—अेक गाने-बजानेवाली जाति । यूँ कहि दाखवियाह—यों कहकर बात कहना । पंजर इ०—प्राण शरीरमें नहीं हैं किन्तु आपकी ओर भागे जा रहे हैं ।

२—भलमाणसने—उस भलेमानुसको । भक्ख—कह । आतम इ०—दूर भले ही रख पर प्राण तुम्हारे पास हैं ।

३—वळ—जलकर । ढंढोळे—टटोलना (देर करके आओगे तो भस्म ही मिलेगी) ।

४—उत्तर इ०—उत्तरी हवाने जला दिया । दिक्खण इ०—दक्षिणी हवा बनकर चलो ।

५—पाहुणो—यौवनरूपी पाहुना जा रहा है । वेगेरो—जल्दी ।

ढाढी, अेक सँदेसड़ो ढोले लग पहुँचाय।
जोवन चांपो मोरियो, कळी न चूँटै काय ॥ ७ ॥

ढाढी, अेक सँदेसड़ो ढोले लग पहुँचाय।
जोवन-कँवळ विकासियो भमर न वैसो आय ॥ ८ ॥

ढाढी, जे साहब मिलै, यूँ दाखविया जाय।
आँख्याँ सीप विकासियाँ, स्वात ज वरसो आय ॥ ९ ॥

ढाढी, अेक सँदेसड़ो, ढोले लग ले जाय।
जोबण फट्टि तलावड़ी, पाळ न बाँधो काय ॥ १० ॥

ढाढी, अेक सँदेसड़ो ढोले लग पहुँचाय।
धण कुमळाणी कमदणी, सिसहर ऊगो आय ॥ ११ ॥

पही, भमंतो जो मिलैं, कहे अम्हीणी वत्त।
धण कणेररी कांब ज्यूँ सूकी तोय सुरत्त ॥ १२ ॥

भरै, पलट्टै, भी भरै, भीं भर भी पलटेह।
पंथी-हाथ सँदेसड़ो धण विलळंती देह ॥ १३ ॥

७—चांपो—चंपकका पेड़ मुकुलित हुआ है। चूँटै—चुनता है, तोड़[illegible] है। न काय—क्यों नहीं।

८—भमर इ०—भ्रमरके समान आकर क्यों नहीं बैठते ?

९—स्वात—स्वाति नक्षत्रके मेघ बनकर।

१०—फट्टि—फट गई। पाळ—मट्टीका ऊँचा करार।

११—कुमलाणी—कुम्हला गई। कमदणी—कुमुदिनी। सिसहर—शशधर, चंद्र।

१२—पही—हे पथिक, घूमता हुआ यदि तू प्रियतमसे मिल जाय तो हम[illegible] यह बात कहना कि प्रियतमा कनेरकी डंडीके समान तुम्हारी यादमें [illegible] गई है।

१३—भरै इ०—संदेशा कहती है, फिर बदल देती है, फिर कहकर बदल देती है। इस प्रकार पथिकके हाथमें वह प्रियतमा [illegible] है।

पंथी-हाथ संदेसड़ो, धण विललंतो देह।
पगसूँ काढे लोहटो उर आंसुवां भरेह ॥१४॥२२७॥

८—पत्र-लेखन

कर कलमां पाती लिखूँ, प्रीतम चतर सुजाण।
अेक-अेक आखर वारदूँ, तन, मन ओर परांण ॥ १ ॥
पाती आधो मिलण है, रह दरसणकी प्यास।
बांचत ही सुख ऊपजे, फेर मिलणकी आस ॥ २ ॥
कागद थोड़ो, हित घणो, कैसे लिखूँ बणाय।
सागरमें जल भोत है, गागरमें न समाय ॥ ३ ॥
पतरीमें कितरी लिखूँ हितरी, चितरी, वात।
इतरी तितरी ऊपजे, कागदमें नहिं आत ॥ ४ ॥

पंथी-हाथ संदेसड़ो, धण विलळंतो देह ।
पगसूँ काढे लोहटो उर आँसुवाँ भरेह ॥१४॥२२७॥

८—पत्र-लेखन

कर कलमाँ पाती लिखूँ, प्रीतम चतर सुजाण।
अेक-अेक आखर वारदूँ, तन, मन ओर पराँण ॥ १ ॥
पाती आधो मिलण है, रह दरसणकी प्यास।
बाँचत ही सुख ऊपजे, फेर मिलणकी आस ॥ २ ॥
कागद थोड़ो, हित घणो, कैसे लिखूँ बणाय।
सागरमें जल भोत है, गागरमें न समाय ॥ ३ ॥
पतरीमें कितरी लिखूँ हितरी, चितरी, बात।
इतरी तितरी ऊपजे, कागदमें नहिं आत ॥ ४ ॥
पाती तहाँ पठाइये, जो साजन परदेस।
निज मनमें साजन बसे, ताकूँ का उपदेस ॥ ५ ॥
साजन, पतियाँ तो लिखूँ, जो कछु अंतर होय।
हम-तुम जियरा अेक है, देखणकूँ तन दोय ॥ ६ ॥
अनँत-सँदेसा जीवका, लिख राख्या मन माँय।
मिलियाँ मालम कीजसी, कागद लिख्या न जाय ॥ ७ ॥

१४—पग इ०—पैरोंकी रेखा खींचती है और हृदयको आंसुओंसे भरती है ।

८—पत्र-लेखन

१—पराँण—प्राण ।

४—कितरी—कितनी । हितरी—प्रेमकी । चितरी—चित्तकी । इतरी—इतनी । तितरी—वहांकी (आपके विषयकी) ।

६—जियरा—जीव, प्राण ।

७—अनँत—अनंत । कीजसी इ०—मिलनेसे ही मालूम होंगे ।

प्रीतमकूँ पतियाँ लिखूँ, लिखूँ विसूर विसूर।
ये तुमको कौणे कही, थापर डारत धूर ॥ ८ ॥
पाती लिखताँ पीवने हिवड़ो उमळ गयो।
आँसूँ पड़ अँखियानसूँ कागद भीज गयो ॥ ९ ॥
आँसू नैणाँ उमळकर, मेह-झड़ी मच जाय।
पाती लिखताँ पीवने छाती सूँ भर जाय ॥१०॥
घर-गोखाँपर बोलियो पपिहो ताहि घड़ी।
कागद लिखताँ कंतने करसूँ कलम पड़ी ॥११॥२३८

९—प्रतीक्षा

१

धण जोवे नित राजरो वाटाँ विस्वा वीस।
किण दिन आय करावस्यो घर लीलाँरी हींस ? ॥ १ ॥
ऊँची चढ-चढ गोखड़े, ऊँची-ऊँची होय।
जोऊँ मारग राजरो, आवो किण दिन होय ? ॥ २ ॥

८—कौणे—किसने। डारत धूर इ०—अक्षर सुखानेके लिये स्याहीपर धूल डाली जाती है।

९—पीवने—प्रियतमको। हिवड़ो—हृदय। उमळ गयो—उमड़ आया, भर आया।

१०—उमळकर—उमड़कर।

११—गोखाँ—गवाक्ष, झरोखा। पपिहो—पपीहा। पड़ी—गिर गई (पपीहेकी आवाजसे अेकाअेक व्याकुलता छा गई)।

९—प्रतीक्षा

१—राजरो—आपको। वाटाँ—मार्ग। लीलाँरी—घोड़ोंकी। हींस—घोड़ोंका हिनहिनानेका शब्द।

२—आवो—आना।

आलीजा, घर आवज्यो पी प्याला मद पूर ।
उण दिन धणरे ऊगसी सोना-हंदो सूर ॥ ३ ॥
धन वे़ला, ने धन घड़ी, धन दिन, धन ते मास ।
नैणां दरसण देखसूँ, ते दिन फल़सी आस ॥ ४ ॥
साजण आयांकी कहै कोई अचानक आण ।
तो, सजनी, ताको हरख देऊँ वधाई प्राण ॥ ५ ॥
मन तूट्यो, आसा मिटी, नैणां खूट्यो नीर ।
ओल़ूँ कर-कर आपरी सूक्यो सकल़ सरीर ॥ ६ ॥
दिस चाहंदी सज्जणां, नेहाल़ंदी मग्ग ।
साधण क्रुंम्म-बचाह. ज्यूँ लाँबा हूया पग्ग ॥ ७ ॥
दिस चाहंदी सज्जणां नेहाल़ंदी मुंध ।
सायधण क्रुंम्म-बचाह ज्यूँ लांबी हुइ त कंध ॥ ८ ॥
ऊलंबे सिर हथ्थड़ा चाहंदी रसलुध ।
ऊँची चढ चात्रंग ज्यूँ माग निहाल़ै मूँध ॥ ९ ॥

२

प्यारा, आज्यो पावणा, प्यारी धणरे देस ।
साजन, म्हारा पिहरमें थांरा कोड हमेस ॥१०॥

४—धन—धन्य । वे़ळा—समय ।

५—आण—आकर । सजनी—हे सखी ।

६—खूट्यो—समाप्त होगया । ओल़ूँ—याद ।

७—दिस इ०—प्रियतमके आगमनकी दिशाको देखती हुई और मार्गको जोती हुई प्रियमताके पैर क्रौंचके बच्चेके समान लम्बे होगये (प्रियतमा उभक-उभककर राह देखती थी) ।

८—मुंध—मुग्धा, प्रियतमा । कंध—गरदन ।

९—ऊलंबे इ०—सिरको हाथपर रखे हुए और प्रेमके रसमें लुब्ध वह मुग्धा चातककी भांति ऊँची चढ़कर मार्गको देखती है ।

१०—पिहर—पीहर । कोड़—चाव

सुसरो, सासू, सालियाँ, साला सख्याँ सभीह।
जोवै वाटाँ राजरी, पीहर आज्यो, पीव ॥११॥२४६॥

१०—प्रेमीकी उत्सुकता

मेह वूठा, हरिया हुवा, भरिया होद-निवाँण।
अधपतियाँ अरजी करै, दो नी सीख, दिवाँण ॥ १ ॥
ऊठ धरा उतरादसूँ चहूँ कला छिटकात।
मन उमँग्यो मारू धरा, वा चंगा वरसात ॥ २ ॥
वीजलियाँ मांडेचियाँ खिवै हबूका लेह।
दोख न घोड़ा रावताँ, राजा सीख न देह ॥ ३ ॥
उतरादो घन गरजियो, मोटी छाँटाँ मेह।
दोस न घोड़ा रावताँ, राजा सीख न देह ॥ ४ ॥
वादल चमकै वीजली, गाजै, वरसै मेह।
काग उडावै कामणी, राजा सीख न देह ॥ ५ ॥
आज धरादिस ऊनम्यो, काली घड़ सिखरांह।
वा देसी धण ओलभा, कर-कर लाँबी बाँह ॥ ६ ॥२५५॥

११—सभीह—सारे ही। राजरी—आपकी।

१०—प्रेमी की उत्सुकता

१—निवाँण—नीची भूमि। अधपतियाँ—राजासे। दोनी सीख—हे दीवान, विदा (छुट्टी) दें।

२—उतराद—उत्तर दिशा। मन इ०—मारू देशके लिये मन उमंगित हो उठा (प्रवासी मारवाड़का निवासी है)।

३—दोख इ०—सरदारके घोड़ेको दोष नहीं क्योंकि उसका मालिक राजा जानेकी आज्ञा नहीं देता।

५—काग उडावै—जब किसीकी प्रतीक्षा होती है तो काग उड़ाया जाता है।

६—धरादिस—ध्रुवकी दिशा, उत्तर। घड़—घटा। ओळभा देसी—उलहना देगी।

११—स्वप्न-दर्शन

सपना, तूँ सुम्भागियो, उत्तम थारी जात।
सो कोसां साजन वसै, आण मिलावै रात ॥ १ ॥
सुपने प्रीतम मुझ मिल्या, हूँ गल लागी धाय।
डरपत पलक न खोलही, मत सुपनो हुइ जाय ॥ २ ॥
हुंता साजन हीयड़े साजन-हंदा हत्थ।
जो सुपनो साचो हुवै, सुपनो वडी वसत्त ॥ ३ ॥
सुपना आया, फिर गया, मैं सर भरिया रोय।
आव, सुवागण नींदड़ी, वळि पिउ देखूँ सोय ॥ ४ ॥
सपनेमें साजन मिल्या, कर न सकी दो वात।
सोती थी, रोती उठी, मींजत रह गइ हात ॥ ५ ॥
जद जागूँ जद अेकली, जद सोऊँ जद वेल।
सुहिणा, तैं मने छेतरी बीजी भीजी हेल ॥ ६ ॥
सुहिणा, तोय मरावस्यूँ, हिये दिराऊँ छेक।
जद सोऊँ जद दोय जन, जद जागूँ जद अेक ॥ ७ ॥
जब सोऊँ तब जागवै, जब जागूँ तब जाय।
मारू ढोलो साँभरै, इण परि रैण विहाय ॥ ८ ॥२६३॥

११—स्वप्न-दर्शन

१—सुम्भागियो—अच्छे भाग्यवाला, अच्छा। आण—लाकर।

२—मत इ०—कहीं सपना-ही न हो जाय।

३—हुंता इ०—प्रियतमाके हृदयपर प्रियतमके हाथ थे (स्वप्नमें)। वसत्त—वस्तु।

४—फिर गया—चला गया। सर भरिया—इतनी रोई कि तालाब भर गये। सुवागण—सौभाग्यवती। वळि—फिर।

६—वेल—दो।

७—सुहिणा—हे सपने। छेतरी—ठगी, धोखा दिया। छेक—छेद करा दूँ।

८—जागवै—सपनेमें आकर प्रियतम जगाता है। जाय—चला जाता है। साँभरै—प्रियतमा प्यारेको याद करती है। इण परि इ०—इस भांति रात बीतती है।

१२—शकुन

खिवै निमाणी आँखड़ी, बोलै काग निलज्ज।
सो कोसां साजन वसै, सो किम आवै अज्ज ॥ १ ॥
आज फरूकै आँखियां, नाभ, भुजां, अहराह।
सखी ज, घोड़ा सज्जणां सामा किया घरांह ॥ २ ॥
अहर फरक्कै, तन फुरै, तन फुर नैण फुरंत।
नाभी-मंडल सहु फुरै, साँझे नाह मिलंत ॥ ३ ॥
वाँवों अंग फरकण लगो, फरकत वाँवीं आँख।
साजन आसी, हे सखी, चढ चोबारे झाँख ॥ ४ ॥२६७॥

१३—प्रियतमका आगमन

काग उडावण धण खड़ी, आयो पीव भड़क्क।
आधी चूड़ी काग गल, आधी गई तड़क्क ॥ १ ॥
उठ, दासी, कस ढोलियो, गहरा दीपक जोय।
दड़बड़ माची देहरी, सायत साजन होय ॥ २ ॥

१२—शकुन

२—घोड़ा—प्रियतमने अपने घोड़े घरकी ओर किये (घरकी ओर प्रस्थान कर दिया है)।

३—अहर—होठ। फरक्कै, फुरै—फड़कता है। सहु—सब।

४—साँझे इ०—संध्याको प्रियतम मिलेंगे। वाँवो—बाँया। झाँख—देख।

१३—प्रियतमका आगमन

१—भड़क्क—अचानक। तड़क्क—तड़ककर टूट गई। नोट—नायिका काग उड़ा रही थी। उसका शरीर प्रिय-वियोगसे बहुत दुर्बल होगया था पर ज्योंही प्रियतमको आया सुना वह अेक दम मोटी होगई और हाथ मोटा होनेसे हाथकी चूड़ी तड़क गई। हाथ ऊँचा किया हुआ था अतएव टूटी हुई चूड़ीका ऊपरवाला आधा हिस्सा उछलकर कौवेके गलेमें जा पड़ा।

२—सायत—शायद (अथवा, आनेकी शुभ वेला)।

सायब आया, हे सखी, कोई भेंट धराँह ?
गजमोतियनको थाल ले, ऊपर नैण धराँह ॥ ३ ॥
सायब, आया हे सखी, तोड़ों नवसर हार।
लोक जांणै मोती चुगै, झुकझुक करो जुहार ॥ ४ ॥
साजन आया, हे सखी, मंगल चोक पुराय।
गावो मँगलाचार मिल, गहरो ढोल घुराय ॥ ५ ॥
साजन आया, हे सखी, मोत्याँ थाल भराय।
डोढ्याँ साम्ही दोड़ अब लावाँ चाल वधाय ॥ ६ ॥
साजन आया, हे सखो सँग साईना लेर।
पाई नवनिध नार, अब नगर वधाई फेर ॥ ७ ॥
साजन आया, हे सखी, कज्जा सह सरियाह।
पूनिम-फेरे चाँद ज्यूं दिस च्यारे फलियाह ॥ ८ ॥
साजन आया, हे सखी, ज्यांकी हूँती चाय।
हियड़ो हेमागर भयो, तन पिंजरे न माय ॥ ९ ॥
साजन आया, हे सखी, हुंता मूझ हियाह।
आजूणे दिन ऊपरै, बीजा बलि कीयाह ॥१०॥
साजन आया, हे सखी, हुंता मूझ हियाह।
सूका था सु पालह्व्या, पाल्हविया फलियाह ॥११॥

३—नैण इ०—क्या ही सुन्दर और उपयुक्त भेंट है।
४—नवसर—नौ लड़ोंका। जुहार—प्रणाम।
५—घुराय—बजाकर।
६—डोढ़ी—देवढ़ी, अंतःपुरका द्वार। साम्ही—सामने।
७—साईना लेर—साथियोंको लेकर।
८—कज्जा इ०—सब काज सिद्ध हो गये। च्यारे—चारों।
९—हुंती—थी। हेमागर—हिमगिरि। माय—समाता है।
१०—आजूणे इ०—आजके दिनपर दूसरे दिन न्योछावर कर दिये।
११—सूका इ०—जो मनोरथ सूख गये थे वे पल्लवित होकर सफल होगये।

प्रियमें ... वधामणा, सखी, त सीधा काज।
जे सुपनंतर दीसता, नयणे देख्या आज ॥१२॥
जिणनूँ सुपने देखती, प्रगट भया पित्र आय।
डरती आँख न मूँदही, मत सुपनो हुय जाय ॥१३॥
सोई साजन आविया, जाँकी जोती वाट।
थाँभा नाचै, घर हँसै, खेलण लागी खाट ॥१४॥
सज्जन वारूँ कोडधाँ, या दुरजणकी भेंट।
रजनीका मेल्हा किया, वँहके अच्छर मेट ॥१५॥२८२॥

१४—प्रिय-प्रिया-मिलन

ढोले जाणी वीजली, मारू जाण्यो मेह।
च्यार आँख अेकठ हुई, सयणाँ वध्यो सनेह ॥ १ ॥
सब मुख देखै चंदको, मैं मुख देखूँ तोय।
मेरे तुम ही चंद हो, मुख देख्याँ सुख होय ॥ २ ॥

१२—वधामणा—बधाइयाँ, बधावने। सीधा—सिद्ध हुअे। सुपनंतर—जो स्वप्नमें दिखाई देते थे।

१४—थाँभा नाचै—सारा घर और घरके निर्जीव पदार्थ भी हर्षसे नाचते हुअे दिखाई देते हैं।

१५—सजन—इस दुर्जनके ऊपर करोड़ों बार सज्जनोंको न्योछावर करदूँ, क्योंकि इसने विधाताके लेखको मेटकर वियोगी चकवा और चकवीको रातमें संयुक्त कर किया। नोट—यह माना जाता है कि रातमें चकवा-चकवी साथ नहीं रह सकते। अेक बहेलियेने दोनोंको पकड़ लिया और रातमें भी पिंजरेमें बन्द करके साथ ही रखा।

१४—प्रिया-प्रिया-मिलन

१—ढोले इ०—नायकने नायिकाको बिजली समझा और नायिकाने नायकको मेघ समझा (और दोनों मिले)। च्यार इ०—चार आँखें इकट्ठी हुईं, नायक-नायिकाने परस्पर-दर्शन किया। सयणाँ इ०—प्रेमियोंका प्रेम बढ़ चला।

२—तोय—तेरा। देख्याँ—देखनेसे।

आवो, प्यारा, नैणमें, पलक डाक तोहे लूँ ।
ना मैं देखूँ ओरकूँ, ना तोहे देखण दूँ ॥ ३ ॥
केसररा क्यारा करूँ, कसतूरीकी खाज ।
नैणांरा प्याला करूँ, पीवो, म्हारा राज ॥ ४ ॥
या तनकी भट्टी करूँ, मनकूँ करूँ कलाल ।
नैणांरा प्याला करूँ, भर-भर पियो, जमाल ॥ ५ ॥
नैणनकी कर कोटड़ी, पुतली दिऊँ बिछाय ।
पलकनकी चिक डार दूँ, साजन बैठो आय ॥ ६ ॥
म्हेनें ढोलो झूँबियो, लूँगे लफ्कड़ियेह ।
म्हांने प्रिउजी मारिया, चंपारे कलियेह ॥ ७ ॥
म्हेंने ढोलो झूँबियो, म्हांनूं आवी रोस ।
चोवा-केरी कूँपली, ढोली साहब-सीस ॥ ८ ॥२६०॥

१५—मान

गहली, गरब न कीजिये समै सुहाग ज पाय ।
जीकी जीवण जेठ ज्यूँ माह न छाँह सुहाय ॥ १ ॥
वतलावें जद वाम, वतलाया बोलो नहीं ।
कदयक पड़ियाँ काम नोरा करसो, नागजी ॥ २ ॥

७—म्हेंने इ०—प्रियतम लवंगकी छड़ी लेकर मुझे झूम गया । प्रियने मुझे चंपककी कलियोंसे मारा ।

८—म्हेंने—जब प्रियतम मुझे झूम गया तो मुझे रीस आई और मैंने चोवा (अरगजा) का पात्र स्वामीके सिरपर उँड़ेल दिया ।

१५—मान

१—हे पगली, समयपर सौभाग्यको पाकर गर्व मत कर। याद रख, जेठ मासमें छाया प्राणोंके लिये जीवन-रूप होती है वही माघमें [illegible] लगने लगती है ।

२—हे नागजी, प्रिया जब बुलाती है तब तो बोलते भी नहीं पर कभी काम पड़ेगा तो मनुहार करते फिरोगे ।

तन मिलिया तो क्या हुवा, मन की मिटी न प्यास ।
जैसें सीप समंद्रमें करै तिरास-तिरास ॥ ३ ॥२६३॥

१६—वर्षा-विहार

आयो घन, त्यूँ ही, अली, मनचायो तन साज ।
आयो धणरो सायवो, करण सुमंगल काज ॥ १ ॥
काला बादल बरसिया, मोर हुवा मदमंत ।
सहरां सहरां संचरी बादूँबाद खिवंत ॥ २ ॥
कोयल करै टहूकड़ा, पपिया करै पुकार ।
घन धुर अंबर घुमड़ियो, धर झर मेहां धार ॥ ३ ॥
आइ घटा उतरादरी, भँज सो कोसां बीच ।
मेहां मौड्या माचणा, झिल भर माच्या कीच ॥ ४ ॥
हरियां वनकी कोयलां, हरिया वनका मोर ।
मन जरिया हरिया करै, बोल-बोल निस-भोर ॥ ५ ॥
पियके हरी सु पाग सिर, तियके हरियो चोर ।
जल झरिया हरिया हुवा सब पट भींज सरीर ॥ ६ ॥

३—मिलिया—मिले । समंद्र—समुद्र । तिरास—तृषा, प्यास (सीपको प्यास स्वाति-जलसे ही बुझती है ।)

१६—वर्षा-विहार

१—धणरो सायवो—प्रेयसीका प्रियतम । करण—करनेवाला ।

२—मदमंत—मस्त । सहरां इ०—पहाड़ोंके शिखर-शिखरपर बिजली होड़ लगाकर चमक रही हैं ।

३—धुर-अम्बर—उत्तर दिशाके आकाशमें । धर इ०—पृथ्वीपर मेघोंकी धाराएँ झर रही हैं ।

४—उतराद—उत्तर दिशा । सो—सौ, १०० ।

५—मन जरिया इ०—जले हुअे मनोंको हरा-भरा करते हैं ।

६—पाग—पगड़ी । जल झरिया—जल टपकते हुअे । भींज—भीगकर ।

कैसो लगै सुवावणो, धुरवाँ-धुरवाँ कंत।
जल झुरवाँ, सुरवाँ करै, मुरवाँ-गण महमंत ॥ ७ ॥
लूमाँ झड़, नदियाँ लहर, बग पंगत भर बाथ।
मोराँ सोर ममोलिया, सावण लायो साथ ॥ ८ ॥
हरणी मन हरियालियाँ, उर हालियाँ उमंग।
तीज परब, रँग त्यारियाँ, सावण लायो संग ॥ ९ ॥
धन धोराँ, जोराँ घटा, लोराँ वरसत लाय।
वीज न मावै वादलाँ, रसिया, तीज रमाव ॥१०॥
इंद्र-धनस तणियो अजब, चातक-धुन मन भाव।
वीज न मावै वादलाँ, रसिया तीज रमाव ॥११॥
मोर सिखर ऊँचा मिलै, नाचै हुवा निहाल।
पिक ठहकै, झरणा पड़ै, हरिये डूँगर हाल ॥१२॥
बाजरियाँ हरियालियाँ, बिच-बिच वेलाँ फूल।
जे भर वूठो भादवो, मारू देस अमूल ॥१३॥

७—सुवावणो—सुहावना। धुरवाँ—घन-घटा। झुरवाँ—बरसता है। सुरवाँ—शोर। मुरवाँ—मोर।

८—बग पंगत इ०—बाथें (भुजाएँ) भरकर (अर्थात् खूब) बगुलोंकी पाँतें। ममोलिया—बीरबहूटियाँ। सावण—इतनी चीजें सावन आता हुआ साथ लाया।

९—हिरनियोंके मन हरे हो गये, कृषकोंके हृदयोंमें उमंगें उत्पन्न हुईं, तृतीयाका त्यौहार, रँग भरो तय्यारियाँ—ये सब सावन साथमें लाया।

१०—टीबोंमें धान खूब हो रहा है, और बादलोंकी घटाएँ जोरोंसे लोरोंके साथ बरस रही हैं, बिजली इतनी चमकती है कि बादलोंमें नहीं समाती। हे रसिक, अैसे समयमें तीजका त्यौहार मनाओ।

११—इन्द्र-धनस—इन्द्र-धनुष। तणियो—तन गया। अजब—निराला।

१२—निहाल इ०—निहाल बने हुअे। ठहकै—कूकती है। हरिये इ०—हरे पहाड़पर चलो।

१३—जे इ०—यदि भादवेमें भरपूर वर्षा हो तो मारवाड़की शोभा अमूल्य हो जाय।

धर नीली, धण पुंडरी, घर गहगहै गिमार।
मारू देस सुहावणो, सावण साँझी वार ॥१४॥
गह घूमी, लूमी घटा, पावस उलट्या पूर।
सावण महिने, सायवा, कदे न राखूँ दूर ॥१५॥
सावण आयो, सायबा, बाँधो पाग सुरंग।
महल बैठ राजस करो, लीला चरै तुरंग ॥१६॥
बादल तन कालो वरण, घुरवो आन नगाज।
मद झर जल बंगर छटा, घटा बणी गजराज ॥१७॥
है निगाज च्याराँ तरफ़, वै निगाज बरसाल।
उलटा पलटा बादला, चढत बढत कर चाल ॥१८॥
च्याराँ पासे घन घणो, बीजल खिवै अकास।
हरियाली रुत तो भली, घर संपति, पिव पास ॥१९॥३१२

१७—पखवाड़ा

पख पड़वासूँ ओलरयो, कर सूती सिणगार।
नायो धणरो सायिबो, दिवो न खंडै धार ॥ १ ॥

१४—धर इ०—पृथ्वी हरी हो गई, प्रियतमाका रंग निखरकर गोरा हो गया, गाँवके लोग घरोंमें बाजे बजाकर आनन्द मनाते हैं। इस प्रकार सावनकी संध्याके समय मारवाड़ बड़ा सुहावना बन जाता है।

१५—लूमी—झुक आई। सायबा—हे प्रियतम।

१६—राजस—राज्य। लीला—हरा घास।

१७—घुरवो—घुमड़ना, गरजना।

१९—च्याराँ पासे—चारों ओर। हरियाली रुत—वर्षा। घर संपति इ०—ताकि पतिको कमाने परदेश न जाना पड़े।

१७—पखवाड़ा

१—पख—पक्ष, पखवाड़ा। पड़वासूँ—प्रतिपदासे। ओलरयो—शु[illegible] हुआ। सूती—सोई। नायो—नहीं आया। दिवो—दीपक। खंडै इ०—स्थि[illegible] लौसे जल रहा है।

बीज स आज, सहेलियाँ, वालो ऊगो चंद ।
दाड़म-हंदा दंतड़ा, सेज न आयो कंत ॥ २ ॥
तीज स आज, सहेलियाँ, तीजणियाँ तेहवार ।
गोरी सोहै आभरण, काजल, कूँकूँ, हार ॥ ३ ॥
चोथ चमक्को पाड़ियो घण मारूरे देस ।
महलाँ बैठी कामणी, पीव वसै परदेस ॥ ४ ॥
पाँचम आज, सहेलियाँ, पाँचूँ बंध्या ठाण ।
उलगाणारी कोटड़ी हुई पिलाँण-पिलाण ॥ ५ ॥
छट्ठ स आज, सहेलियाँ, तीनूँ तिथ टलियाँह ।
आवै धणरो सायबो, लेसी ऊडलियाँह ॥ ६ ॥
आज, सहेली, सातम जु, सोनेरी सलियाँह ।
आसी धणरो सायबो, करसी रँगरलियाँह ॥ ७ ॥
आज, सहेली, आठम जु, ओ पख अहलो जाय ।
हिये खटूकै वालमो, काँटो ऍडी माँय ॥ ८ ॥
आज, सहेल्याँ, नवम जे, ओढण नवला चीर ।
रिमझिमकर महलाँ चढ़ी, नहिं नणदलरा वीर ॥ ९ ॥
दस दसरावा पूजसाँ भर मोतीड़ा थाल ।
भजिया सो ही पावसी भर जोड़ी भरतार ॥ १० ॥

२—बीज—द्वितीया । वालो—प्यारा ।
३—कूँकूँ—कुंकुम । आभरण—गहने, शृंगार ।
४—चमक्को पाड़ियो—बिजली चमकी । घण—बादल ।
५—उलगाणा—प्रवासी प्रियतम । कोटड़ी—डेरा । हुवो इ०—प्रस्थानकी तय्यारी होने लगी ।
७—सळियाँह—सलाइयां । आसी—आयेगा ।
८—अहलो—योंही, व्यर्थ । खटूकै—खटकता है । वालमो—प्रियतम ।
९—नवला—नये । नणदलरा वीर—ननदका भाई, पति ।
१०—दस—दशमी । दसरावा—दशहरा ।

आज इग्यारस ऑवली, वेह ने मंगलवार ।
प्रगड़े करस्यां पारणो मुख देख्यां भरतार ॥ ११ ॥
बारस आज, सहेलियां, वाबहियो बोलंत ।
नैणां सावण-भादवो, होठां बीज खिवंत ॥ १२ ॥
तेरस आज, सहेलड़ी, तीनूँ तीखा वार ।
पिवने सोहै मूँदड़ी, धणने नवसर हार ॥ १३ ॥
चवदस आज, सहेलियां, चोक्यां बैठा राव ।
अणचींत्या साजण मिल्या पड़्या निसाणां घाव ॥ १४ ॥
पूनम पूरो ऊगसी, रती न खांडो होय ।
उलगाणारी गोरड़ी, बैठी निरमल होय ॥ १५ ॥
धण धाई, पिव छाकिया, घोड़ा घास चरंत ।
पखवाड़ो पूरो हुयो, दिवला साख भरंत ॥ १६ ॥३२८॥
॥१०१५॥

११—प्रगड़े—प्रातःकाल । पारणो—व्रतके पीछेका भोजन, पारणा ।

१२—वाबहियो—पपीहा । नैणां इ०—नेत्रोंमें श्रावण-भाद्रपद बरस रहा है और होठोंमें बिजली चमक रही है (दांतोंको बिजलीकी उपमा दी जाती है)।

१३—तीखा—कठोर । मूँदड़ी—मुद्रिका, अंगूठी ।

१४—राव—राजा । अणचींत्या—अचिंत्य रूपसे। निसाणां इ०—नगारोंपर चोट पड़ी ।

१५—पूरो—पूरा (चन्द्रमा) । खांडो—खंडित । गोरड़ी—गोरी, स्त्री ।

१६—धण—प्रिया । धाई—तृप्त हुई । छाकिया—छक गये । दिवला—दीपक । साख—गवाही ।

(८) शान्त-रस

ऊँचे टीबे ठीकरी घड़-घड़ गया कुँभार।
रावण सिरसा चल गया लंकाका सिरदार ॥ ९ ॥

जिण वन भूल न आवता गयँद-गवय गिडराज।
तिण वन जंबुक ताखड़ा ऊधम मंडै आज ॥१०॥

जिणरे खांधे कूदता, करता लाड हजार।
लाडणहारा रह गया, गया लडावणहार ॥११॥

महिपत देता मोज, घर बैठां घोड़ा घणा।
रोट्यां-केरो रोज, निजरां देख्यो, नोपला ॥१२॥

भावै नहीं ज भात, लागै विणज विडावणा।
रीरावै दिन-रात, रोट्यां कारण, राजिया ॥१३॥

गढ-कोटां, पोली-पगां, ऊँचा-ऊँचा धाम।
आया जम,जिव ले चल्या, कोइ न आया काम ॥१४॥

ज्यूँ लारलड़ा वह गया, वरतमाण वह ज्याय।
काल-कलतमें कल रह्या, ठीक न, विसना, ठाय ॥१५॥

पाछा मिलण न पावसी, पड़ सरवरसूँ पात।
देह छूटां मिलणो पछै है नहिं, विसना, हांत ॥१६॥

सदा न संग सहेलियां, सदा न राजा देस।
सदा न जुगमें जीवणा, सदा न काला केस ॥१७॥

आसी सावण मास, वरखा रुत आसी वले।
साईनांरो साथ वले न आसी बींजरा ॥१८॥

१०—गयँद—हाथी। गवय—रोझ। गिडराज—गृध्रराज। जंबुक—सियार ताखड़ा—उपद्रवी। मंडै—करते हैं।

११—लाडणहरा—जिनका लाड़-प्यार होता था।

१२—मोज—रीझमें, रीझकर। रोज—रोना,झींकना। निजरां—आँखों।

१४—पगा—पगार, चहारदिवारी।

१५—लारलड़ा—पीछेवाले। वरतमाण—वर्त्तमान, जो अब हैं।

१७—जुग—जगत। काला केस—काले केश अर्थात् यौवन।

१८—सावनका महीना फिर लौट आवेगा, वर्षा ऋतु भी लौट आवेगी

२—संसारकी अनित्यता

पान झड़ंता देखकर, हँसी ज कूँपलियाँह।
मो वीती तुझ वीतसी, धीरी बापड़ियाँह॥ १॥
गहरी लाली देखकर, फूल गुमान भयाह।
कितरा बाग जहानमें, लग-लग सूख गयाह॥ २॥
बँधी गठड़िया धूलकी, रही पवनसें फूल।
गाँठ जतनकी खुल गई, अंत धूल-की-धूल॥ ३॥
दस दुवारको पींजरो, तामें पंछी पौन।
रहण अचूँबो है, जसा, जाण अचूँबो कौण॥ ४॥
जो ऊगा सो आँथवै, फूल्या सो कुँमलाय।
जो चिणिया सो ढह पड़े, जो आया सो जाय॥ ५॥
पाणी-केरा बुदबुदा, इसी मिनखरी जात।
अेक दिनाँ छिप जावसी, ज्यूँ तारा परभात॥ ६॥

ाज बचपनमें जिन साथियोंके संग खेलते-कूदते हैं, उनका साथ फिर कभी नहीं मिलेगा।

२—संसारकी अनित्यता

१—कूँपलियाँह—कोंपलें। मो वीती इ०—पत्तोंने उत्तर दिया कि अरी बेचारियों, ठहर जाओ, जो हमपर बीती है वही तुमपर भी बीतेगी।

२—कितरा—न-जाने कितने। गुमान भया—गर्वमें भर गये।

३—बँधी गठड़िया—शरीर मिट्टीका बना है। पवन—जीव। जतनकी—यत्नसे बाँधी हुई।

४—दस दुवार—शरीरमें दस छिद्र हैं—दो आंखोंके, दो नाकके, अेक मुँहका दो गुह्यस्थानोंके और अेक मस्तिष्कमें ब्रह्मांडका। पौन—पवनरूपी पक्षी उसमें रहता है। पींजरो—अर्थात् शरीर। रहण इ०—अैसे पिंजरेमें अैसा पक्षी रहे यही आश्चर्य है, यह चला जाता है यह तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। जसा—जसवंत-सिंह (कविका नाम)।

आया सोही जावसी, राजा-रंक-फकीर ।
कोई सिंघासण बैठ, कोइ पाँव लगी जंजीर ॥ ७ ॥

ऊमररे उणसार, टिगट मिल्या जग-रेलमें।
कै वेगा, कै वार, ठेसण-ठेसण उतरसी ॥ ८ ॥

ज्यूँ बादल मिल बीछड़ै, आप-आपसूँ आय ।
दिन दसका मेला भया, रहणा निहचै नाँय ॥ ६ ॥

नदी-किनारे देखिये, ईस्मन, सब संसार ।
कै उतरया, कै उतरै, (कै) बुगचा बाँध तयार ॥१०॥

चलणा है, रहणा नहीं, चलणा बिसवा बीस ।
अैसे सहज सुहागपर कूँण गुँथावै सीस ? ॥११॥२६॥

३—यौवनापगम

जोवन था जब रूप था, गाहक था सब कोय ।
जोवन-रतन गमायके, बात न पूछै कोय ॥ १ ॥

जोवन जोगी हो गया, फेरी देग्या द्वार ।
मैं पापण साकत रही, फिरया न दूजी वार ॥ २ ॥

यहि अँगना, यहि देहरी, यही ससुरको गाँव ।
दुलहन-दुलहन टेरतां, बुढिया पड़ गयो नाँव ॥ ३ ॥३२॥

७—कोइ इ०—पुण्यात्मा सिंहासनपर बैठकर और पापी बँधे हुअे ।

८—उणसार—अनुसार। कै इ०—कोई जल्दी और कोई देरसे। ठेसण—टेसन, स्टेशन ।

६—आप-आपसूँ—अपने-आप, स्वतः । निहचै—निश्चय ही ।

[illegible] । तयार—जानेके लिअे उद्यत ।

[illegible] बीस—बीस विश्वे अर्थात् अवश्य ही। सहज—साधारण [illegible] जीवन । सीस गुँथाना—बड़ी-बड़ी तय्यारियां करना

३—यौवनापगम

[illegible] गया । पापण—पापिनी, अभागी । फिरया—लौटा ।
[illegible]रतां—पुकारते-पुकारते ।

४—चेतावनी

ऊठ, फरीदा, जाग रे, जागणकी कर चूँप ।
यो दम हीरा लाल है, गिण-गिण रबकूँ सूँप ॥ १ ॥
ऊठ, फरीदा, जाग रे, झाड़ू देय मसीत ।
तूँ सोवै, रब जागता, किस विध वणै पिरीत ॥ २ ॥
मिनख-देह प्रापत भई, सब प्रापतकी मूल ।
ज्यांमें हरि प्रापत नहीं, सब प्रापतपै धूल ॥ ३ ॥
जब ही राम विसारिये, जब ही झंपै काल ।
सिर ऊपर करवत वहै, आय पड़ै जम-जाल ॥ ४ ॥
जसवँत, सीसो काचको, अैसी नरकी देह ।
जतन करंतां जावसी, हर भज लाहा लेह ॥ ५ ॥
जसवँत, वास सरायका, क्या सोवै भर नैण ।
सांस-नगारा कूचका, वाजत है दिन-रैण ॥ ६ ॥
[illegible] हलहल भई, धोला बैठा आय ।

आया सोही जावसी, राजा-रंक-फकीर
कोई सिंघासण बैठ, कोइ पाँव लगी जंजीर
ऊमररे उणसार, टिगट मिल्या जग
कै वेगा, कै वार, ठेसण-ठेसण
ज्यूँ वादल मिल वीछड़े, आप-आपसूँ
दिन दसका मेला भया, रहणा नि०
नदी-किनारे देखिये, रैस्मन,
कै उतरया, कै ऊतरैं, (कै) वुगचा
चलणा है, रहणा नहीं, चलणा
अैसे सहज सुहागपर कूँण गुँ

२

जोवन था जब रूप था, ०
जोबन-रतन गमायके, वात
जोबन जोगी हो गया, फेरी
मैं पापण ताकत रही,
यहि अँगना, यहि देहरी,
दुलहन-दुलहन टेरतीं,

७—कोइ इ०—पुण्यात्मा सिंहासनपर
८—उंणसार—अनुसार। कै इ०—कोई
टेसन, स्टेशन।
९—आप-आपसूँ—अपने-आप, स्वतः।
१०—कै—कई। तयार—जानेके लिये
११—विसवा वीस—वीस विश्वे अर्थात्
सुहाग—अर्थात् जीवन। सीस गुँ
२—यौवनापगम
। पापण—पापिनो,
ारते।

४—चेतावनी

ऊठ, फरीदा, जाग रे, जागणकी कर चूँप ।
यो दम हीरा लाल है, गिण-गिण रबकूँ सूँप ॥ १ ॥
ऊठ, फरीदा, जाग रे, झाड़ू देय मसीत ।
तूँ सोवै, रब जागता, किस विध वणै पिरीत ॥ २ ॥
मिनख-देह प्रापत भई, सब प्रापतको मूल ।
ज्यांमें हरि प्रापत नहीं, सब प्रापतपै धूल ॥ ३ ॥
जब ही राम विसारिये, जब ही झंपै काल ।
सिर ऊपर करवत वहै, आय पड़ै जम-जाल ॥ ४ ॥
जसवँत, सीसी काचकी, अैसी नरकी देह ।
जतन करंतां जावसी, हर भज लाहा लेह ॥ ५ ॥
जसवँत, वास सरायका, क्या सोवै भर नैण ।
सांस-नगारा कूचका, वाजत है दिन-रैण ॥ ६ ॥
काळांके हलहल भई, धोळा बैठा आय ।
हरीदास, गढ पाळट्या, गुण गोविंदका गाय ॥ ७ ॥
रे, थोड़ी ऊमर रही, काय न छोडै कूड़ ।
हिय-अंधा, तूँ नाख अब धंधां ऊपर धूड़ ॥ ८ ॥

४—चेतावनी

१—चूँप—उत्साह, प्रबल इच्छा । दम—सांस । रब—परमात्मा । सूँप—सौंप दे ।

२—मसीत—मसजिद । पिरीत—प्रीति ।

३—प्रापत—प्राप्ति ।

४—जब ही झंपै इ०—तभी काल झपटता है । वहै—चलता है ।

५—लाहा—लाभ । लेह—ले ले, उठा ले ।

७—काळांके—काले केश चलनेको तय्यार हुअे । गढ पाळट्या—गढ़का अधिकार बदल गया ।

८—काय—किस लिअे । कूड़—झूठ । नाख—डाल ।

जात वळंते सांसड़े, जो दीजै सोइ लब्भ।
विच ही वाव विलावसी, राख थयेसी सब्भ॥९॥

हर भज, रे हरदासिया, दाखै ईसरदास।
मोल लियांसूँ नहिं मिलै, कोट मोहर इक सांस॥१०॥

हाथां परवत तोलता, समँदां घूँट भरेह।
ते जोधा दीसै नहीं, तूँ क्यों गरब करेह॥११॥

चल वैभव, संपत सुचल, चल जोबण, चल देह।
चलाचलीके खेलमें, भलाभली कर लेह॥१२॥

जात वळै नहिं दीहड़ा, जिमि गिर-निरझरणाह।
उठ, रे आतम, धरम कर, सुवै निचंता काह॥१३॥

वहते जळ, कालू कहै, लीजै अंग पखाळ।
वळे न, हंसा, आवसो, इण सरवररी पाळ॥१४॥

सबसूँ हँस-हँस बोल, पर-दुखमें साथी बणो।
मिनख-जूण अनमोल, च्यार दिनांरी चानणी॥१५॥

नाम अमररो चाय, तो हो भल कर पर-भला।
माटीमें मिल जाय, काया काची मिनखरी॥१६॥

९—जात वळंते इ०—सांसके जाते-आते। लब्भ—लाभ। वाव—वायु, प्राण। विलावसी—विलीन हो जायगी। थयेसी—होगा। सब्भ—सब कुछ।

११—हाथां इ०—पर्वतोंको हाथोंमें उठाकर तोल सकते थे तथा समुद्रोंको अेक ही घूँटमें पी जाते थे। करेह—करता है।

१२—चल—चंचल, अस्थायी।

१३—वळै—लौटते हैं। दीहड़ा—दिन। गिर इ०—पहाड़ी झरने। आतम—हे जीव। निचंता—निश्चिन्त। काह—क्या, किसलिअे।

१४—पखाळनो—धोना, मंजन करना। वळे—फिर। हंसा—हे जीव। इण—इस। पाळ—पार या तटपर।

१५—मिनख-जूण—मनुष्य जन्म। चार इ०—चाँदनीकी भाँति चार दिन तक रहनेवाली अर्थात् अस्थायी है।

१६—चाय—इच्छा। तो इ०—तो भले होकर पराया भला करो।

पिंड पड़ै, पुन ना पड़ै, परलै पतित न होय ।
रज्जब, संगी जीवका सुकृत सिवाय न कोय ॥१७॥
दिन दस दौलत देखकर गरव्यो कहा, गँवार ।
जोड़त लागा बरस सौ, जात न लागै वार ॥१८॥
आया खाली हाथ, माया जोड़ी जनम भर ।
सुई न चालै साथ, खाली हाथाँ जावसी ॥१९॥
काया अमर न कोय, थिर माया थोड़ी रहै ।
इणमें वाताँ दोय, नामा कामा, नोपला ॥२०॥
सम्मन रोवै कूँणकूँ, हँसै स कूँण विचार ।
गया स आवणका नहीं, रह्या स जावणहार ॥२१॥
हरीदास, लीजै नहीं, कंचन बदलै काच ।
जो कुछ गया स जाण दे, तूँ रहतासूँ राच ॥२२॥
माया मेरे रामकी, धरणीधरकी देह ।
पूँजी साहूकारकी, जस कोई कर लेह ॥२३॥ ॥५१॥

५—पश्चात्ताप

रात गमाई सोयकर, दिवस गमायो खाय ।
हीरा जलम अमोल था, कोडी बदले जाय ॥ १ ॥

१७—पिंड—शरीर । पुन—पुण्य । पड़ै—नष्ट होता है । परलै—प्रलयमें भी । सुकृत—धर्म, पुण्य ।

१८—गरव्यो—गर्वमें भर गया । वार—देरी ।

१९—माया—सम्पत्ति । जावसी—जावेगा ।

२०—थिर इ०—सम्पत्ति थोड़े ही समय तक स्थिर रहती है । इणमें इ०—इसमें तो दो ही बातें सारकी हैं—नाम कर लेना और कर्त्तव्य कर लेना ।

२१—कूँणकूँ—किसलिये । कूँण विचार—क्या विचार करके । गया—जो चले गये । स—सो, वे । रह्या—जो पीछे रह गये हैं ।

२२—रहताँ—जो बच गये हैं । राच—प्रेम कर, संतोष कर ।

५—पश्चात्ताप

१—जलम—जन्म । बदले—बदलेमें ।

दादू, पछतावा रह्या, सम्या न ठाहर लाय ।
अरथ न आया रामके, ओ तन यूँही जाय ॥ २ ॥

दादू, जैसा नाम था, तैसा लीया नाँय ।
काती करस्याँ खेत ज्यूँ हौंस रही मन माँय ॥ ३ ॥

सुमरणका साँसा रह्या, पछतावा मन माँय ।
दादू, मीठा राम-रस सगला पीया नाँय ॥ ४ ॥

तुलसी, या संसारमें सर्‌यो न अेको काम ।
दुबधामें दोनूँ गया माया मिली न राम ॥ ५ ॥

धीरम, धरिया ही रह्या का-पुरसाँका माल ।
सुकरित-सोदा कर गया, जे साँईका लाल ॥ ६ ॥

हरीदास, संकट पड़्या, सगा न दीसै कोय ।
राम सगा सो परहर्‌या, कुसल कठाँसूँ होय ॥ ७ ॥६२॥

६—हरिभक्ति

साँई, तेरी यादमें जिन तन कीया खाख ।
सोनो वाकी रूबरू है चूल्हेकी राख ॥ १ ॥

साँई, टेढो अंखियाँ, वरी खलक तमाम ।
दुकियक झोला महरका, लक्खूँ करै सलाम ॥ २ ॥

२—यूँही—योंही, व्यर्थ ।

३—काती इ०—कार्त्तिक मासमें खेत जोतनेसे । हौंस—इच्छा ।

४—सगला—सारा । पीया—पिया ।

५—सर्‌यो—पूरा हुआ । दुबधा—द्विविधा, अनिश्चय ।

६—धीरम—कविका नाम । कापुरस—कायर, नीच । सुकरित-सोदा—पुण्योंका सौदा । साँईका लाल—परमात्माके प्यारे ।

७—पड़्या—आ पड़ा । सगा—बन्धु, सहायक । परहर्‌या—भुला दिया छोड़ दिया । कठाँसूँ—कहाँसे ।

६—हरिभक्ति

१—खाख—खाक । सोनो इ०—उसकी चूल्हेकी राख भी वास्तवमें सोना है

२—साँई—हे स्वामिन्, यदि तुम्हारी आँखें थोड़ी भी टेढ़ी हों तो सारा संसार शत्रु हो जाता है । दुकियक—थोड़ा-सा । महर—दया ।

कय सवरी चौका दिया, कय हर पूछी जात ।
प्रीत पुरातन जाणकर फल पाया रुघनाथ ॥ ३ ॥
जलके न्हाये, परसरा, पतित न पावन होय ।
पावन हुवे हर-नांवसूँ साध-वेद कह सोय ॥ ४ ॥
मूँदूँ जाका सरवणा, फोड़ूँ जाका नैण ।
काटूँ-वाढूँ जीभड़ी, हर विन उचरै वैण ॥ ५ ॥
जाके हिरदे हर वसै, हर-भगतांसूँ प्यास ।
खोजी छानी क्यूँ रहै कसतूरीकी वास ॥ ६ ॥
झूठा मांणक-मोतिया, झूठी जगमग जोत ।
झूठा सब आभूखणा, सांचि पियाजिरी पोत ॥ ७ ॥
झूठा पाट-पटंवरा, झूठा दिखणी चीर ।
सांचि पियाजिरी गूदड़ी, निरमल रहै सरीर ॥ ८ ॥
छप्पन भोग वहाय दे, उण भोगनमें दाग ।
लूण-अलूणो ही भलो अपणे पियाजिरो साग ॥ ९ ॥
छैल विराणो लाखको, अपणे काज न होइ ।
ताके संग सिधारतां भलो न कहसी कोइ ॥१०॥
देख विराणे निवाणकूँ क्यूँ उपजावै खीज ।
कालर अपणो ही भलो, जामें निपजै चीज ॥११॥

३—सवरी—शवरी, भीलनी । हर—भगवान । पुरातन—पुरानी । फल पाया—(जूठे) फल खाये । रुघनाथ—श्रीराम ।

५—सरवणा—कान । जाका—उसके । वैण—वचन ।

६—खोजी—खोजनेपर । छानी—छिपी ।

७—पियाजी—प्रियतम, परमात्मा । पोत—माला ।

८—दिखणी चीर—दक्षिणका बहुमूल्य वस्त्र ।

९—लूण-अलूणो—नमक हो चाहे न हो ।

१०—विराणो—परायो । सिधारतां—जानेसे ।

११—निवांण—उपजाऊ जमीन । क्यूँ इ०—क्यों खिजाता है ? कालर—जो उपजाऊ न हो ऐसी जमीन । निपज—पैदा होती है ।

भगति-भाव भादू नदी सभी उठी घहराय।
सलता सोई जाणिये, जेठ मास ठहराय ॥१२॥

वादल-वादल वीजली, अैसें घट-घट राम।
मूरख मरम न जाणियो, पायो नाम न ठाम ॥१३॥

लाल-लाल सब ही कहै, सबके पल्ले लाल।
गाँठ खोल परखै नहीं, ज्यांसूँ फिरै कँगाल ॥१४॥

कसतूरी कुंडलि बसै, मृग ढूँढै वन माँय।
अैसें घट-घट राम है, दुनिया देखै नाँय ॥१५॥

सो साँई तनमें वसै, ज्यों फूलनमें वास।
कसतूरीरे मिरग ज्यों, फिर-फिर सूँघै घास ॥१६॥

दिल माँही दीदार है, दूर गयाँ कछु नाँय।
परसा, भरम न भूलियै, पति पोढ्या पुर माँय ॥१७॥

दूर कह्यांसूँ दूर है, नेड़ा तिणसूँ नाँय।
नेड़ा तिणसूँ, परसरा, जो खोजै दिल माँय ॥१८॥

ना घर भला, न वन भला, जहाँ नहीं निज नाम।
दादू, उनमन मन रहै, भला त सोई ठाम ॥१९॥

भँवरा लुबधी वासका, मोहै नाद कुरंग।
दादूका मन रामसूं, दीपक-जोत पतंग ॥२०॥

श्रवणा राच्या नादसूँ, नैणा राच्या रूप।
जिभ्या राची स्वादसूँ, दादू, अेक अनूप ॥२१॥

१२—भादू-नदी—भादोंकी नदी, अैसी नदी जो वर्षामें उमड़ पड़े पर बादमें सूख जाय। सलता—नदी।

१५—कुण्डलि—नाभिमें।

१७—दीदार—दर्शन। पति—परमात्मा रूपी प्रियतम। पोढ्या—सोये हैं।

१८—नेड़ा—निकट।

१९—निज—अर्थात् परमात्माका। उनमन—परमात्माके विरहमें व्याकुल।

२०—लुबधी—लोभी। वास—सुगन्ध।

२१—श्रवणा—कान। राच्या—अनुरक्त हुअे। जिभ्या—जीभ।

सुन्न सरोवर, हँस मन, मोती आप अनंत।
दादू, चुग-चुग चाँचभर, यूँ जन जीवै संत ॥२२॥८४॥

७—ईश्वर-विरह

मन चित चात्रँग ज्यूँ रटै, पिव-पिव लागी प्यास।
दादू, दरसण कारणे पुरवौ मेरी आस ॥ १ ॥

विरहिण कुरलै कुंज ज्यूँ, निस दिन तड़फत जाय।
राम सनेही कारणें, रोवत रैण विहाय ॥ २ ॥

दादू, इण संसारमें मुझ-सा दुखी न कोय।
पीव मिलणके कारणे मैं सर भरिया रोय ॥ ३ ॥

विरही जन जीवै नहीं, कोटं कहै समझाय।
दादू, गहला हो रहै, तड़फ-तड़फ मर जाय ॥ ४ ॥

देख्याँका अचरज नहीं, अणदेख्याँका होय।
देख्याँ ऊपर दिल नहीं, अणदेख्याँकूँ रोय ॥ ५ ॥

सबद तुमारा ऊजला, चिड़िया क्यों कारी।
तुँही-तुँही निसदिन करूँ, विरहाकी मारी ॥ ६ ॥६०॥

८—परमात्माको भरोसा

दिया सिराणे ठीकरा, रह्या नचींता सोय।
धीरम, आसा अलखकी, ताकी होड न होय ॥ १ ॥

२२—आप अनन्त—स्वयं परमात्मा। चाँच—चोंच।

७—ईश्वर-विरह

१—चात्रँग—चातक। कारणे—लिये। पुरवौ—पूरी करो।

२—कुरलै—करुण शब्द करती है। कुंज—क्रौंच। रैण—रात। विहाय—बीतती है।

४—कोट—करोड़ों। गहला—पागल।

५—अणदेख्याँका—नहीं देखे हुएका।

६—ऊजला—उजला। तुँ ही-तुँ ही—(१) तूही है तूही है (२) ऐसकी नामक चिड़ियाकी बोली।

८—परमात्माका भरोसा

१—सिराणे—सरहाने। नचींता—निश्चित होकर। धीरम—कविका नाम। अलख—परमात्मा। होड—होड़, बराबरी।

सुख मानै तो सुक्ख है, दुख मानै तो दुक्ख।
सच्चा सुखिया सोय है, दुख मानै ना सुक्ख॥ २॥
रिजक न पल्ले बाँधता, पंछी औ दरवेस।
जिनका तकिया रब्ब है, तिनके रिजक हमेस॥ ३॥
साँसा मत कर, मूरखा, सिरपर है साँई।
जो कुछ लिख्या लिलाटमें, भेजेगा याँई॥ ४॥
साँसा मत कर, मूरखा, सिरपर है किरतार।
वोही सारे जगतका साँसा मेटणहार॥ ५॥
जण-जणरो मुख जोय जाचक भटकै जगतमें।
सबरो दाता सोय, उणसूँ ही पूरा पड़ै॥ ६॥
कीड़ीने कणको, मणको भोजन मैंगलाँ।
करता जण-जणको, भेजै जुगमें भैरिया॥ ७॥
खग इण साकरखोरके संग न साकर गूण।
सब दिन पूरै साँइया चाँच दई सो चूण॥ ८॥
कोण किसीको देत है, देत करम झकझोर।
उलझै-सुलझै आपही धजा पवनके जोर॥ ९॥६९॥

३—रिजक—निर्वाहके साधन, धन-दौलत। दरवेस—फकीर, साधु। तकिया—सहारा। रब्ब—परमात्मा।

४—साँसा—सोच-फिक्र। मूरखा—हे मूर्ख। याँही—यहीं।

६—सोय—वही परमात्मा। उणसूँ ही—उसीसे।

७—कीड़ीने—चींटीके लिये। मणको—अेक मनभर। मैंगलाँ—हाथियोंके लिये। करता इ०—जन-जनका कर्त्ता अर्थात् परमेश्वर। जुग—जग।

८—खग इ०—इस शक्करखोरे पक्षीके साथ शक्करका बर्त्तन कभी नहीं रहता फिर भी परमात्मा सदा उसे शक्कर खानेको देता है। जो चोंच देता है सो चून भी देता है; जिसने मुँह दिया है वह खानेको भी देगा।

९—धजा—ध्वजा, झंडी। करम—कर्म।

९—साधु

साधू संत कर बैठ ज्या', साधू वो ही ठीक ।
वाको साधू मत कहो, घर-घर माँगै भीख ॥ १ ॥
माया देख्याँ मन खुसी, मुलक पसारै हाथ ।
हरीदास, तूँ मत करथे वाँ चोराँको साथ ॥ २ ॥
लांबा तिलक लगाय, फटक धजा उठती फिरै ।
खोटो दाणो खाय कींया तिरसी, केलिया ॥ ३ ॥
साधू वही सराहिये, दुखै दुखावै नाँय ।
फल-फूलन छेड़ै नहीं रहै बगीचे माँय ॥ ४ ॥
बहता पाणी निरमला, बँध्या गदेला होय ।
साधू जन रमता भला, दाग न लागै कोय ॥ ५ ॥
साँईसूँ साँचा रहो, बंदाँसूँ सतभाव ।
भावैं लांबा केस रख, भावैं घोट मुँडाव ॥ ६ ॥
साधू माई-बाप है साधू भाई-बन्द ।
साध मिलावै रामकूँ, काटै जमका फन्द ॥ ७ ॥१०६॥

१०—भगवानकी महिमा

धरती सब कागद करूँ, कलम करूँ वणराय ।
सात समँद स्याही करूँ, हरि-गुण लिख्या न जाय ॥ १ ॥

९—साधु

१—'बैठ ज्या'—बैठ जाता है ।

२—खुसी—प्रसन्न । मुलक—मुसकुराकर । तू मत इ०—ऐसे लोग साधु नहीं, चोर हैं, उन चोरोंका साथ तू कभी मत करना ।

५—गदेला—मैला, गँदला । रमता—घूमते ही ।

६—बंदा—मनुष्य । भावैं—चाहे ।

१०—भगवानकी महिमा

१—वणराय—वन-राजि, जंगल । समँद—समुद्र ।

सुख मानै तो सुक्ख है, दुख मानै तो दुक्ख ।
सच्चा सुखिया सोय है, दुख मानै ना सुक्ख ॥ २ ॥
रिजक न पल्ले बाँधता, पंछी औ दरवेस ।
जिनका तकिया रब्ब है, तिनके रिजक हमेस ॥ ३ ॥
साँसा मत कर, मूरखा, सिरपर है साँई ।
जो कुछ लिख्या लिलाटमें, भेजेगा याँई ॥ ४ ॥
साँसा मत कर, मूरखा, सिरपर है किरतार ।
वोही सारे जगतका साँसा मेटणहार ॥ ५ ॥
जण-जणरो मुख जोय जाचक भटकै जगतमें ।
सबरो दाता सोय, उणसूँ ही पूरा पड़ै ॥ ६ ॥
कीड़ीने कणको, मणको भोजन मैंगलाँ ।
करता जण-जणको, भेजै जुगमें भैरिया ॥ ७ ॥
खग इण साकरखोरके संग न साकर गूण ।
सब दिन पूरै साँइया चाँच दई सो चूण ॥ ८ ॥
कोण किसीको देत है, देत करम झकझोर ।
उलझै-सुलझै आपही धजा पवनके जोर ॥ ९ ॥६६॥

३—रिजक—निर्वाहके साधन, धन-दौलत । दरवेस—फकीर, साधु तकिया—सहारा । रब्ब—परमात्मा ।

४—साँसा—सोच-फिक्र । मूरखा—हे मूर्ख । याँही—यहीं ।

६—सोय—वही परमात्मा । उणसूँ ही—उसीसे ।

७—कीड़ीने—चींटीके लिअे । मणको—अेक मनभर । मैंगलाँ—हाथियों लिअे । करता इ०—जन-जनका कर्त्ता अर्थात् परमेश्वर । जुग—जग ।

८—खग इ०—इस शक्करखोरे पक्षीके साथ शक्करका बर्त्तन कभी नहीं रहता फिर भी परमात्मा सदा उसे शक्कर खानेको देता है । जो चोंच देता है स चून भी देता है; जिसने मुँह दिया है वह खानेको भी देगा ।

९—धजा—ध्वजा, झंडी । करम—कर्म ।

१—वर्षा-संबंधी

परभाते मेह डंबरा, दोपारांह तपंत।
रात्यूँ तारा निरमळा, चेला, करो गळंत ॥ १ ॥
परभाते मेह डंबरा, सांझै सीला वाव।
डंक कहै, सुण भड्डली, काळां-तणा सभाव ॥ २ ॥
दिन-ऊगां गह डंबरा, आथण झीणी वाळ।
सहदे कहै रे भिडला, अै अहनाणां काळ ॥ ३ ॥
दिन-ऊगांरी चीतरी, सिझ्यारा गडमेळ।
रात्यूँ तारा निरमळा, अै काळांरा खेल ॥ ४ ॥
ऊगंतेरो माछलो, आथमतेरो भोग।
डंक कहै सुण भड्डली, नदियां चढसी गोग ॥ ५ ॥
कळस पाणी गरम है, चिड़ियां न्हावै धूर।
ले अंडा चींटी चढै, तो वरखा भरपूर ॥ ६ ॥

१—वर्षा-सम्बन्धी

१—सवेरे मेहका आडम्बर हो, दुपहरको गर्मी पड़े और रातमें तारे निकल आवें तो, हे शिष्य, यहां से चले चलो (क्योंकि अकाल पड़ेगा)।

२—सवेरे मेहका आडम्बर हो और संध्याको ठण्डी चले तो डंक कहता है कि हे भड्डली, ये अकालके लक्षण हैं।

३—सवेरे मेहका आडम्बर हो और संध्याको बादल कम हो जायँ तो ये अकाल के लक्षण हैं।

४—सवेरे छितराये हुओ बादल हों और संध्याको गहरी घटा हो और रातको आकाश साफ होकर तारे निकल आवें—ये अकालके खेल हैं।

५—यदि सवेरे इंद्रधनुष और सूर्यास्त के समय लाल किरणें दिखाई दें तो नदियों में अवश्य बाढ़ आयेगी।

६—कलसेमें पानी गर्म हो, चिड़ियां धूलमें नहावें और चींटियां अंडे लेकर ऊपर चढ़ें तो (जान लो कि) भरपूर वर्षा होगी।

धुर असाढ, पड़वा दिवस, जे अंबर गरजंत।
छत्री-छत्री जूझवै, निहचैं काल पडंत ॥ ७ ॥
आसाढ़ांरी सूद नम, घण वादल, घण वीज।
नाला कोठा खोल दो, राखो हल ने वीज ॥ ८ ॥
सावण पहले पाखमें जे तिथ ऊणी काय।
कइयक-कइयक देसमें टावर वेचैं माय ॥ ९ ॥
सावण पहली पंचमी मेह न मांडै आल।
पीव, पधारो मालवे, हूँ जाऊँ मोसाल ॥१०॥
सावण पहली पंचमी, ना वादल ना वीज।
हल फाड़ो ईंधण करो, ऊभा चावो वीज ॥११॥
कातक सुद अेकादसी, वादल विजली होय।
तो असाढमें, भड्डुली, वरखा चोखी होय ॥१२॥
मिगसर वद आठम घटा वीज समेती जोय।
तो सावण वरसै भलो, साख सवाई होय ॥१३॥
पोस अँधेरी सत्तमी जो पाणी नहिं देय।
तो अदरा वरसै सही, जल-थल अेक करेय ॥१४॥

७—आसाढ़ कृष्णा प्रतिपदाको आकाशमें बादल गरजे तो क्षत्रियोंमें युद्ध होता है और निश्चय ही अकाल पड़ता है।

८—आसाढ़ सुदि नवमीको खूब बादल और खूब बिजली हो तो नाले-कोठे खोल दो और हल तथा बीज पासमें रखो (वर्षा होगी)।

९—सावण वदीमें यदि कोई तिथि घट जाय तो किसी-किसी देशमें ऐसा भारी अकाल पड़ता है कि माताएँ बालकों तकको बेचने लगती हैं।

१०—सावन यदि पंचमीको मेह न घिरे तो हे पति तुम मालवे जाओ और मैं पीहर जाती हूँ (अकाल पड़ेगा)।

१३—समेती—सहित। साख—फसल।

१४—अँधेरी—कृष्णपक्षकी। आदरा—आर्द्रा नक्षत्रके समय (आषाढ़में)

पोस मास दसमी दिवस बादल़ चमकै बीज।
तो बरसै भर भादवो, सार्धां, खेलो तीज ॥१५॥
माघ सुदी पूनम दिवस, चाँद निरमल़ो जोय।
पसु बेचो, कण संग्रहो, काल़ हल़ाहल़ होय ॥१६॥
होल़ी सुक्र-सनीचरी, मंगलवारी होय।
चाक चहोड़े मेदनी, बिरल़ा जीवै कोय ॥१७॥
जेठ वदी दसमी दिवस जो सनिवासर होय।
पाणी होय न धरण पर, बिरल़ा जीवै कोय ॥१८॥
आखा रोहण बायरी, राखी स्रवण न होय।
पोही मूल़ न होय, तो महि डोलंती जोय ॥१९॥
मूल़ गल़यो, रोहण गल़ी, आद्रा बाजी वाय।
हाल़ी, बेचो बल़दिया, खेती लाभ नसाय ॥२०॥
दो असाढ, दो भादवा, दो असोजके मांय।
सोना-चांदी बेचके, नाज बिसावो, साय ॥२१॥
सुकरवारी बादलो रहै सनीचर छाय।
डंक कहै, सुण भड्डुली, बिन बरस्यां नहिं जाय ॥२२॥

१५—खेलो तीज—आनंद मनावो।

१६—कण—नाज। संग्रहो—जमा करो। हळाहळ काळ—भयंकर अकाल।

१७—चाक इ०—पृथ्वीकी हालत भयंकर होगी।

१९—आखातीजको रोहिणी नक्षत्र न हो, राखी पूनम (रक्षाबंधन) को श्रवण नक्षत्र न हो और पौषकी पूर्णिमाको मूल नक्षत्र न हो तो पृथ्वीके लोगोंको भटकते देख लो (अकाल पड़ता है)।

२०—मूल नक्षत्रमें पानी बरसे और रोहिणीमें पानी बरसे तथा आर्द्रा नक्षत्रमें हवा चले तो हे किसान बैल बेच दो, खेतीमें लाभ नहीं होगा।

२१—जिस बरस दो आषाढ़ या दो भाद्रपद या दो आसोज हों उस बरस अकाल पड़ेगा और अन्न सोने-चांदीसे भी महँगा हो जायगा इसलिये हे महाजनो, सोना-चांदी छोड़कर अनाज इकट्ठा करो।

२२—शुक्रका (बरसा) बादल शनिवार तक रहे तो वह बिना बरसे नहीं जाता।

जाड़ेमें सूतो भलो, बैठो दरखा काल।
गरमीमें ऊभो भलो, चोखो करै सुकाल॥२३॥

मीन सनीचर, करक गुरु, जो तुल मंगल होय।
गेहूँ—गोरस—गोरड़ी, विरला विलसै कोय॥२४॥

मंगल-रथ आगे हुवै, लारे हुवै ज भाण।
आरंभ्या यूँही रहै, ठाली रहै निवाण॥२५॥

मिरगा वाव न वाजिया, रोहण तपी न जेठ।
क्योंने बांधो झूँपड़ा, बैठो वड़ला हेठ॥२६॥

जेठ, दीत, भादूँ सनी, माह ज मंगल होय।
परजा भटकै अन विना, विरला जीवै कोय॥२७॥

रात्यूँ बोलै कागला, दिनमें बोलै स्याल।
कै नगरी राजा मरै, (कै) पड़ै अचूको काल॥२८॥

२३—द्वितीयाका चंद्रमा जाड़ेमें सोया अच्छा, वर्षामें बैठा अच्छा और गर्मीमें खड़ा अच्छा, इससे सुकाल होता है।

२४—यदि शनि मीन राशिमें, गुरु कर्कमें और मंगल तुलामें हो तो कोई विरला आदमीही गेहूँ, दूध-दही और प्रियतमाका आनंद उठाता है (वर्षा न होनेसे गेहूँ नहीं पैदा होगा, न दूध-दही मिलेगा)।

२५—मंगलका रथ आगे हो और सूर्य (का रथ) पीछे हो अर्थात् मंगल सूर्यसे आगेवाली राशिमें हो तो आरंभ किये काम पूरे नहीं होते और जलाशय खाली रह जाते हैं (वर्षा नहीं होती)।

२६—मृगशिर नक्षत्रमें (सूर्यके होते समय) हवा नहीं चली और रोहिणी नक्षत्रमें (सूर्यके रहते समय) गर्मी नहीं पड़ी तो फिर क्यों झोंपड़ा बनाते हो ... ही बैठे रहो (वर्षा नहीं होगी)।

... इतवार, भादोंमें पांच शनि और माघमें पांच मंगल ... भटकती है और कोई विरले ही जीते हैं।

...में कौवे बोलें और दिनमें सियार बोलें तो या तो नगरीका ... अवश्य ही अकाल पड़ता है।

२—कूट व पहेलियाँ

(१)

दधसुत कामण कर लिये करण हंस-प्रतिपाल।
बीच चकोरन चुग लिये, कारण कोण, जमाल ? ॥ १ ॥
अरुणी राची करन पै, ताको झिलकत कोर।
पावकके भोरे भये, तातें चुगत चकोर ॥ २ ॥
गोरी दधसुत कर गह्यो, हंसनके प्रतिपाल।
चड़े न हंस, चकोर चुगै, कारण कोण जमाल ? ॥ ३ ॥
कामण जावक-रँग रच्यो, दमकत मुकता-कोर।
इम हंसा मोती तजे, इम चुग लिये चकोर ॥ ४ ॥
वायस, राह, भुजंग, हर, लिखत त्रिया ततकाल।
लिख-लिख मेटे सुंदरी, कारण कोण, जमाल ? ॥ ५ ॥
मालन बेचत कंवलकूँ, वदन छिपावत बाल।
लाज न काहूको करै, कारण कोण, जमाल ? ॥ ६ ॥

२—कूट व पहेलियाँ

१—दधसुत—मोती। कामिनीने हंसोंको चुगानेके लिये मोती हाथमें लिये पर हंस उड़कर पास नहीं आते हैं और चकोर उन्हें चुग लेते हैं। हे जमाल, इसका क्या कारण है ?

२—अरुणी इ०—हाथोंमें मेहँदी लगी हुई थी, उसका प्रतिबिम्ब मोतियोंपर पड़ रहा था इससे अङ्गारोंके धोखेमें पड़कर चकोर मोतियोंको चुग रहे हैं।

४—कामण—कामिनीके हाथमें मेहँदी लगी थी जिसका रंग मोतियोंमें प्रतिबिम्बित हो रहा था इसलिये उन्हें अङ्गार समझकर हंसोंने छोड़ दिया और चकोरोंने चुग लिया।

५—राह—राहु।

६—मालन—मालिनी। कँवलकूँ—कमलको। वदन—अपना मुख।

नोट—मुखचन्द्रके सामने होनेसे कमल मुरझा जाते हैं इसलिये मालिनी अपना मुख छिपाती है।

वणिआणी रहसी नहीं, रहसी सूथारी ।
सोनारी जासी परी, (कह) भावज कूँभारी ॥२४॥५२॥

(३)

अजा सहेली ता रिपू ता जननो भरतार ।
ताके सुतके मीतको सिवरूँ वारंवार ॥ १ ॥
ससिको सुत घटमें नहीं, मोह-रिपुको नहीं लेस ।
भवन-जीव-सुतसों हियो, काह करूँ उपदेस ? ॥ २ ॥
सम्मण, वै फल कूण-सा, जो पाके कड़वास ।
काचा लगैं सुवावणा, गहुर करै मिठास ? ॥ ३ ॥
सिवसुत तो साँरग भयो, तो सुत दीनी पूठ ।
भयँग डसण रिपु वोलियो, जद मैं आई ऊठ ? ॥ ४ ॥
साँरगने साँरग गह्यो, सारँग बोल्यो आय ।
जो साँरग साँरग कहै, सारँग मुखसूँ जाय ॥ ५ ॥

२४—वणिआणी इ०—इस दोहेके वणिआणी, सूथारी, सोनारी और कूँभारी शब्द श्लिष्ट हैं। वणिआणी—(१) बनियाइन (२) भावी बन आई है। सूथारी—(१) खथारिन (२) वह तेरी। सोनारी—(१) सुनारिन (२) वह स्त्री यानी सीता। कूँभारी—(१) कुम्हारिन (२) कुंभकर्णकी।

कूँभारी भावज अर्थात् कुंभकर्णकी भाभी मंदोदरी रावणसे कहती है कि अब वणिआणी अर्थात् भावी बन आई है, वह नारी अर्थात् सीता रहेगी नहीं, जो कुछ रहेगी वही तेरी है (सू—सो, थारी—तेरी) और सो नारी (सो—वह नारी—स्त्री) अर्थात् सीता चली जायगी।

१—अजा इ०—बकरीको सहेली भेड़, उसका शत्रु काँटा, उसकी माता पृथ्वी, उसका पति इंद्र, उसका पुत्र अर्जुन, उसके मित्र श्रीकृष्ण।

२—ससिको सुत—बुध, बुद्धि। मोह-रिपु—ज्ञान। हियो—प्रेम।

३—कूण-सा—कौनसे। पाके इ०—पकनेपर कड़वे हो जाते हैं। उत्तर—मनुष्य।

लछमीपतरे कर वस पाँच अंक परवांण ।
पहलो आखर छोडकर दीजै चतर सुजाण ॥ ६ ॥
सिवसुत - माता - नांवरा आखर च्यार सुवंस ।
मध्य वरण दो छोडकर भेजो, सजन, हमेस ॥ ७ ॥
दीपक जलतां जो पड़ै तीन आंक परवांण ।
पहलो आखर छोडकर लाज्यो, चतर सुजाण ॥ ८ ॥
वायस-बीजो नाम, ते आगल़ लक्षो ठवै ।
जे तू हुवै सुजांण, तो तू वहिलो मोकलै ॥ ९ ॥
काजल़-वरणो, अे सखी, मूवो अेक पुरख्ख ।
बालणवाला कोइ नहीं, रोवणवाला लख्ख ॥१०॥
संख सरीखो ऊजलो, गजहस्तीरो दंत ।
इणरो अरथ बतायकर रोटी जीमो, कंत ॥११॥
सीस जटा, पोथी गहै, सेत वसन गल़ मांय ।
जोगी-जंगम है नहीं, बामण-पंडत नांय ॥१२॥
फूल खिलै अंबर थकी, फल़ लागै महराण ।
जलमै माय मुवां पछी, सो तू हमको आण ॥१३॥

६—लक्ष्मीपति—विष्णु । उत्तर—सुदरशनका पहला अक्षर छोड़ दिया तो दरशन हुआ ।

७—सिव इ०—शिवके पुत्रकी माता पारवती, उसके बीचके दो अक्षर छोड़ देनेसे पाती रहा ।

८—दीपक इ०—दीपक जलते समय काजल बनता है उसका पहला अक्षर छोड़ दिया तो जल रहा ।

९—वायस—वायसका दूसरा नाम काग उसके आगे ल़कार लगाया, कागल़ हुआ (कागल़—कागद, चिठ्ठी) । वहिलो इ०—जल्दी भेजना ।

१०—काजल़ वरणो—काजलके रंगका, काला । मूवो—मरा । बाल़ण-वाला—जलानेवाले । लख्ख—लाखों । उत्तर—कौवा ।

१२—उत्तर—लहसुन ।

१३—अंबर थकी—आकाशमें । महराण—समुद्रमें । जलमै इ०—मांके मरनेपर जनमता है । आण—ला दे । उत्तर—मोती ।

जळ जायो, थळ ऊपनो, विन डांडी फ़ण होय।
गाथा राजा भोजकी विरलो वूझै कोय ॥१४॥

जनमी छी जद तीसगज, भर ज्वानीमें च्यार।
मरती विरियां साठ गज, पंडत करो विचार ॥१५॥

वाळपणे बुगलो हुवो, भर जोवन सूवो।
इणरो अरथ बताय अब, किण विध काग हुवो ॥१६॥

गहरो फूल गुलाबरो झुक-झुक झोला खाय।
नहिं माळीके नीपजै, नहिं राजाके जाय ॥१७॥

ना है खाट-खटोलड़ो, ना है जीया-जूण।
राजा, थारे देसमें च्यार पावरो कूण ? ॥१८॥

आकासांमें उड रही, झुक-झुक झोला खाय।
हाड हुवै, पण मांस नहिं पंडित अरथ, वताय ॥१९॥

आठ पहर जळमें रहै, वसै नगरके मांय।
मच्छ, कच्छ, दादर नहीं, इणरो अरथ बताय ॥२०॥

च्यार खुणांरी वावड़ी, पड़ी वजारां मांय।
हाथी-घोड़ा डूबग्या, पिणघट खाली जाय ॥२१॥

रूँख वसै पंछी नहीं, दूध देय नहिं गाय।
तीन नैण संकर नहीं, साजन अरथ वताय ॥२२॥

१४—उत्तर—छाया (प्रातः, दुपहर और संध्या समय)।

१६—सूवो—सुग्गा। उत्तर—अफीम।

१७—उत्तर—सूरज।

१८—उत्तर—सेर (तोल विशेष)।

१९—उत्तर—पतंग।

२०—उत्तर—जल-घड़ी।

२१—खुणांरी—कोनोंकी। पिणघट—पनिहारी। उत्तर—शीशा (दर्पण)।

२२—उत्तर—नारियल।

प्याला भरिया दूधका, ऊँधाँ लीयाँ जात ।
टपको अेक पड़े नहीं, आ अचरजकी बात ॥२३॥

पड़ी पण भागी नहीं, भाग हुया है च्यार ।
विन पाँखाँके उड गई, सुरता करो विचार ॥२४॥

अेक अचूँवो देखियो, सिरपर निकल्या दाँत ।
साजन, अरथ बताय दे, सब जग वाको खात ॥२५॥

केसर भरियो वाटको, पड्यो महलके हेठ ।
लाती तो लाजाँ मरूँ, देखे देवर-जेठ ॥२६॥

वायें कँवले वा खड़ी, सुन्दर किय सिणगार ।
झव-झव झोला खा रही, याको अरथ विचार ॥२७॥

हाल घरे, हल डूँगराँ, बलद गऊरे पेट ।
हाली हींडे पालणे, भाती पूँचो खेत ॥२८॥

घर घोड़ी, पिव मालवे, जीण समंदाँ पार ।
चाँदा चावक ले रह्या, सुरता करो विचार ॥२९॥

नौ गोदी, नौ आँगली, नौ नानेरे जाय ।
मतो करूँ तो और जिणूँ काल पड्याँ के खाय ॥३०॥

पाँच जणा, सो आँगली, सीस पाँच, जी चार ।
चातर चाल्यो चाकरी, सुरता करो विचार ॥३१॥

२३—ऊँधा—उलटे । लीयाँ जात—लिये हुअे जाती है । उत्तर—स्तन ।

२४—भागी—टूटी । उत्तर—रात ।

२५—अचूँवो—अचंभा । उत्तर—अनार ।

२६—वाटको—प्याला । उत्तर—केशरिया रँगकी पगड़ी ।

२७—कँवले—ओर । झोला—झोंके । उत्तर—नथ ।

३०—नौ बच्चे गोदमें है, नौ अँगुली पकड़े (चल रहे) हैं, और नौ ननिहाल रहे हैं । इच्छा करूँ तो और उत्पन्न कर सकती हूँ पर अकाल पड़जाय तो क्या येंगे ? उत्तर—काचरकी बेल ।

३१—पाँच आदमी हैं, सौ अँगुलियाँ हैं, पाँच सिर हैं, पर जीव केवल चार । इस प्रकार चतुर अपनी नौकरीपर जा रहा है । ध्यान लगाकर इसको सोचो ।

उत्तर—चार आदमियोंके कंधेपर उठाया हुआ मृतक ।

(४)

पान सड़ै, घोड़ो अड़ै, विद्या वीसर जाय ।
रोटी जलै अंगारमें, को, चेला, किण दाय ? ॥३२॥

चरखलियो चूँ-चूँ करै, भूण मचड़का खाय ।
गाडो अड़्यो उजाड़में, कहो, चेला, किण दाय ? ॥३३॥

कपड़ो घड़ बैठे नहीं, मूँज मेल नहिं खाय ।
जाट गधो मानै नहीं, कहो, चेला, किण दाय ? ॥३४॥

गाडी पड़ी गवाड़में, पगाँ उभाँणी जाय ।
वेटी बैठी बापके, कहो, चेला, किण दाय ॥३५॥८७॥

३—वैद्यक-संबंधी

दाँतां लूण ज वापरै, भोजन ऊनो खाय ।
डावैं पसवाड़े सुवै, *जिण घर वैद न जाय* ॥ १ ॥

३२—गुरु पूछता है—हे चेले, बताओ क्या कारण है कि पान सड़ता है, घोड़ा अड़ता है, विद्या भूल जाती है और अंगारोंपर रखी रोटी जल जाती है।

चेला सब प्रश्नोंका अेक साथ उत्तर देता है कि गुरुजी, फेरी कोनी (फिराया नहीं; पानोंको उलटपुलट नहीं किया, घोड़ेको फिराया नहीं, विद्याकी आवृत्ति नहीं की, बाटी उलटी नहीं)।

३३—चर्खा चलते समय चूँ-चूँ आवाज करता है कुँवेका भूण मचमचा रहा है और गाड़ी उजाड़में अड़ी पड़ी है।

उत्तर—गुरुजी, वांग्यो कोनी (तेल नहीं दिया)।

३४—कपड़ा फिट नहीं होता, मूँज मेल नहीं खाती, और गधा जाट मानता नहीं।

उत्तर—गुरुजी कूट्यो कोनी (कूटा नहीं)।

३५—गाड़ी चौकमें ही पड़ी है, स्त्री नंगे पैर जाती है, और बेटी बापके घर बैठी है।

उत्तर—गुरुजी, जोड़ी कोनी (जोड़ी नहीं, जोड़ी=(१) बैलोंकी जोड़ी, (२) पैरोंकी जोड़ी यानी जूतियाँ और (३) कन्याकी जोड़ी यानी वर)।

३—वैद्यक-संबंधी

१—जो दांतोंमें नमकका व्यवहार करता है (नमक का मंजन करता है),

हरड़, बहेड़ा, आंवला, घी-सक्करमें खाय ।
हाथी दाबै खाखमें, साठ कोस ले जाय ॥ २ ॥
धात-वधारण,बल-करण, जे, पिय, पूछो मोय ।
दूध समान तिलोकमें ओर न ओखद कोय ॥ ३ ॥ ॥९०॥

४—प्रकीर्णक

अहमद, लड़का पढ़णमें, कह, किन झोंका खाय ।
तन-घटमें विद्या-रतन, भरत हिलाय-हिलाय ॥ १ ॥
जल पीधो जाडेह, पाबासररे पावटे ।
नैनकिये नाडेह जीव न धापै, जेठवा ॥ २ ॥
जगतणकूँ भगतण कहै, कहै चोरकूँ साह ।
चाकरकूँ ठाकर कहै, तीनूँ राह कुराह ॥ ३ ॥

में (ताजा) भोजन खाता है और बांयी करवट सोता है, उसके घर वैद्य कभी नहीं जाता (वह सदा नीरोग रहता है)।

२—जो हरड़, बहेड़ा और आंवला इनको घी और शक्करके साथ खाता है वह इतना शक्तिवाला हो जाता है कि हाथीको बगलमें दबा साठ कोस तक ले जा सकता है ।

३—हे प्रिय, यदि धातुओंकी वृद्धि करनेवाली और बलदायक औषधि मुझे पूछते हो तो दूधके समान दूसरी औषधि तीनों लोकोंमें नहीं है ।

४—प्रकीर्णक

१—अहमद कहता है कि कहो, लड़के पढ़ते समय झोंके क्यों खाते हैं (विद्यार्थी प्रायः सिर हिला-हिलाकर याद किया करते हैं)। फिर कवि उत्तर देता है कि शरीर-रूपी घड़ेमें विद्यारूपी रत्न हिला-हिलाकर भर रहे हैं (ताकि जरासी जगह भी खाली न रह जाय)

२—मानसरोवरके बड़े तालाबमें जल पिया है अतः अब छोटी तलैयासे नहीं भरता ।

३—लोग संसारी स्त्री (वेश्या) को भगतण (भक्तिन, राजस्थानमें वेश्याको भगतिन करते हैं) कहकर पुकारते हैं, जो वास्तवमें चोर है ऐसे बनियेको शाह कहकर पुकारते हैं और गुलामको ठाकुर नामसे संबोधित करते हैं। ऐसा करनेवाले तीनों ही कुराह राहपर जा रहे हैं।

सांझ पड़ी दिन आंथ्यो, चकवी दीनी रोय ।
चल, चकवा, वा देसमें, सांझ कदे नहिं होय ॥ ४ ॥
सांझ पड़ी, दिन आंथ्यो, चकवी भयो वियोग ।
पणियारी यूँ भाखियो, देखो विधना-जोग ॥ ५ ॥
जा, पणियारी, भर घड़ो, कर न पराई वात ।
जिकण तुमारो दिन हरयो, तिकण हमारी रात ॥ ६ ॥
पणघट जातां पण घटं, पणघट वाको नाम ।
कहियो, पण कैसें रहै पणहारणके धाम ! ॥ ७ ॥
पणघट जातां पण घटं, पणघट कहै सब कोय ।
कहियो, पण कैसें घटं, जब पण घट ही होय ? ॥ ८ ॥
मात-पिता सैं वीसरै, बंधू वीसारैह ।
सूरां पूरां वातड़ी, चारण चीतारैह ॥ ९ ॥ ॥६६
॥१२२७

४—संध्या पड़ी, दिन छिप गया । चकवी वियोग-भयसे रो उठी और बोली कि हे चकवे, उस देशमें चलो जहां रात कभी नहीं होती (जीव और भवद्धामकी ओर संकेत) ।

५—६—संध्या पड़ी, दिन अस्त हो गया और चकवीके वियोग हुआ । उसे देखकर अेक पनिहारिन बोली कि विधाताका योग तो देखो । पनिहारिनका कथन सुनकर चकवीने उत्तर दिया कि हे पनिहारिन, तू जा, अपना घड़ा भर, मुझपर क्या दया करती है, अपनी ही ओर देख, जिसने तुम्हारा दिन छीन लिया उसीने हमारी भी रात छीन ली है ।

७—पनघटपर जानेसे पन (प्रतिष्ठा) घटता है, उसका नाम ही पनघट है, तब कहो पनहारिनके घर पन कैसे रह सकता है ?

८—पनघटपर जानेसे पन घटता है, सब कोई उसे पनघट कहते हैं । पर जब पन पहले ही घटा हुआ है तो पनघटपर जानेसे फिर क्या घटेगा ?

९—माता, पिता आदि सब भूल जाते हैं, बंधु भी भूल जाते हैं । पर पूरे शूरवीरोंकी कथाओंको चारण (कविजन) सदा स्मरण कराते हैं ।

(१) विनय

१— भगवानकी स्तुति

१—सिल ऊधरती सारि—अहल्या गौतम ऋषिकी स्त्री थी। ऋषिके शापसे वह शिला हो गई थी। रामचन्द्रजीने अपनी चरण-धूलिका स्पर्श कराकर उसका उद्धार किया था। कथाके लिये तुलसीकृत रामायणका बाल-कांड (दोहा २४२) देखो।

पिताकी आज्ञासे वनमें जाते हुए श्रीराम गंगाके किनारे पहुँचे तो उन्होंने गंगा पार करनेके लिये धीवरसे नाव लानेको कहा पर वह बोला कि महाराज आपके चरणोंका स्पर्श करके पत्थर तक तरकर आदमी बन जाते हैं तो बेचारी लकड़ीकी नाव क्या चीज है और यदि वह तर गई तो फिर मैं अपना पेट क्योंकर पालूँगा। इस प्रसंगका बड़ा ही सुन्दर वर्णन तुलसीदासजीने रामायण, कवितावली आदि में किया है।

सारि—याद करके। भीवर—धीवर। चलण—चरण। देखे—देख-कर। उत—सं० पुत्र, अब यह शब्द अपत्यवाचक प्रत्ययकी भाँति प्रयुक्त होता है।

३—गरुड़—ये कश्यप और विनताके पुत्र तथा विष्णुके वाहन कहे गये हैं। इनकी गति बहुत तेज है। सूर्यका सारथी अरुण इनका छोटा भाई है।

वारण—ग्राहसे ग्रसित गजेंद्रकी रक्षाकी कथा बहुत प्रसिद्ध है। भगवान गजेन्द्रको बचानेके लिये चले तो उन्हें गरुड़की चाल भी धीमी जान पड़ी और उसे छोड़कर पैदल ही दौड़ पड़े।

४—आधख—अध्यक्षता, प्रभुता।

५—त्हारी—आधुनिक रूप थारी=तेरी।

२—गंगाजीकी स्तुति

४—क्रम—सं०, कर्म राजस्थानीमें अक्षरके ऊपरका रेफ प्रायः पूर्व अक्षरके नीचे चला जाता है। अन्य उदाहरण, जैसे—ध्रम (धर्म) ग्रन

(वर्ण) क्रन (कर्ण) द्रप (दर्प) आदि। औसा होनेपर रेफके आगेवाला अक्षर विकल्पसे द्वित्त भी हो जाता है, जैसे—ध्रम, क्रम्म, द्रप्प, व्रन्न आदि।

८—नारायण-पग-नीर इ०—गंगाजी भगवानके चरणोंसे उत्पन्न हुई हैं। जब भगवानने विराट रूप धारण किया था उस समय ब्रह्माजीने उनके चरणोंको पखारकर जलको अपने कमंडलुमें भर लिया था और फिर भगीरथकी तपस्यासे प्रसन्न होकर गंगाको पृथ्वीपर भेजा।

३—करणीजीकी स्तुति

करणी—ये चारणी थीं। इनका जन्म जोधपुर राज्यके सुवाप गाँवमें संवत् १३८७ वि० में और देहान्त १५१ वर्षकी अवस्थामें सं० १५३८ में (अन्य मतानुसार १५९५ चैत्र शुक्ल ९, गुरुवारको*) हुआ था। ये देवीका अवतार मानी जाती हैं और देवीके रूपमें पूजी जाती हैं। इनका मंदिर बीकानेर राज्यमें देशणोक नामक स्थानमें है। बीकानेरके संस्थापक राव बीकाजीकी इन्होंने बड़ी सहायता की थी। करणीजीके अन्य नाम—करणी करनल, कणियाँणी, महियासघू, आई, धावलियाली, देशणोकपत, लोवड़ियाल आदि हैं।

१—वराह इ०—पुराणोंके अनुसार भगवान कच्छप-रूपसे समस्त ब्रह्मांडको धारण किये हुओ हैं; कच्छपके ऊपर वराह है और वराहके ऊपर शेषनाग तथा शेषनागके ऊपर पृथ्वी है।

---

(२) नीति

१—मनस्वी पुरुष

४—कंथा करक न छोड़िये इ०—मिलाओ, सामन्य नीतिमें २२ और २३ नंबरके दूहे।

---

*यथा—पनरैसै पिच्याणवे चैत सकल गुर नम्मं।
देवी सागण देहसूँ पूगा जोत परम्म ॥

८—सौंहाँ केहा सथ्थ इ०—मिलाओ,—

सिहनके लहँड़े नहीं, हंसनकी नहि पाँत ।
लालनकी नहि बोरियाँ, साधु न चलैं जमात ॥

२—महापुरुष

१—वड़ा वड़ाई ना करै इ०—मिलाओ,—

Saith a false diamond, 'what a jem am I!'
I doubt its value from its boastful cry.

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

३—सज्जन

२—तरवर फदे न फल भखे इ०—मिलाओ,—

पिबंति नद्यः स्वयमेव नांभः स्वयं न खादंति फलानि वृक्षाः ।
नादंति सस्यं खलु शारिवाहाः परोपकाराय सतां विभूतयः ॥१॥
छायावंतो गतव्यालाः स्वारोहाः फलदायिनः ।
मार्गद्रुमा महांतश् च परेषामेव भूतये ॥२॥

३—तखत विराज्या जानरा इ०—मिलाओ,—

गुरु गोविंद दोनूँ खड़े, काके लागूँ पाँय ।
बलिहारी गुरु आप, जिण गोविंद दियो बताय ॥

—कबीर

४—सच्चा मित्र

१—हर अरजनरे हेत इ०—महाभारतके युद्धमें भगवान श्रीकृष्णने अर्जुनके सारथीका काम किया था ।

६—सतसंगति

२—मलयागर मंझार इ०—मिलाओ,—

किं तेन हेम-गिरिणा रजताद्रिणा वा ।
यत्राश्रिताश् च तरवस् तरवस् त एव ॥

मन्यामहे :मलयमेव यदाऽऽश्रयेण ।
कंकोल-निम्ब-कुटजान्यपि चंदनानि ॥

—नीतिशतक

१०—कुमित्र

१—मूरख मित्र न कीजिये इ०—मूर्ख मित्रसे बुद्धिमान शत्रु अच्छा। इसपर अेक कथा है कि, अेक राजाके पास अेक बंदर था जो बड़ी भक्तिके साथ राजाकी सेवा करता था। अेक दिन राजा सो रहा था और बंदर पंखा लेकर हवा कर रहा था। थोड़ी देरमें अेक मक्खी आकर राजाके वक्षस्थल पर बैठ गई। बंदरके उड़ानेपर वह उड़ गई पर तुरन्त ही फिर आकर बैठ गई। बंदर बारबार उड़ानेका प्रयत्न करता और मक्खी उड़-उड़कर फिर बैठजाती। तब मूर्ख बंदरने क्रोधमें भरकर पास पड़े हुअे खड्गको उठा लिया और मक्खीको मारनेके लिअे राजाकी छातीपर दे मारा। मक्खी तो तुरन्त उड़ गई पर राजाके दो टुकड़े हो गये।

पंचतंत्रमें इसी भावका यह श्लोक है—

पंडितोऽपि वरं शत्रुर्, न मूर्खो हितकारकः ।
वानरेण हतो राजा, विप्राश् चौरेण रक्षिताः ॥

१२—अविवेकी पुरुष

३—मच्छ गलागल—मात्स्य न्याय। इसकी परिभाषा संस्कृत ग्रंथोंमें इस प्रकार लिखी है—

(१) प्रबल-निर्बल-विरोधे सबलेन निर्बल-बाध-विवक्षायां तु मात्स्यन्यायावतारः। यथा प्रबला मत्स्या निर्बलांस्तान् नाशयंति तथाऽराजकेऽमुकप्रदेशे प्रबला जना निर्बलान् नरान् नाशयंति—इति न्यायार्थः।

—रघुनाथ वर्मा

(२) परस्परामिपतया जगतो भिन्नवर्त्मनः ।
दंडाभावे परिध्वंसी मात्स्यो न्यायः प्रवर्त्तते ॥
—कामंदकीय

(३) अत्र बलवंतो दुर्बलान् हिंस्युरिति मत्स्यन्यायः अेवं स्याद्—इत्युक्तम् ।
—कुल्लूक-कृत मनुस्मृति-टीका

१३—मूर्ख

७—मुसे सिंघ इ०—इसपर अेक कहानी है कि अेक सिंह किसी वनमें बहुत-से पशुओंको मारा करता था। तब सब पशुओंने मिलकर उससे कहा कि आप हम सबका संहार न करें, हम आपके भोजनके लिअे अेक पशु प्रतिदिन भेज दिया करेंगे। सिंहने इस शर्तको स्वीकार कर लिया और प्रतिदिन अेक पशु उसके पास आने लगा। अैसा होते-होते किसी दिन अेक खरगोशकी बारी आई। सिंहसे सब पशुओंका पिंड किस प्रकार छूटे यह सोचता हुआ वह सिंहके भोजनके समयको टालकर संध्या समय सिंहके पास पहुँचा। उसका छोटा शरीर, और फिर उसे देरसे आया, देखकर सिंह बड़ा क्रुद्ध हुआ। खरगोशने नम्रताके साथ कहा कि महाराज, मेरा छोटा शरीर देखकर पशुओंने मेरे साथ चार और खरगोश भेजे थे पर मार्गमें हमें अेक दूसरा सिंह मिला जिसने हम सबको रोक लिया और हमसे पूछा कि तुम कहाँ जाते हो? मैंने सब हाल सुनाया तो वह क्रोधमें भरकर बोला कि वनका राजा तो मैं हूँ, सब पशुओंको मेरे पास बारी-बारीसे अेक पशु भेजना चाहिअे, यदि तुम्हारा सिंह वनका राजा बनना चाहे तो वह आकर मुझसे युद्ध कर ले। यह कहकर उसने उन चार खरगोशोंको रख लिया और मुझे आपके पास भेजा है।

खरगोशकी बातें सुनकर सिंह क्रोधमें भरकर बोला कि चल, बता, वह सिंह कहाँ है? पहले उसको मारकर फिर तुझे खाऊँगा। तब खरगोश सिंहको अेक कुअेंके पास ले गया और उसके भीतर देखकर कहने लगा कि

महाराज, वह दूसरा सिंह तो आपके डरके मारे इस कुएँ में छिप गया है। सिंहने कुएँके भीतर देखा तो उसे अपनी परछाईं दिखाई दी। उसे ही दूसरा सिंह समझकर वह कुएँमें कूद पड़ा और डूबकर मर गया। इस प्रकार खरगोशने अपनी बुद्धिसे दुष्ट सिंहको मारकर सबके प्राण बचाये।

१५—कंजूस

१—बावन अक्खर—वर्णमालामें ५२ अक्षर होते हैं अतः सारे वर्णोंमें। यह कंजूसकी उक्ति है।

२०—प्रारब्ध

२—वेह—यह शब्द 'विधि' से बना है और इसका अर्थ विधाता है। विधाता स्त्री मानी जाती है और उसे वेह-माता भी कहते हैं।

२७—अन्योक्तियाँ

२—माली ग्रीषम मांय इ०—कविराज बाँकीदासजी राजस्थानमें बहुत प्रसिद्ध कवि हो चुके हैं। वे जोधपुर-महाराज मानसिंहजीके यहाँ रहते थे। प्रसिद्धि प्राप्त करनेके पूर्व, अपनी सामान्य स्थितिके समय, वे रायपुरके ठाकुर अर्जुनसिंहके आश्रयमें रहते थे। अेक दिन कविराजजी महाराज मानसिंहजीके साथ हाथीपर चढ़े जा रहे थे उस समय उक्त ठाकुरने उनसे पूछा कि क्या आपको उन पुराने गाँवोंकी स्मृति बनी हुई है जहाँ आप पहले आते-जाते थे। इसपर कविराजजीने यह दूहा कहा।

८—सूवा सेमल देखकर इ०—सेमलके पेड़में गहरे लाल रंगका फूलोंका गुच्छा आता है और उनमें फलकी जगह डोडी लगती है। गहरे रंगसे लुब्ध होकर सुग्गा आशा लगाये रहता है कि पकनेपर बड़ा मीठा और रसीला फल मिलेगा पर डोडोके फूटनेपर उसमें रसीले गूदेकी जगह रुई निकलती है। मिलाओ—

सेमर सुवना सेइया दुइ ढेंढ़ीकी आस।
ढेंढ़ी फूट चटाक दे, सुवना चला निरास॥

—कबीर

२८—सामान्य नीति

२२—कलह करये मत इ०—इस संबन्धमें यह कथा प्रसिद्ध है। मारवाड़के राव चूँडाका मोहिलोंसे वैर था। अपने अंतिम दिनोंमें उसने मोहिलवंशकी अेक राजकुमारी किशोरकँवरीसे विवाह किया। रानीकी नई अवस्थापर मुग्ध होकर रावने राज्यका सारा प्रबंध रानीके हाथमें सौंप दिया। उसने घोड़ोंको जो घी दिया जाता था उसे बंद करवा दिया। यह हाल सुनकर रावजी ने यह दूहा कहा। तब रानीने आगेवाले दूहेसे इसका उत्तर दिया। रावजी चुप हो रहे। घोड़ोंका घी बंद करके रानीने सरदारोंको भोजनके साथ जो घी मिलता था उसको भी घटाना शुरू किया और अपनी कारगुजारी जतानेको रावजीसे कहा कि जहाँ ३३० मन घी प्रतिदिन उठता था वहाँ मैं केवल १ मन घी खर्च करती हूँ। रावजी ने बाहर आकर देखा तो तबेलेमें घोड़े किसी कामके न रह गये थे और सरदार अपने-अपने घर चले गये थे। तब रावजीने दुखी होकर कहा कि मोहिलाणी, तूने मेरा राज्य खोया और मुझे मारा।

३४—वाँका रहज्यो वालमा इ०—मिलाओ,—

टेढ़ जानि संका सब काहू। बक्र चंद्रमहि ग्रसै न राहू ॥ तुलसीदास।

सीधे ऊँटपर दो चढे, यह कहावत राजस्थानमें प्रसिद्ध है।

११६—भलि मरवणरी वात इ०—यहाँ ढोला-मारवणीरी वात नामक कथासे अभिप्राय है। पहले ग्वालियरके पास नरवरमें कछवाहे राजपूतोंका राज्य था। उनमें संवत् १००० के आस-पास नल नामक राजा हुआ जिसका पुत्र ढोला उपनाम साल्हकुमार था। इसका विवाह पूगलके पँवार राजा पिंगलकी कन्या मारवणीसे हुआ था। ढोला-मारूकी वातमें इन्हींकी कहानी है। यह कथा राजस्थानमें बहुत प्रसिद्ध थी और है। इसके अनेक दूहे अब भी लोगोंकी जबानपर मिलते हैं। यह कथा इस प्रकार है—

नरवरमें नल नामका राजा था। उसके ढोला नामका कुँवर था। अेक बार पूगलमें अकाल पड़ा तो पूगलका राजा पिंगल सपरिवार नलके

यहाँ आकर रहा। पिंगलकी रानीको ढोला बहुत पसंद आया और उसके हठसे राजाने अपनी डेढ़ वर्षकी कन्या मारवणी का विवाह ढोलाके साथ कर दिया। ढोलाकी अवस्था उस समय तीन वर्ष की थी। इसके पीछे पिंगल अपने देशको लौट गया। पूगल नरवरसे बहुत दूर था और मार्ग खतरनाक था इसलिअे ढोलेके बड़े होनेपर नलने उसका दूसरा विवाह मालवाकी राजकुमारी मालवणीके साथ कर दिया और ढोलाको पहले विवाहकी बात मालूम नहीं हुई। इधर मारवणी बड़ी हुई तो पिंगलने ढोलाके पास कई समाचार भेजे पर मालवणीने अैसा प्रबंध कर रखा था कि पूगलकी ओरसे आनेवाला कोई आदमी ढोलेके पास न पहुँचने पावे और ढोलेको मारवणीका हाल न मालूम हो। अंतमें पिंगलने कई ढाढियोंको नरवर भेजा। वे मालवणीके आदमियोंसे छिपकर ढोलाके महलके नीचे जा टिके और रातभर मांड रागके विरहोद्दीपक सुरमें मारवणीके संदेशको गाते रहे। ढोलेने यह सब सुना और उसके मनमें व्याकुलता उत्पन्न हुई। प्रातःकाल उसने ढाढियोंको अपने पास बुलाया और उनसे मारवणीका सब हाल उसे मालूम हुआ।

मारवणीका हाल सुनकर ढोला मारवणीके प्रति आकृष्ट हुआ और उसे लिवा लानेके लिअे पूगल चलनेका विचार करने लगा। पर मालवणी भी उससे बहुत प्रेम करती थी और उसके विरहको नहीं सह सकती थी। इसलिअे उसने ढोलाको रोकनेके बहुत उपाय किये—और लगभग सालभर ढोला रुका भी रहा—पर अन्तमें वह अपना तेज ऊँट लेकर चल ही दिया।

मार्गमें अनेक विघ्नोंके उपरांत ढोला पूगल पहुँचा। वहाँ बड़ा हर्ष हुआ। पन्द्रह दिन वहाँ रहकर वह मारवणीके साथ नरवरको चला। मार्गमें सोती हुई मारवणीको अेक पीणा साँप डस गया। ढोला उसके साथ जलनेको तय्यार हुआ पर इतनेमें अेक योगी आ निकला और उसने मारवणीको जिला दिया।

ऊमर नामका अेक सरदार था। वह मारवणीको हथियाना चाहता था। उसने देखा कि ढोला अकेला जा रहा है तो उसने मारवणीको

छीन लेनेका निश्चय किया। फौज लेकर वह भी चल पड़ा। मार्गमें ढोला मिला। ऊमरने बड़ी मनुहारें करके ढोलाको ऊँटसे उतार लिया और सब अेक जगहपर बैठकर शराब पीने लगे। ऊमरके साथ अेक गायिका थी जो मारवणीके पीहरकी रहनेवाली थी। उसे ऊमरका षड्यंत्र मालूम हो गया और उसने मारवणीको सचेत कर दिया। मारवणी ऊँटके पास बैठी थी, उसने तुरन्त ऊँटको छड़ीसे मारा। जब ऊँट दौड़ा तो ढोला उसे पकड़नेको पीछे-पीछे दौड़ा। मारवणी भी दौड़कर पास पहुँच गई और उसने सारा हाल ढोलासे कह दिया। तब दोनों तुरन्त ऊँटपर सवार होकर चल दिये। जल्दीमें ऊँटका पैर बँधा ही रह गया। फिर भी ऊँट इतना तेज गया कि ऊमर ढोलाका पीछा करनेमें असमर्थ रहा। इसके पश्चात् दोनों सकुशल नरवर लौट आये। *इस विषयका ढोला-मारू नामक दूहात्मक लोक-गीत राजस्थानमें बहुत प्रसिद्ध है।

१४१ बालक रीझै भूत—शुद्ध पाठ बाकल रीझै भूत है जिसका अर्थ यह है कि भूत बाकलोंसे रीझता है। सिझाये हुअे कोरे अन्नको बाकल कहते हैं।

---

(३) वीर

१—सामान्य

१—मिलाओ आगे 'विशेष वीर' में दूहा नं० १,७६ और ९०।

२—राजपूतोंकी ३६ शाखाअें कही गई हैं। छतीस शाखाअें कौन-कौन हैं इसपर मतभेद है। कुछ नाम ये हैं—(१) गुहिलोत (२) राठोड़ (३) कछवाहा (४) तँवर (५) चोहाण (६) सोलंकी या चालुक्य (७) पँवार

---

* इस काव्यका अेक सुन्दर संस्करण काशीकी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुआ है जिसमें कथाके विविध रूपान्तर, पाठांतर, भाषान्तर, टिप्पणी, शब्दकोष, व्याकरण आदिका समावेश किया गया है

(८) पड़िहार (६) चावड़ा (१०) यादव (११) मोहिल (१२) दहिया (१३) जोइया (१) डोड (१५) झाला (१५) वाला (१६) गोड़ इत्यादि।

२२—धवला उत्तम जातिका वैल होता है। धवले बैलके सम्बन्धमें राजस्थानके सुप्रसिद्ध कविराज वाँकीदासने धवल-बत्तीसी नामक रचना दूहोंमें की है जो नागरी-प्रचारिणी-सभासे प्रकाशित बाँकीदास-ग्रन्थावलीके प्रथम भागमें प्रकाशित हो चुकी है।

२८—'मैं परणंती परखियो' से आरम्भ होनेवाले कुछ और दूहे हास्य और व्यंग विभागमें देखिये (नम्बर ४६—४७)।

३३—'सखी हमीणे कंथरी' से आरम्भ होनेवाले कुछ और दूहे हास्य और व्यंग विभागमें देखिये (नम्बर ४८—४६)।

४१—मिलाओ—

भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि महारा कन्तु।
लज्जेजं तु वयंसिअहु जइ भग्गा घर अेन्तु॥

—हेमचन्द्रके प्राकृत-व्याकरणमें उद्धृत।

३—विशेष वीर

१—महाराणा प्रतापसिंह (१५९७-१६५३)—ये सुप्रसिद्ध स्वतंत्रताके पुजारी महाराणा मेवाड़के राणा साँगाके पोते तथा राणा उदयसिंहके बेटे थे। इनका जन्म सं० १५९७ की जेठ सुदी ३ को हुआ। यद्यपि ये पाटवी कुमार थे तो भी राणा उदयसिंहने छोटी राणी भटियाणीपर विशेष प्रेम होनेके कारण उसके बेटे जगमलको राज्यका उत्तराधिकारी बनाया। परन्तु मेवाड़के आपत्ति-कालको देखते हुअे वह राजा होनेके सर्वथा अयोग्य था इसलिअे मेवाड़के सरदारोंने प्रतापसिंहको ही गद्दीपर बिठाया।

उस समय दिल्लीका बादशाह अकबर था। अेक-अेक करके राजस्थानके सभी हिन्दू राजाओंने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी पर मेवाड़के राणाने अैसा नहीं किया। अकबरने मेवाड़को अधीन करनेका बहुत प्रयत्न किया पर स्वतंत्रताके अमर पुजारी राणा प्रतापने उसकी इच्छा पूरी न होने

ी। भयंकर विपत्तियोंको सहन करते हुअे उन्होंने अपनी स्वतंत्रता कायम रखी। विशेष जाननेके लिअे नीचे लिखी पुस्तकें देखनी चाहिअे—

१—महामहोपाध्याय रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा कृत राजपूतानेका इतिहास।

२—इन्हीं ओझाजीका उदयपुरका इतिहास, जिल्द पहली।

३—जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द कृत प्रताप-प्रतिज्ञा नाटक।

४—हनुमन्तसिंह रघुवंशी कृत मेवाड़का इतिहास।

५—टाड कृत राजस्थानका इतिहास, खण्ड पहला।

६—राधाकृष्णदास कृत राजस्थानकेशरी या महाराणा प्रताप नाटक।

७—श्रीराम शर्मा कृत महाराणा प्रतापसिंह (अंग्रेजी).

६६—बादल (१२५९ के लगभग)—यह और इसका चाचा गोरा मेवाड़के सरदार थे। उस समय मेवाड़में राणा रतनसेन राज्य करता था। उसके पद्मणी नामकी राणी थी जो बहुत सुन्दर थी। अलाउद्दीनने उसे प्राप्त करनेके लिअे चित्तोड़पर आक्रमण किया पर उसे जीत न सका। अन्तमें उसने छलसे काम निकालनेका विचार किया और राणासे कहला भेजा कि मुझे केवल अेक बार पद्मणीको दिखा दीजिये, फिर मैं लौट जाऊँगा। राणाने यह बात मान ली। बादशाह भीतर बुलाया गया और वहां उसका बड़ा आदर-सत्कार हुआ। दर्पणमें पद्मणीके मुखकी परछाईं देखनेके बाद वह लौट गया। राणा उसे पहुँचानेके लिअे साथ गया। किलेसे बाहर निकलते ही बादशाहने राणाको पकड़ लिया और कैद करके साथ ले गया तथा कहलवा भेजा कि पद्मणी मिलनेपर ही राणाको छोड़ूंगा। इसपर पद्मणी गोरा और बादलके पास गई और उसने उनसे सहायता मांगी। उन्होंने कपटका जवाब कपटसे देनेका निश्चय किया और बादशाहसे कहलवा भेजा कि हम पद्मणीको ला रहे हैं, उसके साथमें पांच सौ डोलियोंमें उसकी पांच सौ सखियां भी आवेंगी। फिर उन्होंने डोलियोंके अन्दर सशस्त्र योद्धा बिठा दिये और कहारोंकी जगह भी योद्धाओंको ही रखा। पद्मणीकी डोलीमें अेक

लुहारको विठा दिया। इस प्रकार वादशाहके पास पहुँचे और उससे कहलाया कि राणी पहले अपने पतिसे मिलना चाहती है। वादशाहकी आज्ञा मिलनेपर पदमणीकी डोली राजाके पास गई और भीतर वैठे लुहारने राजाके वन्धन काट दिये और राजा घोड़ेपर सवार होकर वादलके साथ चित्तोड़को चल दिया। पीछे गोरा और वादशाहकी सेनामें भयंकर युद्ध हुआ जिसमें गोरा काम आया। उस समय वादलकी अवस्था वारह वरसकी थी।

६६—महाराणा अमरसिंह (१६१६-१६७६)—ये महाराणा प्रतापके पुत्र थे। प्रतापकी मृत्युके उपरान्त उन्होंने स्वतंत्रताका युद्ध जारी रखा। उस समय दिल्लीका वादशाह जहांगीर था और उसने प्रण कर लिया था कि मेवाड़को चाहे जिन शर्तोंपर, जैसे हो वैसे, अवश्य ही अपने अधीन करूँगा। उसने अपने वेटे शाहजादे खुर्रमको, जो आगे चलकर शाहजहांके नामसे वादशाह हुआ, सेनापति बनाकर भेजा। महाराणाने यथाशक्ति वादशाही सेनाका सामना किया पर निरन्तर युद्धसे उनके वड़े-वड़े सरदार मारे गये और अैसी स्थिति उत्पन्न होगई कि राणाको या तो देश छोड़कर भागना पड़े या कैद होना पड़े। राजपूत सेना भी निरन्तर युद्धसे थक गई थी और सरदार लोग सन्धि कर लेना चाहते थे। उधर वादशाह भी उदार शर्तोंके साथ सन्धि करनेको तय्यार था क्योंकि उसे तो नामके लिअे मेवाड़को अधीन करना करना था। महाराणाने सरदारोंकी इच्छा तथा परिस्थितिको देखकर आन्तरिक इच्छाके विरुद्ध सन्धिके लिअे स्वीकृति दे दी। पर इससे उनके चित्तको बड़ा दुःख हुआ और वे राज्यकार्य युवराजको सौं[illegible] अकान्तवास करने लगे। उनने प्रतापसे भी अधिक लड़ाइयाँ लड़ीं[illegible] प्रतापसे कष्ट भी कम नहीं उठाये पर वादशाहसे सन्धि कर[illegible] उनका वैसा नाम न[illegible]।

करना चाहता था पर चारुमती यह नहीं चाहती थी। उसने राजसिंहको पत्र लिखा जिसपर राजसिंह ससैन्य किशनगढ़ पहुँचे और चारुमतीसे विवाह कर उसे मेवाड़ ले आये। बादशाह इससे बड़ा क्रुद्ध हुआ। जब बादशाहने जजिया कर जारी किया तो राणाने उसका विरोध किया। जोधपुरके बालक महाराज अजीतसिंहको बादशाहने पकड़ना चाहा तो उसने राणाके यहाँ शरण ली। इन सब कारणोंसे बादशाहने राजसिंहपर चढ़ाई की। बहुत दिनों तक लड़ाई होती रही पर महाराणाकी कोई विशेष हानि नहीं हुई। इस युद्धमें राठोड़ोंने भी पूरी सहायता दी थी। संवत् १६३७ में महाराणा कुम्भलगढ़ जाते हुओ ओड़ा नामक गाँवमें ठहरे जहाँ किसीने भोजनमें विष मिला दिया जिससे उनका देहान्त हुआ (आगे अैतिहासिक विभागमें दूहा नं० १६ देखिये)।

७४—राव जगमाल—ये मारवाड़के राठोड़ राव मल्लिनाथ (१३८८—१४५६) के ज्येष्ठ पुत्र थे और उनके बाद गद्दीपर बैठे। इन्होंने माँडूके सुलतानको युद्धमें हराकर उसकी गींदोली नामक रूपवती राजकुमारीको छीन लिया था। युद्धमें सुलतान जगमालकी मारसे घबराकर महलोंमें भाग गया था। उस समयका यह दूहा है।

७५—राव अमरसिंह—ये जोधपुर-महाराज गजसिंहके बड़े बेटे थे। उद्धत स्वभावके होनेके कारण पिताने इनको त्याज्य पुत्र करके (सं० १६९०) छोटे बेटे जसवंतसिंहको जोधपुरका राज दिया। जोधपुरसे निकाले जानेपर वे बादशाह शाहजहाँके यहाँ गये। वहाँ बादशाहने उनको अपनी चाकरीमें रखकर रावके खिताबके साथ नागोरका पट्टा लिख दिया (१६९४)। नागोरकी सीमा बीकानेर-राज्यसे मिली हुई थी। किसी समय अेक मतीरे की बेल नागोरकी हदमें उगी पर बढ़कर बीकानेरकी हदमें चली गई। जब उसमें फल लगा तो नागोर और बीकानेरके आदमियोंमें झगड़ा हो गया। नागोरवाले कहते थे कि फल हमारा है क्योंकि बेल हमारी उगी है। बीकानेरवाले कहते थे कि फल हमारा है

लगा है। विवाद बढ़ते-बढ़ते युद्धकी नौवत पहुँची। बीकानेरवाले विजयी हुअे और फल ले गये। अमरसिंहने अपनी सेनाकी हारकी बात सुनी तो नागोरमें अपने प्रधानको लिखा कि नई सेना भेजकर मतीरा छीन लाओ। यह बात बादशाह तक पहुँची। उसने अमरसिंहको सेना वापिस बुला लेनेके लिअे कहा और मामला निपटानेके लिअे अपना अेक अमीन भेज दिया। पर अमरसिंहने इस आज्ञाको माननेसे इनकार कर दिया। शाही दरवारके नियमके मुताबिक प्रत्येक उमरावको वारीसे शाही ड्योढ़ीपर पहरा देना पड़ता था। जब अमरसिंहकी वारी आई तो उसने इनकार कर दिया। इससे बादशाहने क्रुद्ध होकर उनपर सात लाखका जुर्माना कर दिया। दूसरे दिन अमरसिंह दरवारमें आये तो वख्शी सलावतखाँने जुर्माना दाखिल करनेकी बात भरे दरवारमें कही। मतीरेवाले मामलेमें भी सलावतखाँने बीकानेरका पक्ष लिया था। वातोंही वातोंमें वात बढ़ गई और वख्शीने अमरसिंहको गँवार कहकर पुकारा। इसके पहले ही अमरसिंहने अपनी कटार वख्शीके पेटमें भोंक दी। बादशाहकी ओर भी कटार फेंकी पर वह खंभेसे टकरा गई। बादशाह महलमें चला गया। अमरसिंह लड़ते-भिड़ते बुर्जपर चढ़ गये और वहाँसे आमखासके मैदानमें घोड़े सहित कूद पड़े। घोड़ा तो तुरंत मर गया पर अमरसिंह सकुशल घर पहुँच गये। पीछे उनके साले अर्जुन गौड़ने धोखेसे उन्हें मार डाला।

७६—दुर्गादास राठोड़ (१६३८—१७७५)—ये राजस्थानमें अेक प्रख्यात वीर हो चुके हैं। ये जोधपुरके महाराज जसवंतसिंहके सरदारोंमें से थे। इनके पिताका नाम आसकरण था। ये बचपनसे ही बड़े तेजस्वी थे। बचपनमें अेक वार ये अपने गाँवके बाहर टहल रहे थे। उसी समय राज्य के ऊँटोंका अेक टोला वहाँसे निकला। चरवाहेकी बेखबरीसे ऊँ

बुरा-भला कहने लगा। इसपर दुर्गादासने तलवार निकालकर चरवाहेका सिर धड़से उड़ा दिया। महाराज जसवंतसिंहजीके पास तक यह मामला पहुँचा पर उन्होंने दुर्गादासको कुछ नहीं कहा, उलटे उनकी प्रशंसा करते हुअे उन्हें अपनी चाकरीमें रख लिया।

अेक समय दुर्गादासजी महाराजके साथ शिकारमें गये। वहाँ शिकार से लौटनेपर वे अेक वृक्षके नीचे सो गये। थोड़ी देरमें उनके मुँहपर धूप आ पहुँची। यह देख स्वयं महाराजने अपने वस्त्रसे उनपर छाया कर दी। अन्य सरदारोंके यह कहनेपर कि आपको स्वयं अैसा करना उचित नहीं महाराजने कहा कि आज मैं इसपर इसलिअे छाया कर रहा हूँ कि यह किसी दिन सारे मारवाड़पर छाया करेगा। महाराजका यह कथन आगे चलकर पूरा-पूरा सच हुआ।

बादशाह औरंगजेब जसवंतसिंहसे प्रसन्न न था। उसने उन्हें काबुलमें नियुक्त किया। वहाँ उनकी मृत्यु होनेपर औरंगजेबने जोधपुरका राज्य खालसे कर लिया। जब उसे मालूम हुआ कि महाराजकी रानियाँ गर्भवती हैं तो उन्हें दिल्ली बुलाया। मार्गमें रानियोंके दो पुत्र हुअे। उनके दिल्ली पहुँचनेपर औरंगजेबने राजकुमारोंको अपने हाथमें करना चाहा और अपने अेक सेनापतिको राठोड़ोंके डेरेपर भेजा। दुर्गादासने राजकुमारों को पहले ही निकाल दिया। बहुत-से राजपूत शाही सेनाके साथ लड़कर काम आये। दुर्गादासने बचे हुअे आदमियोंके साथ मारवाड़का रास्ता लिया और फिर राजकुमार अजीतसिंहके साथ उदयपुरके महाराणा राजसिंहके पास पहुँचे। राणाने उन्हें सहायता दी और अजीतसिंहको पहाड़ोंमें रखा। इसके बाद शाही सेनाके साथ बहुत समय तक युद्ध होता रहा। अंतमें बादशाहको संधि करनी पड़ी। अजीतसिंहने धीरे-धीरे सारा मारवाड़ अपने हाथमें कर लिया।

अंत समयमें अजीतसिंहके बर्तावसे रुष्ट होकर दुर्गादास मेवाड़ चले आये जहाँ राणाने उनको अेक अच्छी जागीर देकर अपने यहाँ रख लिया।

उनका देहांत उज्जैनमें सिप्रा नदीके किनारे अस्सी वर्षकी अवस्थामें संवत् १७७५ में हुआ। अजीतसिंहके व्यवहार और दुर्गादासके मरणके संबंधमें यह आधा दूहा प्रसिद्ध है—

इण घर याही रीत, दुरगो सिपरा दागियो।

७६—वल्लसिंह—जोधपुरमें चांपावत खांपके गोपालदास नामक सरदार थे। उनके आठ पुत्र थे और आठों ही परम प्रसिद्ध वीर और साके करनेवाले हुअे। उनके नामों और कामोंका उल्लेख इस छप्पयमें हैं—

माँडव राघवदास[१] पिता जुध जामल पेठो
हाथी[२] जंगल हेत सेल वाहयूँ सहेठो
हरियो[३] वागड खेत साथ सवलाँ दल भंजे
खेतसिंह[४] अजमेर दलाँ ऊथल रण गंजे
आगरे वलू[५], मोपत[६] दिली[७], वीठल[८] उज्जीणीवराँ
कुल माँहि वडा साका किया रण सामँत गोपालराँ

इनमें वल्लजी नागोरके महाराज अमरसिंहजीके दरबारमें रहते थे। रावजीके कुछ पालतू मेंढ़े थे और जब वे चरने जाते थे तब ताजीमी सरदार बारी-बारीसे उनके साथ जाते थे। जब वल्लसिंहकी बारी आई तो उनने कहा कि यह हमारा काम नहीं। इसपर रावजीने व्यंगसे कहा कि ये तो मेंढ़े क्या चरावेंगे, पतसाही घड़ मोड़ेंगे (शाही सेनाको परास्त करेंगे)। इसपर वल्लजी रुष्ट होकर वहांसे चले आये। कुछ दिनों तक बीकानेर और उदयपुरमें रहकर बादशाहकी चाकरीमें चले गये। जब सलाबतखांके झगड़ेमें राव अमरसिंह मारे गये तो उनकी रानियोंने सती होना चाहा पर रावजीकी मृतदेह कैसे मिले यह समस्या थी। अंतमें उनने वल्लजीकी शरण ली। वल्लजी वीरतासे शाही सेनाको परास्त करके शरीर को ले आये और रानियां सती हुईं। इस प्रकार रावजीके कहे हुअे व्यंग को उनने सत्य कर दिखाया। इस लड़ाईमें वल्लजी काम आये।

८१—केसरीसिंह—जोधपुरके महाराज अभयसिंहके समयमें जयपुरके महाराज सवाई जयसिंहने जोधपुरपर आक्रमण किया और विना लड़े ही उन्हें विजय प्राप्त हुई। लौटते समय बखरी-ठाकुर केसरीसिंह कहीं जाते हुअे देख पड़े तो जयपुरकी सेनामेंसे किसीने गर्वसे कहा कि देखो हमारी तोपें मारवाड़से भरी-की-भरी वापिस जाती हैं। केसरीसिंहको यह बात चुभ गई और महाराज जयसिंहके समझानेपर भी उनने युद्ध छेड़ दिया और वीरतासे लड़ते हुअे काम आये। इस प्रकार जयपुरवालोंको विना युद्धके विजयी नहीं होने दिया।

८२—कीरतसिंह सोढा—ये जोधपुरके महाराज मानसिंहजीके सरदार थे। संवत् १८६२ में ठाकुर सवाईसिंहके उपद्रवपर जब विद्रोहियोंने जोधपुरके किलेको घेर लिया तो महाराजने कहा कि अब हल्ला रुकना असंभव है। यह सुनकर कीरतसिंहने प्रण किया कि मैं अभी रोकता हूँ। यह कहकर जूझ पड़े और वीरतासे लड़कर काम आये। विद्रोहियोंका हल्ला हट गया।

८३—भींवसिंह—धनजी और भींवजी ये दोनों पाली-ठाकुर मुकनसिंह-जीके यहां रहते थे। धनजी गहलोत और भींवजी चोहाण थे तथा संबंधमें मामा-भानजा होते थे। अेक बार जोधपुर जाते समय मुकनसिंह इनकी ढाणीके पास ठहरे। वहां इनका रेवड़ चर रहा था। मुकनदासके आदमी उसमेंसे दो भेड़ोंको उठा लाये और उन्हें काट डाला। धनजी-भींवजीको यह हाल मालूम हुआ तो वे दोनों आये और पेड़पर टँगे दोनों जानवरों को ले गये और जाते समय कहा कि राजपूतोंके जानवर खाना सहज नहीं होता। मुकनसिंहको अपने आदमियोंका यह दुर्व्यवहार मालूम हुआ तो उनने माफी मांगी और धनजी-भींवजीकी तेजस्विताको देखकर उन्हें आपने पास रखना चाहा। उनने धनजी-भींवजीसे कहा कि मैं आपसे अेक याचना करता हूँ, क्या आप देंगे ? धनजी-भींवजीने राजपूती उदारता से कहा कि अवश्य। तब मुकनसिंहने उनका अपने साथ रहना मांग लिया।

फिर दोनोंको साथ लेकर वे जोधपुर पहुँचे। वहाँ छिपियाके ठाकुर प्रतापसिंह मुकनसिंहसे वैर रखते थे। अेक दिन राजमहलमें महाराजके पास जाते हुअे मुकनसिंहको अेकांतमें निश्शस्त्र देखकर प्रतापसिंहने उनको मार डाला और आप पोलमें छिप गये। धनजी और भींवजीने यह बात सुनी तो तुरंत वहाँ पोलमें पहुँचे और दरवाजा तोड़कर प्रतापसिंहको मार डाला फिर राज्यकी सेनासे लड़ते हुअे काम आये।

८७—राव कांधल—ये मारवाड़के राव रिड़मलके पुत्र तथा राव जोधाके छोटे भाई थे। कहते हैं कि अेक बार रावके दरबारमें कांधलजी बैठे थे। थोड़ी देरमें वीकाजी आये और कांधलजीसे धीरे-धीरे बात करने लगे। राव जोधाजीने हँसीमें कहा कि आज काका-भतीजा अैसे सलाह कर रहे हैं, मानो कोई नया राज्य स्थापित करेंगे। वीकाजी तो कुछ नहीं बोले पर कांधलजीने अरज की कि महाराजकी कृपा रही तो यह कोई बड़ी बात नहीं। फिर कई सरदारों तथा सेनाके साथ वीकाजीको लेकर चल पड़े और जोधपुर राज्यके उत्तरमें स्थित बागड़ देशपर अधिकार करके वहाँ नया राज्य कायम किया। धीरे-धीरे भटनेर और हिस्सार तकका प्रदेश अधिकारमें कर लिया। इस प्रकार अपनी वीरतासे रावजीने अेक बड़ा राज्य खड़ा कर दिया। सं० १५४६ में वे हिस्सारके सूबेदार सारंगखांके साथ युद्धमें वीरगतिको प्राप्त हुअे। उनकी मृत्युका हाल सुनकर जोधाजी और वीकाजीकी संम्मिलित सेनाओंने सारंगखांपर आक्रमण किया और उसे युद्धमें मार डाला।

८८—पदमसिंह—ये वीकानेरके महाराज करणसिंहके छोटे पुत्र थे। असाधारण वीर थे। इनने अेक बार युद्धमें औरंगजेबकी प्राणरक्षा की थी। इनमें इतना बल था कि अेक बार किसी नवाबके हाथीको हौदे सहित पकड़कर अपने पिताके हाथीके बराबर, जिसपर खुद भी सवार थे, खींचकर भिड़ा दिया। उनका खड्ग अभी तक राज्यके शास्त्रागारमें रखा है। वह इतना भारी है कि अेक आदमी उसे दोनों हाथोंसे भी नहीं उठा सकता। वे उसे अेक हाथसे चलाते थे

अेक बार औरंगाबादमें उनके छोटे भाई मोहनसिंहके अेक पालतु हरिणको, जो फिर रहा था, कोतवालने पकड़ लिया। मोहनसिंह माँगने गये तो कोतवालसे झगड़ा हो गया और कोतवालने उनका सिर काट लिया। पद्मसिंहको यह मालूम हुआ तो वे तुरंत वहाँ पहुँचे। कोतवाल प्राण बचानेके लिअे दरबारमें जा बैठा। पद्मसिंह भी दरबारमें जा पहुँचे और वहीं भरे दरबारमें कोतवालका सिर उड़ा दिया।

८९—कुसलसिंह—ये भूकरकाके ठाकुर थे जो राज श्रीबीकानेरका अेक ठिकाना है। किसी कारणसे बीकानेर-महाराज जोरावरसिंहजी उनसे अप्रसन्न हो गये थे इसलिअे वे अपने ठिकानेमें ही रहते थे। जब जोधपुर-महाराज अभयसिंहजीने बीकानेरपर आक्रमण किया तो पुरोहितजीके कहनेसे महाराजने उनको खास रुक्का भेजकर सहायताके लिअे बुलवाया। स्वामीपर संकट पड़ा देख, अपने अपमानपर ध्यान न देकर, वे तुरंत ५००० सवार व पैदल सेना लेकर चल पड़े। उनकी वीरताके कारण अभयसिंह को विफलमनोरथ होकर लौटना पड़ा।

९०—महाराज मानसिंह—ये आमेर (वर्त्तमान जयपुर-राज्य) के महाराज थे और सम्राट अकबरके अेक प्रधान सेनापति थे। बादशाहके दरबारमें इनका बहुत ऊँचा ओहदा था। बंगाल और काबुल जैसे दूर-दूर के प्रांतोंको जीतकर इन्होंने मुगल-साम्राज्यमें मिलाया। ये बड़े भारी दानी भी थे। हरिनाथ कविने इनकी प्रशंसामें दो दूहे पढ़कर अेक लाख रुपये दानमें पाये—

बलि बोई कीरति लता, करण करी द्वै पात।
सींची मान महीपने जब देखी कुँमलात ॥ १ ॥
जाति जाति ते गुन अधिक, सुन्यो न कबहूँ कान।
सेतु बाँधि रघुबर तरे, हेला दे नृप मान ॥ २ ॥

कहते हैं कि जब इनकी सेनाने अटक नदीको पार करके म्लेच्छ भूमि में जानेके लिअे अनिच्छा प्रकट की तो इनने नीचे लिखा दूहा पढ़कर उसे अटक पार जानेको राजी किया—

सबै भूम गोपालकी तामें अटक कहा।
जाके मनमें अटक है, सोई अटक रहा॥

इनका विस्तृत इतिहास जयपुर-निवासी पुरोहित हरिनारायणजी बी० अे० द्वारा लिखित और बिड़ला-कालेज-मेगेजीन (पिलाणी) के चौथे तथा पाँचवे भागमें प्रकाशित 'महाराज मानसिंह प्रथम' नामक निबंधमें देखिये।

६१—महाराज जयसिंह—(१६६८-१७२४) ये आमेरके महाराज बड़े प्रतापी हुअे। ये शाहजहाँ और औरंगजेबके सेनापति थे। शिवाजीको समझा-बुझाकर इन्होंने औरंगजेबके दरबारमें भेजा था। हिंदीके सुप्रसिद्ध कवि बिहारीलाल इन्हींके दरबारमें रहते थे। उन्हें प्रत्येक दूहेके लिअे अेक अशर्फी इनाममें मिलती थी।

६२—राव शेखाजी—ये राजस्थानमें अेक सुप्रसिद्ध वीर हो चुके हैं। जयपुर राज्यका पश्चिमोत्तर विभाग इन्हींके नामसे शेखावाटी कहलाता है। आमेर-जयपुरके महाराज उदैकरणके पुत्र बालाजी हुअे जिनके पुत्र मोकलजीके पुत्र राव शेखाजी थे। मोकलजीके बड़ी उम्र तक कोई पुत्र नहीं हुआ जिससे वे बड़े खिन्न थे। अंतमें शेख बुरहान नामक अेक फकीरके आशीर्वादसे उन्हें पुत्रप्राप्ति हुई जिसका नाम शेखा रखा गया। यह शेख तैमूरके साथ आया था और इसलामके प्रचारार्थ यहीं रह गया था। उसकी कब्र शेखावत राजपूतोंका तीर्थस्थान है। उसी कारणसे शेखावत सुअरका माँस नहीं खाते तथा हलालका माँस खा लेते हैं। बच्चेके गलेमें बदी तथा झंडेमें नीला निशान भी उसी फकीरकी यादगार हैं। शेखाजीने आमेरके महाराज चंद्रसेनको पराजित कर अपनेको स्वतंत्र बना लिया। गौड़ राजपूतोंसे उनने ११ लड़ाइयाँ लड़ीं और अन्तमें उनकी मृत्यु गोड़ोंकी लड़ाईमें ही संवत १५६६ में हुई। इन लड़ाइयोंका कारण इस प्रकार था कि घाटवा नामक स्थानपर गोड़ अेक तालाब खुदवा रहे थे और उनने यह नियम बना दिया था कि जो कोई उधरके मार्गसे जाय अेक टोकरी

मिट्टी खोदकर अवश्य बाहर डाल दे। अेक राजपूत अपनी स्त्रीका गौना करवा कर जाता हुआ उधर आ निकला। गोड़ोंने उससे मिट्टी खोदकर बाहर डालनेको कहा और उसने अैसा कर दिया। पर गोड़ोंने उसपर दबाव डाला कि उसकी स्त्री भी अैसा करे। राजपूतने इसका विरोध किया पर उद्दंड गोड़ोंने उसकी अेक न सुनी। इसपर वह वीर अपनी स्त्रीकी मानरक्षाके लिअे प्राणोंपर खेल गया। उसकी विधवा नववधूने शेखाजीके पास जाकर अपना दुखड़ा रोया। इसपर शेखाजीने गोड़ोंपर आक्रमण किया। गोड़ परास्त तो हो गये पर शेखाजी भी वीरगतिको प्राप्त हुअे।

६३—राव शिवसिंह—ये शेखाजीके वंशज और शेखावाटीके अंतर्गत सीकरके राजा थे। इनने सं० १७७८ से १८०५ तक राज्य किया। ये बड़े प्रतापी और प्रभावशाली नरेश हो चुके हैं। अेक बार जयपुर-नरेश सवाई जयसिंहजीके साथ शिवसिंह मालवाकी ओर जा रहे थे। मार्गमें मौजाबादमें पड़ाव हुआ। वहीं अजमेरसे मारवाड़-नरेश अभैसिंहजी भी आ मिले। वर्षाऋतु थी। अेक बार सात दिन लगातार वर्षा हुई। भोजन का प्रबंध कठिन हो गया और सब लोग व्याकुल हो उठे। यह देखकर रावजीने अपने खेमेमें कड़ाह चढ़वाकर खीचड़ा बनवाया। रावजीका यह नियम था कि भोजन बन जानेपर नगाड़ा बजाते थे जिसको सुनकर भोजन करनेवाले लोग आ पहुँचते थे और सबके भोजन करनेके बाद स्वयं भोजन करते थे। इस बार भी अैसा ही किया और नगारेका शब्द सुनकर जयपुर तथा मारवाड़के सैनिक भी उनके डेरेमें पहुँच गये और खीचड़ा खाकर तृप्त होकर लौटे। फिर रावजीने दोनों नरेशोंसे भी पधारनेकी प्रार्थना की और तीनोंने मिलकर भोजन किया। इस पर प्रसन्न होकर जयपुर-नरेशने १००) रोजानेका रसोवड़ा खर्च और ६००) वार्षिक थालच्या नियत कर दिया। सीकर-राज्य के करमें यह ६००) की रकम अब भी जयपुरकी ओरसे मुजरा दी जाती है। इसीपर कविने यह दूहा कहा था। इस विषयके अेकाध दूहे और यहाँ दिये जाते हैं—

अभैसिंघ, जैसिंघ, हिंदू से मेला हुवा।
सुजस लियो सिवसिंघ सारो दोलतसिंघवत ॥ १ ॥
मारू मेवाड़ाह, सोढा, जाडेचा समा।
ढकिया, ढूँढाड़ाह, सुजस तिहारे, सेवसी ॥ २ ॥

६४—सादूलसिंह—ये खेतड़ीवालोंके पूर्वज बड़े प्रतापी राजा हुये। इनने झूँझणूके कायमखानी नवाब रुहेलखाँको हराकर झूँझणू छीन लिया—

सत्रह सो सत्तासिये अगहण मास उदार।
सादै लीनी झूँझण सुद आठम सनिवार ॥

इसी प्रकार आसपासके मुसलमान शासकोंको हराकर इनने नरहड़, सिंघाणा, सुलताना आदि स्थान अपने अधिकारमें कर लिये। इनका देहांत १७९९ में हुआ। इनके विषयमें यह छंद प्रसिद्ध है—

इण राजा सादूल पकड़ बूँदी बिचलाई।
इण राजा सादूल लंक जिम रिणी लुटाई ॥
इण राजा सादूल लिया बैराट सिंघाणा।
इण राजा सादूल दिया नरहड़ सिर थाणा ॥

९५—जुझारसिंह—ये सादूलसिंहजीके दादा और उदयपुर (शेखावाटी) के राजा दानवीर टोडरमलके पुत्र थे। इनने गुढा नामक गाँव बसाया और वहीं रहने लगे। इनके पिताने मृत्युके पूर्व केड नामक गाँवको, जो मुसलमानों से अधिकारमें था, अपने अधिकारमें देखने की इच्छा प्रकट की। इनने झट केडपर धावा बोल दिया और उसे विजय कर लिया पर लौटनेके पूर्व ही पिताकी मृत्यु हो गई। मरते समय पिता अपनी खास ढाल-तरवार जुझारसिंहको दे गये।

९६—जोरावरसिंह—ये सादूलसिंहके बड़े बेटे थे। बड़वासीके नवाब मानुल्लाखाँके हाथसे उनके मुखपर घाव हो गया जिसे लक्ष्य कर कविने यह दूहा कहा।

९७—अभयसिंह—इनने १८५७ से १८८३ तक खेतड़ीमें राज्य किया। मारवाड़में भीमसिंहजी के बाद उनके भाई मानसिंहजी गद्दीपर बैठे। उसी समय मारवाड़के कई सरदारोंने धोंकलसिंह नामक अेक दूसरा गद्दीका हक्दार खड़ा किया जिसे वे भीमसिंहजीका पुत्र बतलाते थे। जयपुर और बीकानेरने धोंकलसिंहका पक्ष लिया पर अमीरखांके विश्वासघातके कारण उन्हें सफलता नहीं मिली। बचपनमें धोंकलसिंहको शरण देनेका साहस और किसीको नहीं हुआ पर अभयसिंहने उसे सम्मानसहित अपने पास रखा।

९८—सुलतानसिंह—ये फतहपुर (शेखावाटी)में रहनेवाले गोड़ राजपूत थे। इनको आखेटका बड़ा दुर्व्यसन था। आखेट जाते समय मार्गमें अेक सींमासर गाँव पड़ता था जहाँ बारहठ मुकनजी चारण रहते थे। वे सुल्तानजीको सदा उपालंभ देते थे। अेक दिन सुलतानजीने कहा कि यह दुर्व्यसन तो मरनेतक मुझसे न छूटेगा, कोई अैसा उपाय बताइये जिससे मेरी सद्गति हो। बारहठजीने कहा कि धर्मयुद्धमें प्राण दीजिये। पीछे फतहपुरपर पचाधोंका आक्रमण हुआ तो सुलतानजीने उनका सामना किया और वीरगति पाई।

१००—ऊगो—यह गारापुर पाटणके राजा वालाका छोटा भाई था। जुनागढगिरनारका राजा कैवाट सरवहियो इसका मामा था। कैवाटके कई सरदारोंने उससे राज्य छीननेका विचार किया पर ऊगेकी वीरताके कारण अैसा नहीं हो सका। तबसे उसके यहाँ ऊगेका प्रभाव बढ़ गया। अेक बार कोई सौदागर दो बहुमूल्य ढालें लाया और राजाकी नजर कीं। उनमेंसे अेक राजकुमारने और दूसरी ऊगेनेले ली। इसपर कैवाटने कहा—भाणेज, अेक हाथसे ताली बजाते हो। ऊगेने उत्तर दिया कि मेरे तो अेक ही हाथसे ताली बजती है, आप जब चाहें परीक्षा करके देख लें। इसके बाद कोड़लापुर-पाटणके राजा क्षणंतराय सोलंखेने कपटसे कैवाटको पकड़ लिया और उसे पिंजरेमें डाल दिया। पिंजरेको जमीनमें गड़वा दिया और ऊपरसे मार्ग बहने लगा। ऊगेको यह बात मालूम हुई तो उसने मंगल भाटको कैवाटका पता लगानेको भेजा।

कैवाटने मैंगलसे कहलवाया कि ऊगेको कहो कि अब अेक हाथसे ताली बजावे। फिर ऊगेने 'शठे शाठ्यं' वाली नीतिको लेकर गुप्तरूपसे अणंतरायके नगरमें प्रवेश करके उसपर धावा बोल दिया और उसको पराजित कर कैवाटको छुड़ाया। कैवाटकी यह कहानी राजस्थानमें बहुत प्रसिद्ध है। (विशेपके लिअे देखो पं० सूर्यकरण पारीक द्वारा संपादित 'राजस्थानी वातां' नामक पुस्तकमें कैवाट सरवहियेकी वात)।

१०४—तगो—कहानियोंमें यह बादशाह अलाउद्दीनका अेक सरदार बताया गया है। जालोरके राजाका भाई राणकदे बादशाहके यहाँ नजरबंद था। उसकी निगरानी तगेके सुपुर्द थी। अेक दिन तगेने राणकदेको तू कहकर पुकारा। तब पास बैठे अेसे चारणने यह दूहा तगेसे कहा। इसपर राणकदेने कटारसे तगेको मार डाला।

१०५—रहीम—हिंदीका सुप्रसिद्ध कवि है। यह अकबरका सेनापति था। बड़ा दानी था। यह दूहा तथा आगे 'दानवीर' के ७ और ८ नंबरके दूहे जाडा नामक चारणके कहे है (आगे अैतिहासिकमें दूहा नं० ३९ देखिये।)

४—दानवीर

१—जाम ऊनड़—यह जाड़ेचा भाटी वंशका था और सिंधका राजा था। बड़ा भारी दानी हुआ है।

२—गोड़ वछराज—यह अजमेरका राजा था। इसने अनेक अरब-पसाव दान दिये थे।

अड़व-पसाव—अेक प्रकारका दान जिसमें अरब रुपये नकद; या हाथी-घोड़े, जागीर आदि के रूपमें अरब का धन; दिया जाय। इसी प्रकार करोड़-पसाव और लाख-पसाव नामक दान होते हैं।

३—सांगो—गुजरातमें नागरचाळ नामक गाँवमें रहनेवाला गोड़ राजपूत था। उसकी आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी और वह भेड़ें चराकर किसी प्रकार निर्वाह करता था। अेक बार राजस्थानके सुप्रसिद्ध बारहट ईसरीदासजी उस गाँवमें जा निकले और सांगेके यहाँ ठहरे। सांगेकी

मातानें बड़े कष्टसे भोजनकी सामग्री अेकत्र करके उन्हें भोजन करवाया। सांगेने (जिसकी अवस्था उस समय केवल १४ वर्ष की थी) बारहटजीसे अर्ज की कि इस समय तो आपको भेंट देने लायक मेरे पास कुछ भी नहीं पर जब मेरी मेड़ोंकी ऊन उतरेगी तो उसका कंबल बनाकर भेंट करूंगा। उसके हृदयकी उदारतासे बारहटजी प्रसन्न हुअे और वहांसे आगे पधारे। अेक दिन सांगा नदीके किनारे मेड़ें चरा रहा था तो नदीमें बाढ़ आई और सांगाको बहा ले गई। उस समय उसे बारहटजीके कंबल देनेकी बात याद आई। प्रतिज्ञाको अधूरी रहते देख उसे बड़ा दुःख हुआ। तब उसने चिल्लाकर यह दूहा कहा कि शायद कोई कहीं सुन रहा हो तो उसकी मातासे जाकर कह देगा। सांगेकी मृत्युसे माता बिलकुल ही निराश्रय हो गई पर पुत्रकी प्रतिज्ञा उसे सदा याद रहती। जब बारहटजी दुबारा आये तो माताने कंबल उन्हें भेंट किया। जब बारहटजीको रसोई परोसी गई तो उनने पूछा कि सांगा कहां गया? माताने पहले तो कहा कि आप भोजन कीजिये, वह यहीं कहीं गया है। पर बरहटजीने आग्रह किया तो बुढ़ियाने रोते-रोते सब हाल सुना दिया। कहते हैं कि यह बात सुनकर बारहटजी उसी समय नदीपार गये और सांगेको आवाज दी और उस आवाजको सुनकर सांगा नदीमें बहता हुआ बाहर निकल आया।

४—जगदेव पंवार— यह धारके राजा उदयादित्यका छोटा पुत्र था। सौतेली माताके व्यवहारसे दुखी होकर गुजरातके राजा सिद्धराज जयसिंह सोलंकीके यहां चला गया। यह बड़ा वीर तथा दानी हुआ है। लोक-कथाओंमें इसकी बड़ी प्रशंसा गाई गई है। कहा जाता है कि अेक बार देवीने कंकाली भाटिनी बनकर जयसिंहके आगे जगदेवकी दानवीरताकी बड़ाई की जिसपर जयसिंहने कहा कि तू जगदेवके पाससे दान ले आ, मैं उसका चौगुना दूंगा। भाटिनीने यह बात जगदेवसे कही। जगदेवने सोचा कि और किसी दानमें तो राजासे बढ़ नहीं सकता अतः शीशदान ही देना चाहिअे। भाटिनी जगदेवका सिर थालीमें लेकर जा रही थी कि मार्गमें

जगदेवका भानजा मिला। उसने भी अपना अेक नेत्र निकालकर थालीमें रख दिया। भाटिनीने राजाके पास जाकर कहा कि अब जगदेवसे चौगुना दान दो। राजाने रानी तथा कुमारसे सलाह की पर वे अपना सिर देनेको तय्यार न हुअे। राजा पराजित हुआ।

५—करणसिंह—यह बीकानेरके महाराज लूणकरणका बेटा था। बड़ा दानी था। अेक चारणको करोड़-पसाव नामक दान दिया। जो कुछ पास था वह सब दे चुकनेपर भी जब करोड़की रकम पूरी नहीं हुई तो उसने बाकी रकमके बदले अपने दो लड़के चारणको दे दिये।

६—रायसिंह—ये बीकानेरके महाराज थे। बड़े वीर, दानी और प्रतापी हुअे हैं। अकबरके सेनापति थे तथा बादशाहके दरबारमें जयपुरवालों के बाद उन्हींका दर्जा था। इनने अेक चारणको करोड़का दान दिया और रुपया लेनेके लिअे खजानचीके पास भेजा। खजानचीने इतनी बड़ी रकम देनेमें आनाकानी की तो चारण महाराजके पास लौट आया। तब महाराजने उसे चौथाई करोड़ और मिलाकर कुल सवा करोड़ रुपये अपने सामने दिलवाये।

६—किशनसिंह—ये शेखावाटीके सुप्रसिद्ध वीर सादूलसिंहजीके पुत्र और खेतड़ीके स्थापक राव भोपालसिंहजीके पिता थे। इनकी राजधानी झूँझणू थी। ये बड़े दानी और उदार थे। अपने भाईकी बेटीके विवाहमें इनने राजगढ़का परगना बीकानेर-नरेशको दहेजमें दिया था। सं० १८ में इनका देहांत हुआ।

१२—जगतसिंह—ये उदयपुरके राणा थे। इनने १६८४ तक राज्य किया। ये बड़े उदार और दानी थे। अनेकों देवम तथा कई ... महाराणा राजसिंह इन्हींके पुत्र थे।

... ये उदयपुरके महाराणा (१८३४—
... थे। इनकी उदारताकी कई
... बार महाराणा सो रहे थे और

रहा था। महाराणाके पैरमें सोनेका छल्ला था। सेवकने उसे निकाल लेना चाहा पर बीचमें अटक जानेसे वह नहीं निकला। तब सेवकने थूक लगाकर उसे निकाल लिया। इसपर महाराणा जाग पड़ा और बोला—छल्ला निकालना था तो यों ही निकाल लेता, मेरा पैर क्यों अपवित्र किया। फिर उठकर स्नान किया पर सेवककी निर्धन स्थिति देखकर उसे कोई दंड नहीं दिया।

(२) अेक चारण अेक बार अपनी कन्याके लिअे रुपये माँगने आया। महाराणाने उसे दे दिया। इसी तरह दो रोज फिर आया पर यह जानते हुअे भी कि यह झूठा है, महाराणा उसे रुपये देता रहा। इससे चारण लज्जित हुआ और चौथे रोज सारा धन लाकर महाराणाके सामने रख दिया और कहा कि मैं तो आपकी परीक्षा करता था, राज्यकी अैसी स्थितिमें भी आपकी उदारतामें कोई कमी नहीं हुई। यह कहकर चारण धन लौटाने लगा पर महाराणाने दिया हुआ धन वापिस नहीं लिया, उलटा उसे और भी दिया।

(३) कविता बनाकर लानेपर महाराणाके दरबारसे कई चारणों को पुरस्कार मिला पर अेक चारणको कुछ भी न मिला। वह दूसरोंसे कहने लगा कि तुमने तो प्रशंसा करके दान पाया है मैं निंदा करके दान लूँगा। अेक रोज जब राणाजीकी सवारी कहीं जारही थी तब उसने मार्ग में खड़े होकर यह पद पढ़ा—

भीमा, तू भाठो मोटा मगरा माँयलो।

इसपर लोगोंने उसे फटकारा पर राणाने कहा कि कहने दो, शायद इसके चित्तमें कोई भारी दुःख है। तब चारणने दूसरी लाइन पढ़ी—

कर राखूँ काठो संकर ज्यूँ सेवा करूँ॥

राणाने प्रसन्न होकर उसे औरोंकी अपेक्षा दुगुना दान देकर विदा किया।

१८—ठाकुर खंगारसिंह– अेक बार कोई बारहट (प.

आकर ठहरे। आधी रातके समय उनने अपने सोये हुअे नौकरसे हुक्का भरकर लानेको कहा। नौकरको नहीं उठता देखकर ठाकुर साहब स्वयं हुक्का भर लाये। बारहटजीने देरी होनेके कारण, उन्हें अपना नौकर समझकर, दो-चार कोरड़े मार दिये। ठाकुर साहब कुछ नहीं बोले और जाकर सो गये। प्रातःकाल बारहटजीने नौकरको फिर रातकी देरीके लिअे धमकाया। उसने कहा कि बारहटजी, मैं तो रातको उठा ही नहीं, हुक्का कौन लाया ? सच्चा हाल मालूम होनेपर उन्होंने यह दूहा कहा।

---

(४) अैतिहासिक और भौगोलिक

१—अैतिहासिक

१—हाडा – यह चोहाण राजपूतोंकी अेक शाखा है। हाडोंकी वर्त्तमान रियासतें बूँदी और कोटा हैं।

देवड़ा—यह भी चोहाणोंकी शाखा है। इनकी रियासत आजकल सिरोही है।

राठोड़—इनके मुख्य राज्य आजकल जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़, सीतामऊ, सैलाणा आदि हैं।

रणबंका राठोड़—यह वाक्य जोधपुर-राज्यका सिद्धान्त-वाक्य अर्थात् मोटो Motto है।

२—चूँडो—यह महाराणा लाखाका ज्येष्ठ राजकुमार था। यह राजस्थानका भीष्म कहा जाता है। अेक बार मारवाड़के राव रणमलने अपनी बहन हंसबाईकी सगाईका नारियल कँवर चूँडाके लिये भेजा। दरबारमें राणाने हँसीमें कहा कि जवानोंके लिअे नारियल आते हैं, हमारे जैसे बूढ़ोंके लिअे कौन भेजे ? पिताकी यह बात सुनकर चूँडाने राव रणमलसे कहलाया कि अपनी बहनका विवाह महाराणाके साथ कर दीजिये। रणमलने कहा कि अैसा होनेसे मेरे भानजेको राज्य नहीं मिल

सकता क्योंकि ज्येष्ठ पुत्र तो आप हैं। इसपर चूँडाने राज्यका अधिकार छोड़ देनेका प्रतिज्ञापत्र लिख दिया और पिताको उनकी इच्छाके विरुद्ध नया विवाह करनेको बाध्य किया। तबसे महाराणाकी ओरसे दिये हुए पट्टे-परवाने तथा सनदों आदिपर भालेका चिह्न बनानेका अधिकार चूंडा और उसके मुख्य वंशधरको दिया गया।

शेखो—ऊपर वीर-रस में 'विशेष वीर' का दूहा नं० ६२ देखिये।

आमेर—जयपुर-राज्यकी प्राचीन राजधानी आंबेर थी अतः समस्त राज्य आंबेर-राज्य कहलाता था।

दूदा—यह जोधपुर बसानेवाले राव जोधोजीका पुत्र और राव बीकोजीका छोटा भाई था। इसने मेड़ताको जीतकर वहाँ अपना निवास बनाया। जोधपुरमें यह प्रसिद्ध वीर हो चुका है। चित्तोड़का रक्षक जयमल इसका पौत्र था तथा भक्तशिरोमणि मीरांबाई इसकी पौत्री थी।

बीदो—यह राव जोधोजीका पुत्र तथा राव बीकोजीका सगा भाई था। जोधोजीने इसे मोहिलबाटीका शासक नियत किया और इसने मोहिलोंको अधीन करके सारी मोहिलबाटीपर अधिकार कर लिया। यह प्रदेश इसके नामपर अब बीदावाटी कहलाता है। आगे चलकर बीदोजीने बीकोजीकी अधीनता स्वीकार कर ली। बीदावत ठाकुर बीकानेरके ४ सिरायतोंमें से है और महाजनके बाद उसीका स्थान है।

३—पातलियो—यह प्रतापका दूसरा रूप है। राबराजा प्रतापसिंह जयपुर-महाराज उदयकरणजीके वंशज थे। वर्तमान अलवर राज्यकी स्वतंत्र स्थापना इन्होंने की।

माधो—महाराज माधवसिंह जयपुर-नरेश सवाई जयसिंहके छोटे पुत्र थे। इनकी माता उदयपुर राजवंशकी थी जिसके विवाहके समय यह निश्चय हुआ था कि उसीका पुत्र जयसिंहके बाद गद्दीपर बैठेगा चाहे वह बड़ा पुत्र न भी हो। जयसिंहकी मृत्युके बाद सरदारोंने ज्येष्ठ पुत्र ईसरीसिंहको गद्दीपर बिठाया। मेवाड़के राणाने माधवसिंहका पक्ष लिया। बहुत समय तक

युद्ध होता रहा। अंतमें ईसरीसिंहके विष द्वारा आत्महत्या कर लेनेपर माधवसिंह राजा हुअे। इनने सं० १८१६ में मराठोंसे रणथंभोर किला जीता।

बखतावर—ये खेतड़ी-नरेश अभयसिंहके पुत्र थे। सं० १८८३ से १८८६ तक इनने खेतड़ीका राज्य किया। पिताके जीवनकालमें इनने धूलाके राजावत सरदारसे वाघोरका क़िला जीता था।

४—नाग—यह भारतवर्षकी अेक अत्यन्त प्राचीन जाति थी जो संभवतः अनार्य थी। इसका राज्य समस्त भारतमें था अेसा जान पड़ता है। राजस्थानमें पहले इन्हींका प्रभुत्व था और नागोर इन्हींका बसाया बताया जाता है। परमारोंने इनका राजस्थानका राज्य नष्ट कर दिया।

५—पँवार—इनको प्रमार या परमार भी कहते हैं। प्राचीन कालमें इनका राज्य बहुत विस्तृत था। संवत् चलानेवाले विक्रमादित्य और भोज आदि सुप्रसिद्ध राजा इसी वंशके थे। मारवाड़में पहले इनके नौ राज्य थे जिससे अब भी 'नौ-कोटी मारवाड़' की कहावत प्रसिद्ध है।

६—ज्यां पँवार त्यां धार है—इस पर अेक कथा है कि धाराके अेक पँवार राजाने जेसलमेरके अेक व्यापारीको पकड़कर उसका सब धन ले लिया। छूटनेपर वह जेसलमेरके राजा देवराजके दरबारमें जाकर पुकारा। देवराजने अपनी प्रजाके अपमानको अपना ही अपमान समझा और तुरंत प्रतिज्ञा की कि जबतक धाराको न जीत लूँगा तबतक जल भी नहीं पियूँगा।

धारा जेसलमेरसे बहुत दूर थी और फिर जाते ही उसे जीत लेना भी असंभव था। तब तक बिना जल पिये रावळजी कैसे जीवित रहेंगे यह सोचकर सारे सरदार चिंतित हुअे। अंतमें अेक उपाय सोचा गया कि मिट्टीकी धारानगरी बनाई जाय और राजा उसे ही विजय कर जलपान करें तथा बादमें धारापर आक्रमण करनेकी तय्यारी की जाय। समझाने पर रावळने यह सलाह मान ली। धाराका मिट्टीका दुर्ग बनाया गया और रावळके यहाँ रहनेवाले पँवार सरदार उसकी रक्षाके लिअे

तय्यार हुअे। रावल सेनाके साथ दुर्गको ध्वस्त करनेके लिअे आये तो पँवार सरदार तेजसी और सारंगने सचमुचका युद्ध छेड़ दिया। लोगोंने समझाया तो बोले कि धारा हमारी मातृभूमि है, उसका नाश हम नहीं देख सकते चाहे वह कृत्रिम ही क्यों न हो, जब तक अेक भी पँवार जीवित है तब तक रावल इस दुर्गको विजय नहीं कर सकते—जहाँ धारा है वहाँ पँवार हैं और जहाँ पँवार हैं वहाँ धारा है। अंतमें लड़ते हुअे सारे पँवार योद्धा मारे गये और उसके बाद ही रावल उस नकली दुर्गको विध्वस्त कर सके। धन्य है इन वीरोंका अभूतपूर्व मातृभूमि-प्रेम !

७—यह जूनागढ़ गिरनारके चूड़ासमा राजा खेंगारकी रानी राणक देवड़ीका कथन है।

राणक देवड़ी—यह सोरठ जूनागढके राणा खेंगार चूड़ासमाकी रानी थी। इसके विषयमें यह दूहा प्रसिद्ध है—

जाई ती देवंगणा, पाली आणा कुँभार ।
मन राख्यो जेसिंघदे, परणी रा' खेंगार ॥

खेंगारकी गुजरातके राजा सिद्धराज जयसिंहके साथ शत्रुता थी। अपने भानजेके विश्वासघातसे सिद्धराजके आक्रमणमें खेंगार मारा गया और राणक देवड़ी सिद्धराजके हाथमें पड़ी। सिद्धराजने उसे अपनी रानी होनेके लिअे कहा और राणकके अस्वीकार करनेपर उसके सामने ही उसके पुत्र माणेराको मार डाला और राणकको पकड़ ले गया। पर अंत में उसने उसे सती होनेकी अनुमति दे दी। इस कथापर कन्हैयालाल माणेकलाल मुंशीने गुजरातीमें गुजरातनो नाथ और राजाधिराज नामक दो बड़े ही सुंदर उपन्यास लिखे हैं।

गिरनार—सोरठमें अेक पहाड़।

८—माणेरा—यह राणक-देवड़ीका पुत्र था। खेंगारके मारे जानेपर सिद्धराज महलोंमें घुस आया तो माणेराने अपनी छोटी-सी तलवारसे सिद्धराजपर वार किया। सिद्धराजने राणकके सामने ही निर्दयतासे उसे मार डाला।

१०—रावल् भोजदेव—ये भाटी राजपूत और लोद्रवा के (जिसे अब जेसल्मेर कहते हैं) राजा थे। इनके चाचा जेसल् राज्यको अपने हाथ में करना चाहते थे। और कोई उपाय न देख राव जेसल् शहावुद्दीन गोरीके पास पहुँचे और उसके सेनापति मजेजखांको चढ़ा लाये। भीषण युद्ध हुआ जिसमें भोजदेव काम आये। ये संवत् १२०४ में गद्दीपर वैठे थे।

११—भटियाणी राणी—यह जेसल्मेरके राव लूणकरणकी कन्या थी। इसका नाम ऊमादे था। जोधपुरके महाराज मालदेवके साथ इसका विवाह हुआ था (सं० १५९३)। कारण-वश विवाहके वाद ही उसने पतिसे न वोलनेकी प्रतिज्ञा कर ली। महाराज विवाहके वाद लौट आये और कुछ समयके वाद वारहट आसेजीको भटियाणीको लानेके लिये भेजा। भटियाणी आ तो गई पर अपने हठपर कायम रही। उस समय वारहटजी ने यह दूहा कहा। सुनकर रानीने हठपर दृढ़ रहनेका ही निश्चय किया और जन्म भर पतिसे संवंध न रखा। संवत् १६१९ में रावजीकी मृत्यु होनेपर उनके साथ सती हुई।

१३—ईश्वरीसिंह—ये सवाई जयसिंहके वड़े राजकुमार थे और उनके वाद जयपुरकी गद्दीपर वैठे। इनके सौतेले भाई माधवसिंहने गद्दीपर अपना दावा किया। अंतमें स्वामिभक्त मंत्री केशोदासके प्रयत्नसे संधि हो गई। पर हरगोविंद नाटाणी नामक अेक धूर्त्तके वहकावेमें आकर ईसरीसिंहने अपने योग्य मंत्री केशोदासको विषका प्याला पिलाकर मार डाला और नाटाणीको मंत्री वनाया। इसके वाद माधवसिंहने मराठोंकी सहायता लेकर जयपुरपर धावा कर दिया। धोखेवाज नाटाणीने महाराजको वहकावेमें रखा और सामना करनेकी कोई तय्यारी न की। जव मराठे शहरके भीतर आ गये तो महाराजको धोखेका पता चला और कोई दूसरा उपाय न देखकर स्वयं विषपान द्वारा आत्महत्या कर ली।

१५—केसरीसिंह—ये खंडेला (जयपुर) के राजा थे। इनका विवाह वीकानेरकी राजकुमारीसे हुआ था। विवाहके समय अेक चारणको यथेष्ट

दान नहीं मिला जिससे नाराज होकर उसने यह दूहा कहा। उसका यह कथन सत्य सिद्ध हुआ। अजमेरके सूबेदारने खंडेलेपर चढ़ाई की। युद्धमें केसरीसिंह वीरताके साथ लड़ते हुअे मरे और बीकावतजी सती हुईं (अग्निमें जलीं)।

१६—राणा राजसिंह—ये उदयपुरके सुप्रसिद्ध राणा औरंगजेबके समयमें हुअे थे और उससे कई लड़ाइयाँ लड़े (देखो पीछे विशेषवीरमें दूहा नं० ७२)।

१७—अड़सी—इन्होंने सं० १८१७ से १८२६ तक उदयपुरका राज्य किया। राज्यके कई सरदार इनके तेज स्वभावसे नाराज होकर गद्दीके अेक दूसरे हकदार रतनसिंहके पक्षमें हो गये। रतनसिंहकी सेनामें नागोंकी पलटनें थीं। युद्धमें महाराणाकी विजय हुई और बहुत-से नागे मारे गये।

१८—मेवाड़के सिरायत—सिरायत प्रधान सरदारोंको कहते हैं। मेवाड़के १६ सिरायत नीचे लिखे अनुसार हैं—

(क) तीन झाला राजपूत—१ सादड़ी २ गोगूँदो ३ देलवाड़ो। (ख) तीन चोहाण—१ कोठारयो २ बेदलो ३ पारसोली। (ग) चार चूँडावत सीसोदिया—१ सलूंबर २ देवगढ ३ बेगूँ ४ आमेट। (घ) दो शक्तावत सीसोदिया—१ भींडर २ बानसी। (ङ) दो राठोड़—१ घाणेराव २ बदनोर। (च) अेक सारंगदेवोत—कानोड़। (छ) अेक पँवार—बीजोलियाँ।

१९—ईंदा—ये पड़िहार राजपूत हैं। पहले मंडोर इनके अधिकारमें था। पीछे राठोड़ राव चूँडाके साथ इन्होंने अपनी कन्याका विवाह किया और दहेजमें मंडोर दिया जो उस समयसे राठोड़ोंकी राजधानी हुई। पीछे जोधाजीने जोधपुर बसाया और उसे राजधानी बनाया। मंडोर हाथमें आनेके पूर्व राठोड़ों का राज्य अस्तव्यस्त था। छोटे-छोटे ठिकाने उनके हाथमें थे पर उनका प्रभुत्व विशेष न था। मंडोर हाथमें आनेसे उनका प्रभुत्व बढ़ गया और तभीसे वे राजस्थानमें जोर पकड़ने लगे।

२०—सीहोजी—ये कन्नोजसे मारवाड़में आये और यहां राठोड़ोंका राज्य स्थापित किया। भीनमालके ब्राह्मणोंपर मुसलमान अत्याचार करते थे। सीहाजीने उन्हें परास्त करके भगा दिया।

२१—चूंडोजी—ये राठोड़ राव वीरमके बेटे थे। राठोड़ोंका वास्तविक महत्त्व इन्हींके समयसे आरंभ हुआ। इनके पुत्र राव रणमल और पौत्र राव जोधा थे। जब ये छः वर्षके थे तब इनके पिता जोइयोंके युद्धमें मारे गये (सं० १४४०)। इनकी माता इनको लेकर कालाऊ ग्राममें आल्हा चारणके घर रहने लगी। उसने अपना भेद किसीको नहीं बताया। अंतमें भेद जानकर आल्हा चारणने होनहार बालकको उसके बाबा (पिताके बड़े भाई) मल्लीनाथजीके पास पहुँचा दिया जो उस समय मारवाड़के राव थे। मल्लीनाथजीने चूंडाको सालवड़ी गाँव दिया। परंतु उसके सहिंसिक कार्योंसे तंग आकर उन्होंने उसे विदा कर दिया। पहले मंडोरमें पड़िहारोंका राज्य था पर मुसलमानोंने उसे छीन लिया था। सं० १४५१ में पड़िहार राणा उगमसीने मंडोर मुसलमानोंसे छीन लिया पर उसकी रक्षामें अपनेको असमर्थ पाकर अपने कुटुंबी राव धवलकी कन्यासे चूँडाका विवाह करा दिया और मंडोर उसे दहेजमें दे दिया। चूँडोजीने उसे अपनी राजधानी बनाया और मारवाड़-राज्यकी नवीन शाखाका प्रारंभ किया। मल्लीनाथजीके पुत्र राव जगमलके बाद उनका राज्य छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट गया और मंडोरका राज्य राठोड़ोंका मुख्य राज्य हो गया। राव चूँडाने अपने राज्यका खूब विस्तार किया। भाटियों और मोहिलोंके युद्धमें ये पूगलके भाटी राव केलहणके हाथों संवत् १४८० में मारे गये।

गोगादे—ये राठोड़ राजपूत और मारवाड़के राव चूँडाके भाई थे। गोगाजीका जोइया राजपूतोंसे वैर था। जोइयोंने उनके पिता वीरमको मार डाला था अतः गोगाजीने उनपर आक्रमण करके पिताका बदला लिया। जब गोगाजी लौट रहे थे तो मार्गमें अेक तालावपर विश्राम किया

और घोड़ोंको थका समझकर चरनेको छोड़ दिया। वे हरा घास चरते-चरते दूर निकल गये। पीछेसे जोइयोंने गोगादेजीको आ दबाया। उन्होंने घोड़ोंको बहुत बुलाया पर वे नहीं आये और गोगादेजी लड़ते हुओ मारे गये (सं० १४४०)।

२३—महाराज रामसिंह—ये जोधपुरके महाराजा थे। इन्होंने सं० १८०६ से १८०८ तक राज्य किया। इनके मूर्खतापूर्ण कार्योंसे तंग आकर सरदारोंने इनके चाचा बखतसिंहको नागोरसे बुलाकर जोधपुरका राजा बनाया। रामसिंहका जीवन बखतसिंह और उनके पुत्र विजयसिंहसे लड़ते ही बीता। इनके विषयमें अनेक कहानियां लोगोंमें प्रचलित हैं।

२४—जोधपुरके बड़े-बड़े सरदार महाराज विजयसिंहजी के विरुद्ध हो गये थे। सं० १८१५ में वे युद्ध के लिओ बीसलपुरमें ओकत्र हुओ पर महाराज उन्हें मना लाये। सं० १८१६ में महाराजके गुरु आत्मारामका किलेमें स्वर्गवास हो गया। महाराजने बड़े-बड़े मुखिया सरदारोंको, उन्हें मिट्टी देनेके बहानेसे, किलेमें बुलाया और कैद कर लिया। इनके नाम इस प्रकार थे— (१) रास-ठाकुर केसरीसिंह, (२) पोकरण-ठाकुर देवीसिंह, (३) आसोप-ठाकुर छत्रसिंह और (४) नीमाज-ठाकुर दोलतसिंह जो केसरीसिंहका बेटा था और नीमाज गोद गया था।

२५—महाराज रायसिंह—इन्होंने सं० १६२८ से १६६८ तक बीकानेरमें राज्य किया। अकबरके दरबारमें जयपुरवालोंके बाद इन्हीं का दर्जा था। ये बड़े भारी दानी थे। इन्होंने करोड़पसाव नामक दान दिया था (देखो दानवीरमें दूहा नं० ६)। जब ये दक्षिण गये तो ओक फोगके पेड़को देखा। अपने देशका बूटा समझकर घोड़ेसे उतरे और बूटेसे गले लगकर मिले और यह दूहा कहा।

२७—महाराज जोरावरसिंह—ये बीकानेरके राजा थे। जोधपुर-नरेश अभयसिंहने ओक भारी फौज लेकर बीकानेरपर आक्रमण किया उस संबंधके ये दूहे हैं।

२८—जयसिंह—जयपुर-नरेश महाराज सवाई जयसिंह ।

२९—सवाई जयसिंहका उत्तर ।

३०—पृथ्वीराज राठोड़—ये महाराज रायसिंहजीके छोटे भाई थे। अकवरके दरवारमें रहते थे पर अपनी परतंत्रता उन्हें वहुत अखरती थी। महाराणा प्रतापके बादशाहसे संधिकी प्रार्थना करनेपर इन्हींने अपने पत्र द्वारा उनको फिर स्वातंत्र्य-रक्षाके लिअे सन्नद्ध किया था (यह पत्र पीछे प्रतापसिंहके वर्णनमें दिया गया है)। ये वड़े ऊँचे दर्जेके कवि थे। कृष्ण-रुकमणीरी वेलि, जिसको वेल भी कहते हैं, इनका सुप्रसिद्ध डिंगल काव्य है (इस काव्य का अेक वड़ा सुंदर संस्करण हिंदुस्तानी अेकेडेमी, प्रयाग, द्वारा प्रकाशित हुआ है)। इनका विवाह जेसलमेरके रावल हरराजकी कन्याओं लालादे और चंपादेके साथ हुआ था। कहा जहा है कि उदयपुरकी अेक राजकुमारीके साथ भी इनका विवाह हुआ था। लालादे की मृत्युपर इन्होंने नीचे ३२ नंवरवाला दूहा कहा था। ये वड़े भारी हरिभक्त थे । नाभादासने अपनी भक्तमालमें इनका उल्लेख किया है।

३१—पृथ्वीराज कल्याणरा इ०—कहते हैं कि पृथ्वीराजजीकी स्मरणशक्ति वड़ी तेज थी। कोई कवि इनामकी आशासे कुछ वनाकर लाता और इन्हें सुनाता तो सुनकर तुरंत उस कविताको दुहरा देते और कहते कि यह तो पुरानी कविता है। अंतमें अेक चारणने सोचकर यह दूहा वनाया और इन्हें सुनाया तथा पुरस्कार पाया।

३२—लालादे—यह जेसलमेरके रावलकी कन्या और पृथ्वीराजकी पत्नी थी। उसकी मृत्युके वाद चिता जलते समय पृथ्वीराजने यह दूहा कहा।

३५—जयसिंह—महाराज सवाई जयसिंह जिन्होंने सं० १७५६ से सं० १८०० तक राज्य किया था। जयपुरको इन्हींने वसाया था। इन्होंने अपने पुत्र शिवसिंहकी विप देकर हत्या की थी।

वखतसिंह—ये जोधपुर-महाराज अजीतसिंहके छोटे पुत्र थे। इन्होंने अपने वड़े भाई अभयसिंहके कहनेसे अपने पिताको विप दे दिया था। पहले

ये नागोरके राजा थे । बादमें अभयसिंहके पुत्र रामसिंहकी मूर्खतासे रुष्ट होकर सरदारोंने इन्हें जोधपुरका राजा बनाया। आगे उपालंभके ४२ और ४३ नंबरके दूहे देखो।

पत-जयपुर जोधाण-पत ३०—अेक बार जयसिंह और अभयसिंह दोनों पुष्करमें साथ बैठे थे। वहाँ करणीदान नामके चारण भी उपस्थित थे। दोनों राजाओंने करणीदानसे कुछ सुनानेके लिअे आग्रहसे कहा जिसपर उन्होंने यह स्पष्टोक्ति सुनाई।

३७—मुहणोत नैणसी—यह जातिका ओसवाल था और जोधपुरके महाराज जसवंतसिंहजीका दीवान था। बड़ा वीर तथा विद्यानुरागी था। इसकी बनाई ख्यात, जो 'मुहणोत नैणासीरी ख्यात' के नामसे प्रसिद्ध है, अेक अत्यंत महत्वपूर्ण अैतिहासिक ग्रंथ है। उसमें उस समय तकका राजस्थान और राजपूत वंशोंका इतिहास खूब विस्तारसे दिया हुआ है। जोधपुर राज्यका सर्वसंग्रह (गेजेटियर) नामक अेक और भी ग्रंथ उसने लिखा था।

संवत् १७२३ की पोह सुद ६ को महाराज जसवंतसिंहजीने किसी कारणवश नैणसीको और उसके भाई सुंदरदासको कैद कर दिया। फिर संवत् १७२५ में अेक लाखका दंड करके दोनोंको छोड़ दिया पर नैणसीने अेक पैसा भी देना स्वीकार नहीं किया जिस विषयमें ये दूहे अभी तक प्रसिद्ध है। दंड न देने पर वे फिर कैद कर लिये गये। संवत १७१७ में नैणसीने पेटमें छुरी मारकर अपना शरीरांत किया।

३६—जाडा चारणने रहीमकी प्रशंसामें दूहे बनाये (देखिये विशेष वीर नं० १०५ और दानवीर नं० ७-८) जिसपर रहीमने पुरस्कार देकर यह दूहा कहा।

४०—बीरबल—यह ब्राह्मण जातिका और सम्राट् अकबरका दरबारी था। बुद्धिमानी और हाजिरजवाबीके लिअे इसकी बड़ी प्रसिद्धि है। बीरबलविनोद, अकबर और बीरबल आदि कई पुस्तकें इस विषयमें छपी हैं। संवत् १६४० में अफगान-युद्धमें यह मारा गया। यह बड़ा भारी वीर,

दानी तथा कवि भी था। उसकी मृत्युपर अकबरने यह दूहा कहा था। नीचे लिखा दूहा भी अकबरका कहा हुआ बताया जाता है—

दीन जानि सब दीन, अेक न दीनो दुसह दुख।
सो बिछुरत हम दीन, कछु नहिं राख्यो वीरबर॥

(वीरबलने दीनोंको सब कुछ दे दिया केवल अेक चीज नहीं दी थी यानी दुस्सह दुःख। वह भी मरकर उसने मुझे दे दिया। सो उस दानीने अपने पास कुछ भी नहीं रखा)।

तानसेन—यह भी अकबरका दरबारी था। यह ग्वालियरका निवासी और पहले हिंदू था फिर मुसलमान बना लिया गया। तानसेन भारतवर्षके महान् संगीतज्ञोंमें ऊँचा आसन रखता है।

४१—हत्यारो ऊदो—यह महराणा कुंभाका बड़ा लड़का था। इसने संवत् १५२५ में अपने पिताको कटारसे मार डाला और मेवाड़का राज्य अपने हाथमें किया पर मेवाड़के सरदारोंने पितृघातीका पक्ष नहीं लिया और उसके छोटे भाई रायमलको बुलाकर राणा बनाया। ऊदा हारकर माँडूके सुलतानकी शरणमें गया और अपनी पुत्री देनेका वचन देकर सहायता माँगी। बातचीत करके ज्योंही डेरेके बाहर हुआ त्योंही उसपर बिजली गिरी और वह मर गया। सुलताननें उसके लड़कोंको लेकर मेवाड़-पर आक्रमण किया पर पराजित हुआ।

४२—बखतसिंह—ऊपर दूहा नं० ३५ देखो। अेक बार बखतसिंह अपने घोड़ेको बापा-बापा कहकर चिढ़ा रहे थे तब किसी स्पष्टवक्ता चारणने यह दूहा कहा था।

४४—जगरामसिंह—संवत् १८११ में जोधपुरके महाराज विजयसिंह का मराठोंके साथ युद्ध हुआ। उस युद्धमें ठाकुर महेशदास बड़ी वीरतासे लड़कर काम आया पर जगरामसिंह परास्त होकर भाग आया। तो भी महाराजने उसे आसोपका पट्टा देनेका विचार किया और महेशदासकी वीरताकी थोड़ी कदर नहीं की। इसपर किसी चारणने यह दूहा कहा। जिस

पर महाराजने आसोप जगरामसिंहको न देकर महेशदासके नाबालिग बेटेको दिया।

४५—फिट बीदां इ०—बीकानेरके महाराज दलपतसिंहको जहांगीरने अजमेरमें कैद कर दिया और बीकानेरका राज्य उनके छोटे भाई सूरसिंहको दिया। बीकानेरके सरदारोंने अपने महाराजको कैद होने दिया और उन्हें छुड़ानेके वास्ते कोई प्रयत्न न किया इसलिअे कवि इस दूहेके द्वारा उनको फटकारता है।

जब महाराज कैदमें थे उस समय चाँपावत हाथीसिंह अपनी ससुरालको जाता हुआ उधरसे निकला। महाराजकी अेक दासीने उसके किसी आदमीसे पूछा कि ये कौन सरदार हैं। जिसपर आदमीने उत्तर दिया कि राठोड़ हैं। दासीने व्यंगसे कहा कि क्या पृथ्वीपर अभीतक कोई राठोड़ जीवित विद्यमान है? यह बात हाथीसिंह तक पहुँची। उसने दासीसे सब हाल पूछा और महाराजके कैद होनेकी बात जानकर कहा कि अभी तो मैं ससुराल जात हूँ लौटकर महाराजको छुड़ाऊँगा। दासीने कहा कि यह काम ससुरालका आनंद मनानेवालोंसे नहीं हो सकता। हाथीसिंहको यह बात चुभ गई और उसी-दम महाराजको छुड़ानेके लिअे तय्यार हो गया। बड़ी भारी लड़ाई हुई जिसमें हाथीसिंह और महाराज दलपतसिंह दोनों काम आये। यह हाथीसिंह प्रसिद्ध वीर बलूसिंहका भाई था।

४७—मल्हारराव होलकर इंदोरका मराठा राजा था। उस समय राजपूतानेकी हालत बहुत खराब थी। आपसमें वैर-विरोध होनेके कारण सिंधिया और होलकरने खूब लूटमार मचा रखी थी। संवत् १८०८ में मल्हारराव होलकरने राजस्थानके राजाओंको दबाकर उन्हें अेक अैसा संधिपत्र मंजूर कर लेनेको विवश किया कि जिससे उनके गौरवकी हानि होती थी। उसी समय किसी चारणने यह दूहा कहा था

(५) हास्य और व्यंग

२—जनरल सर प्रताप—ये जोधपुरके महाराज तखतसिंहजीके दूसरे पुत्र और महाराजा जसवंतसिंहजीके छोटे भाई थे। इनका जन्म संवत १९०२ में हुआ था। ये बड़े वीर और प्रतापी थे। गवर्नमेंटने इनको ईडरका राज्य दिया। जोधपुर-राज्यके महाराजाओंकी नाबालिगीमें ये तीन बार रीजेंट—राज्य-प्रबंधक—रहे। ये स्वामी दयानन्दके अनुयायी थे। जोधपुर राज्यमें इन्होंने अनेक सुधार किये। यूरोपीय महायुद्धमें अपने पौत्र महाराज सुमेरसिंहजीके साथ सम्मिलित हुअे थे। ये डाढ़ी-मोंछ मुँड़ाये रहते थे जिसपर कविने यह दूहा कहा।

३—महाराणा सज्जनसिंह (१९१६-१९४१)—इन्होंने संवत १९३१ से १९४१ तक मेवाड़में राज्य किया। ये बड़े साहित्य-प्रेमी, विद्वान और विद्वानोंका आदर करनेवाले नरेश थे। राज्यमें इन्होंने अनेक सुधार किये तथा कई संस्थाओंको जन्म दिया। सम्वत १९३७ में इन्हें G.C.S.I. की उपाधि मिली। उसी अवसर किसी स्पष्टवक्ता कविने दूहा पढ़ा।

४०—सुरही हाजर हुई इ०—किसी बनियेने अपने जीवन भरमें केवल अेक पुण्यकार्य किया और वह था अेक गौ-दान। मरनेपर वह यमराजके दरबारमें लाया गया। यमने उससे कहा कि तेरी दी हुई गाय अेक घड़ी तक तेरे कहनेमें रहेगी और पीछे तू नरकमें डाला जायगा। जब गाय आई तो बनियेने उसे आज्ञा दी कि तू यमराजको मार। गाय सींग बढ़ाकर यमराजकी ओर दौड़ी। यमराज भाग चले, गाय भी पीछे-पीछे चली। बनियेने गायका पूँछ पकड़ लिया और वह भी साथ चला। यमराज भागते-भागते विष्णुभगवानके यहाँ गये और बोले कि महाराज मुझे बचाइये। विष्णु भगवानने सब हाल सुनकर बनियेको तुरन्त नरकमें डालनेकी आज्ञा दी कि इतनेमें बनिया चुपकेसे सामने आया और कहने लगा कि लोग तो आपका नाम याद करके ही भव-सागरसे पार हो जाते हैं, मैंने तो साक्षात आपके दर्शन कर लिये, क्या अब भी मैं नरकका अधिकारी ही

बना रहा ? भगवान्ने हँसकर उसे स्वर्गमें भिजवा दिया। इस प्रकार बनियेने यमराजको भी चकमा दिया।

---

(६) प्रेम

२४—संकर विख इ०—अमृतको प्राप्त करनेके लिअे देवों तथा दैत्योंने समुद्रको मथा। मथनेपर जो वस्तुएँ निकली उनमें विष भी था। भोलानाथ शंकरने उसे ग्रहण किया और उसे अपने गलेमें स्थान दिया जिससे उनका गला नीला हो गया। इसी कारण उनका नाम नीलकंठ पड़ा।

३०—सायर वहनि—सागरमें वड़वा नामकी अग्निका निवास पुराणोंमें बताया गया है। इसीके कारण सहस्त्रों नदियोंके गिरनेपर भी समुद्रका पानी बढ़ने नहीं पाता—अेक ही सतहपर रहता है।

---

(७) श्रृङ्गार रस

१—प्रियतम

१—साजन-साजन हूँ करूँ—अैसा ही अेक और दोहा नीचे लिखे अनुसार है—

साजन साजन हूँ करूँ, साजन जीव-जड़ी।
साजन लिख दूँ कागदाँ, बाँचूँ घड़ी-घड़ी॥

६—बत्तीस लखण—साहित्यमें शारीरिक सौंदर्य के ३२ लक्षण प्रसिद्ध हैं। ये प्रायः स्त्री-सौंदर्यके संबंध में वर्णित हुअे हैं।

२—नायिका

७—थल भूरा इ०—मिलाओ—

खेजड़ रूँख, मरूँट खड़, ऊँडो नीर अथाह।
ढोलो पूछै, मारवण, इतरो रूप कठाँह॥

११—कूँम—अेक पक्षी जिसे संस्कृतमें क्रौंच और हिंदीमें करांकुल कहते हैं। राजस्थानीमें यह शब्द कई तरहसे लिखा जाता है, जैसे—कुंज, कूँम, क्रुँम, कुरज। साधारणतया इसे कुरज कहते हैं। यह सारस जाति का पक्षी होता है और जलाशयोंके किनारे रहता है। राजस्थानी साहित्यमें इसका बड़ा भारी महत्व है। कुरजोंके सम्बन्धमें अनेकों सुन्दर उक्तियाँ मिलती हैं जिनमेंसे कुछ आगे स्थान-स्थानपर दी गई हैं। आदिकवि वाल्मीकिकी प्रतिभा-स्फुरणका कारण अेक कुरजका करुण रुदन ही था—

मा, निषाद, प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत् क्रौंच-मिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

इस पक्षीका स्वर अत्यन्त करुण होता है।

५—प्रियका प्रवास

६—कादम इ०—पानी तथा कीचड़वाली जमीनमें ऊँट प्रायः नहीं चल सकता।

१०—तीज—सावण और भाद्रपदकी तीजोंके त्यौहार राजस्थानमें धूमसे मनाये जाते हैं और बहुत लोक-प्रिय हैं। तीजोंका त्योहार राजस्थान-का जातीय त्यौहार है।

३२—सजन सिधाया हे सखी इ०—अैसे ही दो दूहे ये हैं—

साजन सिधाया, हे सखी, घड़ियाँ बाँध कटार ।
दोड़ी तो पूगी नहीं, हेला दिया हजार ॥१॥
सजन सिधाया, हे सखी, कांधे धारी बँदूक ।
कै तो साथे ले चलो, नहिं कर दो दो टूक ॥२॥

६—विरहिणी-विप्रलाप

१७ धूँधला इ०—मिलाओ—

भरिया मग्गड़ा, गयणि ध्व
।२ जइ आविसिइ, तइ जाणि

१२—चकवी—साहित्यमें प्रसिद्ध है कि रातको चकवा-चकवी अेक साथ नहीं रहते। दिनमें प्रियसे वियोग नहीं होता अतः चकवीका सूर्यसे प्रेम स्वाभाविक है।

११०—विच न समातो हार इ०—मिलाओ,—

हारो नारोपितः कंठे मया विश्लेष-भीरुणा ।
इदानीमावयोर् मध्ये सरित्सागर-भूधराः ॥

—रामायण

७—संदेशा

१—ढाढी—अेक जाति; इनका पेशा उत्सवोंपर गाना-बजाना तथा बंदीजन अेवं सन्देशवाहकका काम करना है। आरम्भमें ये हिन्दू ढोली या भाट थे पर बादमें मुसलमान हो गये। ये अब तक हिन्दू रीति-रिवाजोंका पालन करते हैं। कविता करना इनका पैतृक व्यवसाय है। राजस्थानके लोकप्रिय साहित्यके निर्माता तथा संरक्षक मुख्यतया ढाढी अेवं ढोली लोग ही हैं।

१३—प्रियतमका आगमन

१—काग उडावण धण खड़ी इ०—मिलाओ,—

वायसु उड्डावन्तिअअे पिउ दिट्ठउ सहसत्ति ।
अद्धा वलया महिहि गय अद्धा फुट्ट तडत्ति ॥

(हेमचन्द्रके व्याकरणमें उद्धृत अपभ्रंशका दूहा)

जब किसीकी प्रतीक्षा होती है तो कौवेको उड़ाया जाता है। यह प्रथा प्रायः सारे भारतमें प्रचलित है। कबीर, सूर आदिने इसको लेकर कई-अेक अच्छी-अच्छी उक्तियाँ कही हैं।

१५—सज्जण वारूँ कोड़धा—इसपर यह कथा है—

बादशाह अकबरने अपने दरबारी बीकानेरके पृथ्वीराज राठोड़से अेक दिन कहा कि तुम्हारे तो देवी वशमें है, बताओ तुम्हारी मृत्यु कहाँ होगी। पृथ्वीराजने कहा कि मथुरामें विश्रामघाटपर। यह सुनकर बादशाहने

११—कूँम—अेक पक्षी जिसे संस्कृतमें क्रौंच और हिंदीमें करांकुल कहते हैं। राजस्थानीमें यह शब्द कई तरहसे लिखा जाता है, जैसे—कुंज, कूँम, कुँम, कुरज। साधारणतया इसे कुरज कहते हैं। यह सारस जाति का पक्षी होता है और जलाशयोंके किनारे रहता है। राजस्थानी साहित्यमें इसका बड़ा भारी महत्व है। कुरजोंके सम्बन्धमें अनेकों सुन्दर उक्तियाँ मिलती हैं जिनमेंसे कुछ आगे स्थान-स्थानपर दी गई हैं। आदिकवि वाल्मीकिकी प्रतिभा-स्फुरणका कारण अेक कुरजका करुण रुदन ही था—

मा, निषाद, प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत् क्रौंच-मिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

इस पक्षीका स्वर अत्यन्त करुण होता है।

५—प्रियका प्रवास

६—कादम इ०—पानी तथा कीचड़वाली जमीनमें ऊँट प्रायः नहीं चल सकता।

१०—तीज—सावण और भाद्रपदकी तीजोंके त्यौहार राजस्थानमें धूमसे मनाये जाते हैं और बहुत लोक-प्रिय हैं। तीजोंका त्यौहार राजस्थान-का जातीय त्यौहार है।

३२—सजन सिधाया हे सखी इ०—अैसे ही दो दूहे ये हैं—

साजन सिधाया, हे सखी, कड़ियाँ बाँध कटार ।
दोड़ी तो पूगी नहीं, हेला दिया हजार ॥१॥
साजन सिधाया, हे सखी, कांधे धारी बँदूक ।
कै तो साथे ले चलो, नहिं कर दो दो टूक ॥२॥

६—विरहिणी-विप्रलाप

१०२—आज धराऊ धूँधलो इ०—मिलाओ—

नव जल भरिया मग्गड़ा, गयणि घड़क्कइ मेह ।
इत्थंतरि जइ आविसिइ, तइ जाणिस्सिइ नेह ॥

(हेमचन्द्रके व्याकरणमें)

१२—चकवी—साहित्यमें प्रसिद्ध है कि रातको चकवा-चकवी अेक साथ नहीं रहते। दिनमें प्रियसे वियोग नहीं होता अतः चकवीका सूर्यसे प्रेम स्वाभाविक है।

११०—विच न समातो हार इ०—मिलाओ,—

हारो नारोपितः कंठे मया विश्लेष-भीरुणा।
इदानीमावयोर् मध्ये सरित्सागर-भूधराः॥

—रामायण

७—संदेशा

१—ढाढी—अेक जाति; इनका पेशा उत्सवोंपर गाना-बजाना तथा बंदीजन अेवं सन्देशवाहकका काम करना है। आरम्भमें ये हिन्दू ढोली या भाट थे पर बादमें मुसलमान हो गये। ये अब तक हिन्दू रीति-रिवाजोंका पालन करते हैं। कविता करना इनका पैतृक व्यवसाय है। राजस्थानके लोकप्रिय साहित्यके निर्माता तथा संरक्षक मुख्यतया ढाढी अेवं ढोली लोग ही हैं।

१३—प्रियतमका आगमन

१—काग उडावण धण खड़ी इ०—मिलाओ,—

वायसु उड्डावन्तिअअे पिउ दिट्ठउ सहसत्ति।
अद्धा वलया महिहि गय अद्धा फुट्ट तडत्ति॥

(हेमचन्द्रके व्याकरणमें उद्धृत अपभ्रंशका दूहा)

जब किसीकी प्रतीक्षा होती है तो कौवेको उड़ाया जाता है। यह प्रथा प्रायः सारे भारतमें प्रचलित है। कबीर, सूर आदिने इसको लेकर कई-अेक अच्छी-अच्छी उक्तियाँ कही हैं।

१५—सज्जण वारूं कोड़धा—इसपर यह कथा है—

बादशाह अकबरने अपने दरबारी बीकानेरके पृथ्वीराज राठोड़से अेक दिन कहा कि तुम्हारे तो देवी वशमें है, बताओ तुम्हारी मृत्यु कहाँ होगी। पृथ्वीराजने कहा कि मथुरामें विश्रामघाटपर। यह सुनकर बादशाहने

उन्हें नौकरीपर अटक भेज दिया कि देखें तुम्हारी मृत्यु मथुरामें कैसे होती है। इस बातको पाँच महीने हो गये। इसी समय किसी भीलने यमुना के तटपर बैठे चकवा-चकवीको कपड़ा डालकर पकड़ लिया और उन्हें बेचनेको शहरमें लाया। बादशाहको खबर हुई तो उसने पिंजड़ेको अपने पास मँगवा लिया और भीलसे पूछा कि रातको ये पक्षी कहाँ रहे। भीलने कहा कि इसी पिंजड़ेमें। बादशाहने कहा कि अैसा शत्रु तो मित्रसे कहीं अच्छा। इसपर खानखानाने यह चरण पढ़ा—

सज्जन वारूँ कोड़घा या दुरजणकी भेंट।

पर दूसरा चरण वे न कह सके। तब तुरन्त पृथ्वीराजको बुलानेका हुक्म हुआ। जब वे मथुरा पहुंचे तो उन्होंने इसका उतरार्ध बनाकर बादशाह के पास पहुँचा दिया और थोड़ी देर बाद वहीं उनका देहान्त हुआ।

---

(८) शान्त रस

१—कालबलीकी महिमा

२—काबाँ लूँटी गोपका इ०—श्रीकृष्णके परमधाम पधार जानेके पश्चात् अर्जुन द्वारका गया और वहाँसे बहुत-सी यादव-स्त्रियोंको लेकर हस्तिनापुर लौट रहा था कि मार्गमें बर्बर आतियोंने उसपर आक्रमण कर दिया। भावी-वश जिसने महाभारतका युद्ध जीत लिया था वह वीर अर्जुन उन बर्बरोंका कुछ भी नहीं बिगाड़ सका और वे बहुत-सी स्त्रियोंको लूट ले गये।

६—हरचन्द बेची नार इ०—राजा हरिश्चन्द्र सूर्यवंशी राजा था और बड़ा सत्यवादी था। उसकी सत्यवादिताकी कथा बहुत प्रसिद्ध है। स्त्री, पुत्र और अपने-आपको भी बेचकर उसने सत्यकी रक्षा की। विशेष जाननेके लिअे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत सत्य-हरिश्चन्द्र नाटक देखो।

४— चेतावनी

११—हाथाँ परबत तोलता—जैसे रावण, बाणासुर आदि।
समदाँ घूँट भरेह—जैसे अगस्त्य ऋषि जो समुद्रको पी गये थे।

६—हरिभक्ति

३—सबरी—यह भीलनी थी और मातंग ऋृषिकी सेवा करती थी। ऋषिकी कृपासे इसे हरि-भक्ति प्राप्त हुई। ऋषिने उससे यह भी कहा था कि श्रीराम तुम्हारे यहाँ आवेंगे। तभी से शबरी जंगलमें जो अच्छे-अच्छे फल देखती उनको जमा रखती कि श्रीरामके आने पर भेंट दूँगी। अन्तमें उसकी कामना पूरी हुई। पिछले भक्तोंमें यह प्रसिद्धि हो गई कि शबरी स्वयं चख-चखकर स्वादिष्ट फलोंको जमा करती थी और श्रीरामने प्रेमके वश होकर उसके जूठे फल खाये।

---

(९) प्रकीर्णक

१—वर्षासम्बन्धी

१०—मालवे—मारवाड़में अकाल पड़नेपर यहाँके लोग, विशेषतः गाय बैल आदि रखनेवाले, मालवे चले जाते थे जहाँ उनके पशुओंको घास और पानी मिल सके। दक्षिण राजस्थानके लोग अब भी कभी-कभी-ऐसा करते हैं।

२—कूट और पहेलियाँ

१७—मृगरथ ३०—मिलाओ–दूर करहु बीना कर धरिबो। मोहेमृग, नाँही रथ हाँक्यों, नाँहिन होत चन्दको ढरिबो॥

—सूरदास

३२—फेरी कोनी—फेरा नहीं या फिराया नहीं। घोड़ेको फिराया नहीं, पानोंको उल्टा नहीं, और रोटीको पल्टा नहीं।

३४—कूट्यो कोनी—कूटा नहीं। कपड़ेको कूटा नहीं, मूँजको पीटा नहीं, और जाटको मार-पीटकर ठीक नहीं किया।

३५—जोड़ी कोनी—जोड़ी नहीं। गाड़ीके बैलोंकी जोड़ी नहीं, औरतके पैरोंमें जूती नहीं, और बेटीके लिये वर नहीं मिला

नोट—इस प्रकारकी बहुत-सी पहेलियाँ अमर-खुसरोकी रचनाओंमें मिलेंगी जिनका अेक संग्रह 'अमीर-खुसरो और उनकी कविता' के नामसे काशीकी नागरीप्रचारिणी-सभा द्वारा प्रकाशित हुआ है।

४—प्रकीर्णक

२—जळ पीधो इ०—मिलाओ—

चडियो नीर अपार पड़ियो जद पीधो नहीं ।
गूदळिये जळगार जीव न धापै, जेठवा ॥

३—जगतण इ०—मिलाओ—

जगतणकूँ भगतण कहे, करे दूधकूँ खोया ।
चलतीकूँ गाडी कहे, देख कबीरा रोया ॥

